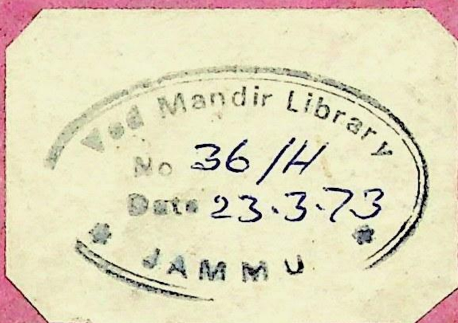
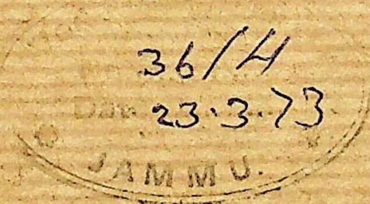
50







तसाहित्य प्रकाशन

हृदय-नाद

तमिल भाषा के मर्मस्पर्शी उपन्यास का
हिन्दी रूपान्तर

•

लेखक
न. चिदम्बर सुब्रह्मण्यन्

अनुवादक
रा० वीलिनाथन्

•

१९६६

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

दूसरी बार : १९६६
मूल्य
साढ़े तीन रुपये

मुद्रक
यूनाइटेड आफसेट प्रेस
दिल्ली

नाद की उपासना जिन्होंने योग-रूप में की

उन महानुभावों को .

—न. चि. सुब्रह्मण्यन्

एन्दरो महानु भावुलु
अन्दरिकि वन्दनमु :

...

पतित पावनुडने परात्परुनि
गुरिञ्चि परमार्थमगु
निजमार्गमुतोनु बाडुचुनु
सल्लापमुतो स्वर लयादि
रागमुलु ढेलियवारु : एन्दरो...

...

भागवत रामायण गीतादि
श्रुति शास्त्र पुराणमु
मर्म मुलन् शिवादि षण्मतमुल
गूढ़ मुलन् मुप्पदि मुक्कोटि सुरान्तरंगमुल
भावंबुल नेरिगि राव-राग
लयादि सौख्य मुचे चिरायूवुल्
गलिगि निरवधि सुखात्मुल
त्यागराजाप्तुल। एन्दरो...

—श्री त्यागराज

उन सब महानुभावों को प्रणाम !

... ...

जो स्वर, लय, राग आदि से भली-भांति परिचित होकर, पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आती प्रणाली और सुन्दर भाषा में, पतित-पावन, परात्पर, परब्रह्म की गीतों द्वारा वन्दना करते हैं,

... ...

जो भागवत, रामायण, गीता, वेद शास्त्र, पुराण आदि के मर्मज्ञ हैं, शिवादि देवताओं के षण्मतों के गूढ़ तत्व के ज्ञाता हैं, तैंतीस करोड़ देवताओं के परतत्व से परिचित हैं और भाव, राग लय आदि से संयुक्त गीतानन्द में सराबोर होकर चिरायु और नित्यानन्द प्राप्त करते हैं, वे सब संत त्यागराज के प्रिय और भक्ति के पात्र हैं।
उन सब महानुभावों को प्रणाम !

—श्रीत्यागराज

प्रकाशकीय

भारतीय भाषाओं के चुने हुए उपन्यासों को हिन्दी के पाठकों को सुलभ करने की अपनी योजना के अन्तर्गत 'मण्डल' अबतक पांच उपन्यास प्रकाशित कर चुका है। प्रारंभ हिन्दी के उपन्यास 'तट के बंधन' से किया था, जिसके लेखक हिन्दी के सुविख्यात साहित्यकार विष्णु प्रभाकर हैं। बाद में मराठी का उपन्यास 'देवदासी' (व. भ. बोरकर), कन्नड़ का 'कित्तूर की रानी' (अ. न. कृष्णराव), बंगला का 'नवीन यात्रा' (मनोज बसु) और गुजराती का 'प्रभु पधारे' (स्व० झवेरचन्द मेघाणी) प्रकाशित हुए। इन सभी उपन्यासों को हिन्दी के पाठकों ने बहुत पसंद किया।

हमें हर्ष है कि इस माला में यह छठा उपन्यास तमिल के सुप्रसिद्ध लेखक श्री न० चिदम्बर सुब्रह्मण्यन का प्रकाशित हो रहा है। इस रचना में उन्होंने एक संगीतज्ञ के जीवन के उतार-चढ़ावों की बड़ी हृदयस्पर्शी कहानी दी है और अन्त में बताया है कि असली नाद वह नहीं है, जो कण्ठ से आता है, बल्कि वह है, जो हृदय से उठता है।

हम आशा करते हैं कि इस तथा इस माला के अन्य सभी उपन्यासों के पाठकों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ेगी और इन कृतियों के अन्य भारतीय भाषाओं में भी अनुवाद होंगे।

—मन्त्री

दो शब्द

संगीत हमारे कुटुम्ब की मौरूसी जायदाद है। लेकिन मैं अपने पूर्वजों का नाम रखनेवाला वारिस नहीं हो सका। मेरे कुटुम्ब में मुझसे पहले संगीत के पंडित हुए थे, उनके साथ अपना नाम जोड़ने की तनिक भी योग्यता मुझमें नहीं है। फिर भी मेरी रगों में जो खून वह रहा है, उसमें संगीत भी मिला है। मैं लौकिक रीति के अनुसार जो भी धंधा करूं, मेरा हृदय संगीत से नाता जोड़ता ही रहता है। नाद की उपासना मैंने यथाक्रम नहीं की है, किन्तु नादयोगियों की उपासना अरसे से करने लग गया था। उसी प्रयास का फल है यह पुस्तक।

कर्नाटक संगीत की त्रिमूर्ति श्री त्यागराज, मुनुस्वामी दीक्षितर, तथा श्याम शास्त्री जैसे नाद-ब्रह्मों और महावैद्यनाथ शिवन् जैसे नादोपासकों के संबन्ध में काफी चर्चा सुनी है। उसीके फलस्वरूप मेरे दिल में एक नाद-योगी को लेकर लिखने की इच्छा पैदा हुई। अनेक महान् संगीतज्ञों के दर्शन-लाभ करने, उनकी कीर्ति सुनने, उनके द्वारा भोगी यातनाएं मालूम होने और उनकी तपश्चर्या का हाल जानने से नादयोगी को कथानायक बनाकर कुछ लिखने की जो अभिलाषा उत्पन्न हुई थी, वह तीव्र-से-तीव्रतर होती गई और इस पुस्तक के रूप में वह साकार होकर रही।

महान् संगीतज्ञों को अपने जीवन में जो अनूठे अनुभव हुए, उनमें से कुछ का संकलन-सा करने का मैंने प्रयत्न किया है। कालिदास के शब्दों में 'नादयोग कहां और मैं कहां!' फिर भी इच्छा बलवती होती है। उसने लिखाकर ही छोड़ा।

हमारी संस्कृति और सभ्यता के सच्चे प्रतिनिधि हैं श्री ना० रघुनाथन अय्यर, मद्रास के प्रसिद्ध पत्र 'हिन्दू' के भूतपूर्व संपादक। उन्होंने बड़े प्रेम से मेरी प्रार्थना स्वीकार कर इस पुस्तक की भूमिका लिखी है। मैं हृदय से उनका आभार मानता हूं।

—न० चिदम्बर सुब्रह्मण्यन्

भूमिका

श्री चिदम्बर सुब्रह्मण्यन तमिल के कथा-लेखकों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। उन्होंने कहानियां बहुत कम लिखी हैं, पर उनकी कहानियां इतनी कलात्मक एवं भावपूर्ण हैं कि पढ़ने वाले मुग्ध हो उठते हैं। उन्हें कोई भूल नहीं पाता।

प्रस्तुत उपन्यास उनका पहला उपन्यास है। इसमें एक संगीतज्ञ का जीवन चित्रित है। कला और कलाकार को कल्पना की आंखों से देखना और दूसरों को दिखाना बड़ा ही टेढ़ा काम है। फ्रेंच भाषा के सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री रोम्यां रोलां ने अपने सुविख्यात उपन्यास 'जान क्रिस्टोफ़ी' में ऐसे ही एक कलाकार का जीवन चित्रित करने का प्रयत्न किया है और उसमें कुछ हद तक सफलता भी प्राप्त की है। इस बात को सब जानते हैं कि इस तरह के सफल ग्रन्थ इने-गिने हैं।

कला वही उच्चकोटि की मानी जाती है, जो कलाकार की मनोभावनाओं और उन्हें व्यक्त करने के लिए अंगीकृत कला-प्रणालियों को अग्नि और शरीर की तरह एकरूपता प्रदान करे। ऐसी स्थिति को पहुंचे हुए किसी कलाकार के जीवन-वृत्त को कोई कथाकार चित्रित करना चाहे तो वह इतना ही कर सकता है कि कला-प्रणाली के स्थूल अंश को कल्पना-मिश्रित भावनाओं द्वारा प्रकट कर दे। कला-प्रणाली के सूक्ष्म अंश को परिभाषा का सहारा लेकर समझाया जा सकता है, पर उसे वे ही लोग समझ सकते हैं, जो उक्त कला में निष्णात् हों और जिन्होंने नियमपूर्वक उसका अध्ययन और अभ्यास किया हो।

संगीत-शास्त्र से अनभिज्ञ होकर भी कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं, जो संगीत के रसास्वादन में अपने को निछावर कर देते हैं। एक श्रेष्ठ कलाकार के प्रथम श्रेणी के संगीत में जो विशिष्ट प्रणाली दिखाई देती है, उसे संगीत-प्रेमियों को हृदयंगम कराना बड़ा ही कठिन कार्य है।

फिर भी दक्षिण के जन-जीवन में कर्नाटक संगीत ऐसा हिल-मिल गया

है कि प्रस्तुत उपन्यास के लेखक अपने संगीत के सच्चे ज्ञान के बल पर इस कथा के नायक किट्टु यानी कृष्ण भागवतर की कला के ज्ञान-सौष्ठव को जगह-जगह पर सुन्दर रूप से चित्रित करने में सफल हुए हैं। यह काय रसिक-वृन्द के आनन्द का विषय है।

श्रेष्ठ कला में प्रणाली से बढ़कर रस-भाव और उससे विकसित मनोधर्म ही मुख्य अंश माने जाते हैं। कलाकार का अपना पृथक अस्तित्व है। वह विचित्र जीवन है। जन-सामान्य से वह बहुत दूर है। किट्टु के असामान्य आचरण पर ध्यान दें तो यह स्पष्ट रूप से विदित होगा।

छः बरस का बालक। उसके मामा उसके साथ प्यार का व्यवहार नहीं करते। शास्त्र के अध्ययन के लिए मां मामा के घर भेजना चाहती है तो उसे वह बात पसन्द नहीं आती। अपने भरोसे पर रहनेवाली मां से भी बिना कहे-सुने वह घर से निकल पड़ता है। संगीत उसके जन्म का साथी है। सौभाग्य से उसे परम सद्गुरु प्राप्त होते हैं और उनके संगात-ज्ञान को पर्याप्त रूप से विकसित करते हैं। दस वर्ष तक वह जननी और जन्मभूमि को भूला रहता है और गुरु को दैव मानकर अपनी कला में पूर्ण पाण्डित्य और अद्भुत प्रतिभा प्राप्त करता है। गुरु महाराज की मृत्यु होती है। उस शोक में उसे अपना गांव याद आता है। मां याद आती है। मन में वेदना और पश्चात्ताप एकसाथ उभरते हैं तो गाय की खोज में दौड़ पड़नेवाले बछड़े की तरह वह अपनी जन्मभूमि में पहुंचता है। वहां जाने पर उसे मालूम होता है कि मां का छः साल पहले ही देहान्त हो चुका है और घर उजड़कर मिट्टी में मिल गया है। उसका दिल फटने को हो जाता है। वह वहां एक क्षण भी नहीं ठहर पाता और अपने गुरु के गांव तिरुवैयारु को लौट पड़ता है।

इससे भी विचित्र है उसका अपना धंधा चलाने का ढंग। अपनी कला-माधुरी और चातुरी से वह शीघ्र ही जन-साधारण से लेकर पण्डित वर्ग तक का मन मोह लेता है और बड़ी कीर्ति अर्जित करता है। तब एक छोटी-सी घटना घटती है, जो उसके जीवन में एक मोड़ लाती है।

किसी धनी-मानी व्यक्ति के घर विवाहोत्सव में उसने गाना स्वीकार किया था, पर नियत समय पर वह नहीं पहुंचता। सन्ध्या-वन्दन करने

चला जाता है। इसपर धनिक बड़े तैश में श्रा जाते हैं श्रौर उससे बुरा-भला कह देते हैं। उसी समय वह भीष्म प्रतिज्ञा करता है—पैसे कमाने की खातिर मैं नहीं गाऊंगा, बल्कि श्रपने संगीत को केवल ईश्वरार्पण करूंगा। उसके मन में क्षण-भर के लिए भी यह बात नहीं श्राता कि उसके पास धन-सम्पत्ति कुछ भी नहीं है। उस श्रवस्था में वह बिना पैसे के कैसे जीवन-यापन कर पायेगा? उसपर संयोग से उसे जो पत्नी मिली थी, वह रुपये-पैसे जैसी बातों में ठीक उल्टा दृष्टिकोण रखती थी। इस कारण कितनी ही विघ्न-बाधाएं उठ खड़ी होती हैं। उनकी जरा भी परवा किये बिना वह श्रपने निर्णय पर श्रटल रहता है श्रौर श्रपने मार्ग पर श्रग्रसर होता रहता है।

संगीत एक योग है, यह हमारे पूर्वजों की धारणा है। योग के लिए त्याग श्रत्यावश्यक है। छोटी वस्तु त्यागकर ही बड़ी वस्तु प्राप्त की जाती है। 'कामिनी-कांचन' के बन्धनों से एक तो किट्टु छूट गया। पैसे का मोह धीरे से हट गया था। सच्ची कला के विकास श्रौर प्रकृत गुणों के कारण उसके दिल में भोग-वासना के लिए उतनी श्रासक्ति पैदा नहीं हुई थी। उसकी विरक्त मनोभावना का एक दूसरा कारण था उसकी पत्नी की लौकिक मन:स्थिति। वह स्वभाव की नेक थी। फिर भी साधारण नारियों की तरह उसके भी दिल में वस्त्र-श्राभूषणों आदि के प्रति मोह था। श्राडं-बरयुक्त जीवन बिताने श्रौर गांव में श्रपने को गौरवमय स्थापित करने की इच्छा को भी वह श्रपने मन में पोषित करती थी। इसमें श्राश्चर्य की कोई बात नहीं है। लेकिन इक्के के घोड़े श्रौर घुड़-दौड़ के घोड़े की जोड़ी मिलाने पर जो स्थिति होती है, वही स्थिति इनकी श्रौर इनके दाम्पत्यजीवन् की थी।

ऐसी जोड़ी में कभी कोई तनाव खड़ा हो तो उसे घुड़दौड़ का घोड़ा ही दूर कर सकता है। उसीको श्रपना श्रहंकार दबाकर श्रपने जोड़े की दौड़ के श्रनुकूल दौड़ना सीखना पड़ता है। इस सत्य का पता किट्टु को तब लगा जब वह पत्नी से रूठकर एक दिन घर से चल पड़ने को उद्यत हो गया। धामिन सांप की तरह जो श्रपने लक्ष्य की श्रोर श्रग्रसर होते हैं, उन्हें दूसरों की मन:स्थिति का पता नहीं चलता। कन्दस्वामी भागवतर उसके हितैषी मित्र थे, मन के पक्के थे। उन्होंने बताया कि उसके इन सारे संकटों का मूल कारण उसका घमंडी श्रौर हठी स्वभाव है। बचपन में एक बार

गाते हुए वह घमंड में चूर हुआ तो उन्होंने उसे टोका था।

उनके उपदेश से किट्टु का मन बड़ा उद्वेलित हो उठता है। वह रात को घर लौटता है। अपने मूर्खतापूर्ण व्यवहार से कुछ-का-कुछ हो गया तो क्या होगा, इस चिन्ता में डूबी उसकी पत्नी नीलांबाल् द्वार पर उसकी प्रतीक्षा करती हुई खड़ी दिखाई देती है। इस आंधी-तूफान के बाद जब पति-पत्नी मिलते हैं, तब कोई उतावली या ऊपरी प्रेम-क्षोभ का दर्शन नहीं होता। दिल में शांति और संतुलन का ही दर्शन होता है। "विधि जो क्रूरता करती है, वही पर्याप्त है। हम दोनों एक-दूसरे के प्रति क्रूरता का व्यवहार क्यों करें ?" किट्टु का यह निष्कर्ष मानव-हृदय की गहराई की थाह लेनेवाले लेखक के अपार ज्ञान को भली प्रकार प्रकट करता है।

उपर्युक्त दृश्य को इस ग्रन्थ का केन्द्र-बिन्दु कह सकते हैं। उसके बाद की घटनाएं, कथा को केवल कथा के रूप में देखें तो अत्यावश्यक नहीं कही जा सकतीं, लेकिन वे किट्टु की तपस्या के विकास में मानदंड के रूप में खड़ी हैं। संगीत के प्रति भक्ति और कृष्ण भागवतर की गायन-पद्धति पर आसक्ति रखनेवाली एक गणिका इस उपन्यास में एक पात्र के रूप में आती है। एक मित्र के बहुत जोर देने पर उसे संगीत की शिक्षा देने का भार किट्टु पर पड़ता है। पहले तो वह यह सोचकर हिचकिचाता है कि अपने कुल और विकास में यह बाधक सिद्ध हो सकता है। लोग भी इसकी कटु आलोचना करते हैं और उस पर व्यंग्य करते हैं, लेकिन होते-होते उस युवती के गुणों और संगीत के प्रति उत्साह देखकर, वह इन लौकिक आक्षेपों की चिन्ता नहीं करता। उस युवती के संगीत का अभ्यास जैसे-जैसे विकसित होता जाता है, उसके दिल में अनजाने किट्टु के प्रति प्रेम-भाव भी बढ़ता जाता है। संयोग से इस बात का किट्टु को जब पता चलता है, तब वह ऐसा चौंकता है, मानो अंधेरे में सांप के फन पर पैर पड़ गया हो। अपने ऊपर कीचड़ उछालनेवालों की उसने एक तरह से उपेक्षा की थी आर समझा था कि उसकी जैसी विरक्त भावना दूसरों में भी होगी। अब उसे स्पष्ट रूप से मालूम हुआ कि उसका लौकिक ज्ञान नहीं के बराबर है। उसी क्षण बालांबाल् के साथ का वह संगीत-सम्बन्ध तोड़ लेता है। शायद उसे इस बात का भी भान हुआ कि कल्पना की अग्नि को योग्य हृदय में धधका-

कर उसके द्वारा आनन्द पाने का विचार करना भी एक प्रकार का अहंकार है। यह उसके त्याग की दूसरी सीढ़ी थी।

यहीं उसकी परीक्षा समाप्त नहीं हुई। संगीत देवता की उपासना के उपयुक्त साधन-रूप में उसने गन्धर्वों का जो गला पाया था, जिसके अभिवर्द्धन में उसने रात-दिन एक करके अथक परिश्रम किया था, वह अपरिमित वेदना से तड़प उठता है। अपनी निजी कहने योग्य जो वस्तु हो, वह भी हाथ से चली जाय तो किसे दुःख नहीं होता!

इस समय भी कन्दस्वामी भागवतर आचार्य के रूप में सामने आते कहते हैं, "वहिर्मुखी कण्ठ के बैठ जाने से, हो सकता है कि संसार प्रशंसा छोड़ दे, पर संगीत की उपासना से जो संस्कार उसके दिल में पड़े हैं, वे कहीं नहीं जायंगे। सुसंस्कृत मन को अन्तर्मुखी कर देने पर आत्मानन्द पाया जा सकता है।" यह बात उनके दिल की गहराई में जा बैठती है। किट्टु निरुत्तर हो जाता है और मौन धारण कर लेता है।

इस उपन्यास में कथा के आडम्बर, पात्रों की भरमार या विविध विन्यास को लेखक ने मुख्य नहीं माना। दैवी कला को आत्म-साक्षात्कार के लिए साधना रूप में जो धीर पुरुष उपयोग में लाना चाहता है, उसके जीवन में अनेक प्रकार के दुःखों का सामना करना पड़े तो भी वे सुखमय ही सिद्ध होते हैं इसे लोकरीति के अनुरूप, बिना अधिक नमक-मिर्च लगाये, विश्वास करने योग्य ढंग से बताना ही उनका प्रमुख ध्येय था। मेरा विचार है कि उन्हें अपने ध्येय में आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। अपने को 'प्रगतिवादी' कहनेवाले लोगों को यह पुराना दकियानूसी विचार कुछ खटक सकता है। श्री चिदम्बर सुब्रह्मण्यन् परम्परा से चली आती 'भारतीय संस्कृति' पर अपना हृदय न्यौछावर करनेवाले के रूप में ही सामने आते है। उनकी शैली में शान्ति, हास्य मधुरिमा और आलंकारिकों के शब्दों में 'स्वभावोक्ति' की सुषमा कूट-कूटकर भरी है। मैं आशा करता हूं कि इस उपन्यास को पढ़नेवालों के मन में एक श्रेष्ठतम अनुभव को प्राप्त करने की भाव-संतुष्टि उभरेगी।

अलमेलु मंगापुरम्
लापूर, मद्रास

—ना. रघुनाथन्

अनुवादक की ओर से

"साहित्य संगीत कला विहीन:
साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीन:।"

सुहृदवर श्री न० चिदम्बर सुब्रह्मण्यन् ने अपना उपन्यास 'हृदय-नाद' लाकर दिया और कहा कि इसे पढ़कर देखो। मैंने उनकी बात मानकर उसे पढ़कर देखा तो दिल में यह संशय उठा कि इन्हें मेरी संगीत-साहित्य-कला की ज्ञान-हीनता की बात कैसे मालूम हुई! कहीं ये मेरी खिल्ली तो नहीं उड़ा रहे हैं?

चार दिन के बाद फोन पर बुलाकर उन्होंने पूछा, "तुमने 'हृदय-नाद' पढ़ लिया? कैसा लगा?"

मैंने उत्तर दिया, "हां बहुत अच्छा लगा। आपने मुझे संगीत-साहित्य-कला-विहीन होने से बचा लिया।"

"उसका हिन्दी में अनुवाद कर दें। 'सस्ता साहित्य मण्डल' उसका पुस्तक रूप में प्रकाशन करना चाहता है।" इतना कहकर उन्होंने संगीत, साहित्य और कला से ओतप्रोत अपने उपन्यास 'हृदय-नाद' के अनुवाद का कार्य मुझे सौंपा।

और 'सस्ता साहित्य मण्डल' ने मेरे अनुवाद को छापने का निश्चय कर मेरे उत्साह को बढ़ाया। मुझे बल मिला और अब अनुवाद पाठकों के हाथ में है।

... ...

यह अनुवाद-कार्य भी क्या कला है? इस प्रश्न का उत्तर 'हां' में देनेवाले भी होते हैं और 'नहीं' में भी देनेवाले होते हैं।

अनुवाद का कार्य कला हो या न हो, मैं इतना अवश्य कहूंगा कि यह है बड़ा कठिन। अपनी मातृभाषा में कही हुई बात को ही जब कोई ठीक तरह से नहीं समझ पाता है और अर्थ का अनर्थ कर तर्क-वितर्क करने लग

जाता है तो अन्य भाषाओं के सम्बन्ध में क्या कहें ! एक-दूसरे के दिल की बात समझना और समझी हुई बात को दूसरों को समझाना—वह भी कलात्मक ढंग से—कितना टेढ़ा काम है, यह भुक्तभोगी ही जान सकता है । इस कठिन कार्य को मित्रवर श्री सुब्रह्मण्यन् ने मुझे सौंपा तो पहले मैं कुछ हिचका, पर भावात्मक एकता के राष्ट्रीय कार्य में मुझे भी यत्किंचित अंशदान करने का सौभाग्य मिल रहा है, इस उत्साह ने मेरा साथ दिया। फलस्वरूप मेरा प्रयास मूर्त्त होकर आपके हाथों में है ।

तमिल में 'कालमेघम्' नाम से एक सुकवि हुये हैं । उनका कहना है, चाहे जितना झाड़ो-बुहारो, कहीं-न-कहीं, कुछ-न-कुछ कूड़ा-कर्कट बचा ही रहेगा। इसलिए सम्भव है कि अनुवाद के इस कार्य में भी कोई दोष रह गया हो। बार-बार दुरुस्त करने पर भी कहीं कोई त्रुटि छूट गई हो। उसके लिए क्षमा-प्रार्थी हूं। विज्ञ पाठकों से प्रार्थना है कि वे मुझे उससे अवगत करा दें, जिससे भविष्य में मैं इस प्रकार की भूलों से बच सकूं।

उपन्यास के अनुवाद-कार्य को मुझे सौंपकर मूल लेखक और प्रकाशक ने जो प्रोत्साहन दिया है, उसके लिए मैं उन दोनों का आभार मानता हूं।

'कल्कि' कार्यालय,
कीलपाक, मद्रास

—रा० वीलिनाथन्

हृदय-नाद

हृदय-नाद

१

कोई सत्तर साल पहले की बात है। एक दिन जलती दुपहरी में इलुप्पूर गांव के कुछ लड़के गली के मोड़ पर खड़े आम के एक पेड़ के नीचे गोली खेलने में लगे थे।

गौरी अम्मालु ने अपने घर की रसोई से आवाज दी, "किट्टु, ओ किट्टु!" जब कोई उत्तर नहीं आया तो वह रसोई से निकलकर बैठक में आई और किट्टु को खोजने लगी। लेकिन किट्टु वहां भी नहीं था।

"न जाने यह शैतान कहां मर गया!" बड़बड़ाती हुई वह बाहर दरवाजे तक गई और उसने द्वार पर से ही गली के नुक्कड़ पर निगाह दौड़ाई तो देखा कि आम के पेड़ के नीचे किट्टु आनन्द से गोली खेल रहा है।

यह देखकर बड़ी तेजी से गौरी अम्मालु उन लड़कों की ओर चल दी। जब लड़कों ने गौरी अम्मालु को अपनी ओर आते देखा तो वे खेल छोड़कर चुपके से खिसक गये। केवल किट्टु ही रह गया। वह सिर नीचा किये खड़ा था। गौरी अम्मालु ने उसके सिर पर कसकर एक चांटा जमाकर उसका कान पकड़ा और घर की ओर खींचती हुई चल दीं। किट्टु चिल्ला पड़ा, "नहीं, मां! नहीं मां! अब आगे से ऐसा खेल नहीं खेलूंगा। मुझे छोड़ दो, मां।"

"अरे शैतान, मैं तो सोचती थी कि तू कुछ काम का निकलेगा, लेकिन तेरे कर्म तो अपने बाप से भी गए-बीते हैं। लगता है, बाप की तरह तू भी आवारा ही रहेगा। अगर आज ठीक तरह से पाठ याद नहीं किया तो खाना नहीं दूंगी। समझा?" कहकर गौरी अम्मालु अन्दर चली गईं।

वह पंचनद दीक्षित की बेटी थी, जो अपनी विद्वत्ता के कारण समूचे प्रान्त में विख्यात थे। पर इसे गौरी का दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि उसे अपने योग्य पति नहीं मिला था। वह थोड़ी-बहुत, काम-चलाऊ संस्कृत जानती थी। साथ ही, दीक्षित खान्दान के आचार-व्यवहार और नियम-संयम की अमिट छाप उसपर पड़ चुकी थी।

उधर दूसरी ओर उसका पति बिल्कुल ही विपरीत स्वभाव का था, बल्कि कहना चाहिए कि दोनों में छत्तीस का सम्बन्ध था। एक पूरब था तो दूसरा पच्छिम। उसके पति का शास्त्रों से जरा भी परिचय न था। नियमनिष्ठा का पालन तो भला करता कहां से? और आचार-व्यवहार में इतना ढीला था कि क्या कहा जाय! लेकिन कहते हैं, संगीत के प्रति उसकी बहुत रुचि थी, बड़ा प्रेम था। परन्तु नियमित अभ्यास न करने के कारण उसमें भी वह अधकचरा ही था। कोई विशेष योग्यता प्राप्त नहीं कर पाया था।

कभी किसी गणिका के घर पहुंच जाता तो सारी रात गाता-बजाता रहता। दिनचढ़े, तीसरे पहर, तीन बजे के करीब खाने के लिए घर आता। खा-पीकर रात के आठ-नौ बजे तक के लिए बिस्तर बिछाकर सो जाता। उसके बाद नहा-धोकर मठ में चला जाता और आधी रात तक भजन-मंडली में सम्मिलित होकर भजन-कीर्तन करता रहता। कहने का तात्पर्य यह कि उसके जीवन में न तो शांति थी, न कोई नियम-निष्ठा, और न किसी प्रकार का शील-संयम ही। जब जो जी में आता था वही करने लगता था। उससे इन सब बातों के बारे में कोई क्या पूछता! अगर वह चाहता तो संगीत सीखकर अच्छी प्रगति कर सकता था, परन्तु वह इस ओर ध्यान ही नहीं देता था।

इसलिए गौरी के सामने हमेशा एक यही समस्या रहती थी कि ऐसे पति के साथ कैसे गुजारा करे? लेकिन वह भी धुन की पक्की थी और स्वभाव की हठी थी। उसने दृढ़ निश्चय कर लिया कि चाहे जैसे भी हो, पति को सुधारकर, ठीक रास्ते पर लाना ही चाहिए। इसलिए वह निरन्तर प्रयास करती आ रही थी। यद्यपि वह जानती थी कि उनको सही रास्ते पर लाना बड़ा कठिन कार्य है, तथापि वह अपने उद्देश्य को पूरा करने की भरसक कोशिश कर रही थी। वह जानती थी, कुत्ते की टेढ़ी दुम को सीधा

करना बड़ा मुश्किल है, फिर भी, वह अपने रास्ते पर चल रही थी। लेकिन इसी बीच कुछ ऐसी बातें सामने आ गईं, जिनके कारण उसे अपने प्रयत्नों को जारी रखने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। असंयमी जीवन व्यतीत करने के कारण वैत्ति का स्वास्थ्य दिन-पर-दिन गिरता चला गया। ऐसे में मौका पाकर दमे के रोग ने उसको धर दबोचा। वैत्ति ने तो जीवन बड़ी आरामतलबी में गुजारा था, इसलिए रोग से संघर्ष करने की शक्ति उसमें नहीं थी। रोगग्रस्त होने के कुछ ही महीनों के अन्दर वह दो वर्ष के शिशु किट्टु और पत्नी गौरी को इस दुनिया में अकेला छोड़कर ऐसे चला गया, मानो कोई दूसरी ही दुनिया बसाने के लिए जा रहा हो।

विधवा गौरी ने अपने वैधव्य के दुःख और बोझ की अधिक चिन्ता नहीं की, क्योंकि जीवन और गृहस्थी की जिम्मेदारियों से विरक्त और विविध दोषों से भरे हुए पति के साथ जीवन-संग्राम में उसे जितना दुःख भोगना पड़ा था और बोझ ढोना पड़ा था, उससे यह दुःख और बोझ हजार गुना कम था। केवल उसे एक ही चिन्ता थी कि किस प्रकार अपने पुत्र किट्टु का पालन-पोषण करके उसे आदमी बनावे। यह उत्तरदायित्व उसे पहाड़-सा लगा और साथ ही यह चिन्ता भी हुई कि अगर कहीं वह भी अपने पिता के दुर्गुणों को अपना बैठा तो क्या होगा ? पति के प्रति उसकी घृणा ने उसे संगीत का कट्टर विरोधी बना दिया था। संगीत उसे नीम-सा कड़ुआ लगने लगा था। उसके दिल में यह धारणा घर कर गई थी कि इसी अधकचरे संगीत के कारण उसके पति में चरित्र-दोष आया था, जो उनके जीवन को ले डूबा।

अतः वह यह चाहती थी कि उसका बेटा संस्कृत और शास्त्रों का अध्ययन करे। जब वह अपने पिता और भाइयों के बड़प्पन और प्रगति को देखती थी। तो उसके मन में यही इच्छा प्रबल हो उठती थी कि उसका पुत्र भी उसी प्रकार विद्वान् और यशस्वी बने। जितनी इन लोगों की धाक आज लोगों पर पड़ी हुई है, उतनी ही धाक उसके पुत्र की हो, लेकिन जब किट्टु के काम और लक्षण देखती तो उसके मन में यह सन्देह उत्पन्न हो जाता कि कभी उसकी यह इच्छा पूरी भी होगी या नहीं।

किट्टु का मन पढ़ने-लिखने में ठीक-से नहीं लगता था, परन्तु गाने-

बजाने में उसे बड़ा रस आता था। ऐसा प्रतीत होता था कि संगीत-विद्या आसानी से उसके हाथ आ जायगी। भजन-मंडलियों में जाने से उसे बहुत-सारे भजन और पद याद हो गये थे, परन्तु हज़ार कोशिशों के बाद भी 'राम' शब्द वह कण्ठस्थ नहीं कर पाया। इसके बावजूद भजन और पद, तेम्मांगु, तिल्लाना, जावली, गजल आदि में वह सिद्धहस्त हो गया। उसने गन्धर्वों का-सा गला पाया था। उसके मधुर स्वर और मनोहर गीतों को सुनकर अक्सर बड़े-बूढ़े लोग गौरी के पास आकर कहते, "बिटिया, अपने बेटे को संगीत की शिक्षा दो, बहुत अच्छा गाता है। अरे, किसीने कभी यह देखा सुना है कि बोओ कुछ और फसल हो दूसरी। इसलिए इसे संगीत की शिक्षा देना आरम्भ कर दो। फिर यह बच्चा बड़ी संगीत-परंपरा में आया है। मछली के बच्चों को तैरना कौन सिखाता है? किसी योग्य संगीत के आचार्य के पास इसे पहुंचा दो तो बड़ी जल्दी सीख जायगा और अच्छी कीर्ति प्राप्त कर लेगा।"

लेकिन ये बातें गौरी को तीर-सी लगती थीं। मन-ही-मन बुदबुदाती, "हुं, संगीत! यहां कौन संगीत को चाहता है? संगीत सीखने से ऐसा कौन-सा स्वर्ग मिल जाता है? न कोई मान, न सम्मान; कुछ भी तो नहीं मिलता। चले आते हैं यह नसीहत देने कि बाप की तरह बेटे को भी आवारा बना दो, जिससे गली-गली मारा-मारा फिरे! बाप ने संगीत सीखकर जितनी जगहंसाई पाई, वही सात जन्म के लिए काफी है। भगवान करे, इसे ऐसे संगीत की बू तक न लगे।"

उसने जो योजना बनाई, वह ठीक थी, परन्तु किट्टु उसके अनुसार नहीं चल सका। पढ़ाई-लिखाई उसे अच्छी नहीं लगती थी। वह इसी ताक में रहता था कि कहां बाजे बजते हैं और कहां भजन-मंडली जमती है। जहां भी नौटंकी होती वहां पर वह भी किसी तरह पहुंच ही जाता था। उसे ठीक रास्ते पर लाने और सुधारने के लिए गौरी कितने ही उपाय करके हार गई पर उसने सुधरने का नाम नहीं लिया। अतः उसने एक दूसरे ही उपाय से काम निकालने का निश्चय किया।

उसके बड़े भाई शंकर घनपाठी एक वैदिक पाठशाला के मुख्याध्यापक थे। उसने सोचा कि अगर किट्टु को वहां भेज दें तो संभव है कि वह वेदाध्ययन

करके, शास्त्रोक्त विद्या पावे और सुधरकर शीलवान् बन जाये। अपने भाई के पास उसने जब यह खबर भेजी तो उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया और कहला भेजा कि दो-चार दिन में आकर ले जाऊंगा।

घर के काम से निबटकर वह बाहर बैठक में आई तो देखा कि किट्टु छाती पर हाथ धरे 'जरा, जरे, जराः' की रट लगा रहा है। उसके गालों पर बही आंसू की धारा अभी तक सूखी नहीं थी। अपने पुत्र को इस प्रकार से रो-रोकर शब्द रटते हुए देखकर मां की ममता उमड़ आई, करुणा उत्पन्न हो आई। उसे याद आया कि उसने उसके सिर पर जो थप्पड़ मारा था, वह जोर का पड़ गया था। वह उसके पास आकर उसका सिर सहलाने लगी। सिर पर जहां चांटा पड़ा था वहां नील पड़ गया था। यह देखते ही गौरी की आंखों में आंसू भर आये। उसने उसे अपने पास खींचकर बड़े प्यार से हृदय से लगा लिया, बोली, "बेटा, इस तरह भी कोई ऊधम मचाता है ? जब तू पढ़-लिखकर पंडित बनेगा, तभी तेरी चार जने तारीफ करेंगे और तेरा मान-सम्मान करेंगे। अगर पढ़ेगा-लिखेगा नहीं तो तेरी कहां पूछ होगी ? रसोइया बनकर पेट भरने तक की नौबत आ जायगी। इसलिए अब ऊधम मचाना छोड़ दे।" इतना कहकर वह बड़े प्रेम से उसके गालों पर हाथ फेरने लगी।

थोड़ी देर पहले मां पर गुस्से का जो भूत सवार हुआ था, वह उतर गया था। अब वह ममतामयी माता बन गई थी। उसके मुंह से निकले इन प्यार-भरे शब्दों ने किट्टु के दिल को बड़ी शान्ति पहुंचाई। वह उत्साह से बोला, "मां, अब मैं कभी ऊधम नहीं मचाऊंगा। अच्छा नेक लड़का बनूंगा। तुम जैसा कहोगी, वैसा ही करूंगा।"

"अगले सोमवार को तेरे मामाजी आनेवाले हैं। वे तुझे यहां से ले जाकर पाठशाला में भर्ती करा देंगे। तुझे वहीं रहना होगा और बड़ी होशियारी से पढ़-लिखकर आदमी बनना होगा, समझा।" मां ने कहा।

यह सुनते ही किट्टु का दिल जैसे बैठ गया। वह पाठशाला में जाकर पढ़ने के लिए तैयार नहीं था। उसे तोते की तरह सुबह से शाम तक पाठ करते रहना बिल्कुल पसन्द नहीं था। लेकिन इस समय वह इस बात को मां को बताना भी नहीं चाहता था। इससे एक तो बात बिगड़ जाने का

डर था। दूसरे, वह इस समय बड़े प्यार के साथ बात कर रही थी, सो वह उसे नाराज नहीं करना चाहता था। इसके साथ ही, उसने मन में इतना अवश्य निश्चय कर लिया कि वह किसी भी हालत में मामा के घर जाकर अध्ययन नहीं करेगा।

इसका मुख्य कारण यह था कि शंकर घनपाठी उसे बिलकुल नहीं भाते थे। बेशक, मामा बहुत पढ़े-लिखे थे, लेकिन बड़े क्रोधी जीव थे, साथ ही बड़े घमण्डी भी थे। उसके पिता वैत्ति को वे बहुत हलका आदमी मानते थे। उनके संगीत-प्रेम से बड़ी घृणा करते थे। बहनोई होते हुए भी उसके साथ वे न तो अच्छा व्यवहार करते थे और न ठीक से बात करते थे। वैत्ति के प्रति उन्हें जो घृणा थी, उसे उसके पुत्र किट्टु पर भी दिखाने लग गये थे। उनका विचार था कि कहीं पुत्र पिता के गुण ग्रहण न कर ले, इसके लिए उस पर बिच्छू की तरह डंक मारते रहना चाहिए। अतः किट्टु को जब कभी देखते, नाक-भौं सिकोड़ लेते और जल-भुनकर बातें करते। उसके हर काम में कोई-न-कोई कमी निकाल देते और फिर उसकी कटु आलोचना करने लगते।

एक बार की बात है। किट्टु अपने मामा के घर गया हुआ था। उन दिनों, वहां एक सुप्रसिद्ध संगीतज्ञों की टोली आई हुई थी। किट्टू के दिल में उनका संगीत सुनने की बड़ी अभिलाषा थी। लेकिन मामा पहले से ही सावधान थे, इसलिए उन्होंने उसे बुलाकर वहां जाने के लिए मना कर दिया। उन्होंने साफ-साफ कह दिया था, "सुन रे, किट्टु, अगर गाना सुनने के शौक में पड़कर तूने मटरगश्ती की तो मैं तेरी टांगें तोड़ डालूंगा। जब तक यहां रहेगा, तेरी आवारागर्दी नहीं चलेगी! समझा?"

बेचारे किट्टू ने अपने को बहुत ही संयत रखने का प्रयत्न किया। लेकिन जब गली की मोड़ पर उसे बाजे का हल्का स्वर सुनाई दिया तो उसके कान खड़े हो गए। उसके मामा उस समय शयन-कक्ष में लेटे हुए थे। किट्टू अपने-आपको काबू में न रख सका और बाजा सुनने को चल दिया।

मामा को जब इस बात का पता चला तो उनके क्रोध की सीमा न रही। वह गरजते हुए उसके पास पहुंचे और बोले, "अरे अक्ल के दुश्मन,

पढ़ाई-लिखाई में तो तू भैंसे से भी बदतर है और नाच-गान के बिना तुझसे रहा नहीं जाता ! आखिर तूने साबित कर दिया न कि तू आवारे बाप का आवारा बेटा है ! शैतान कहीं के, आगे कभी ऐसा काम करेगा तो तुझे समझूंगा !" यह कहकर उन्होंने उसकी ऐसी मरम्मत की कि खाल उधेड़कर ही रख दी। इस समय किट्टु को शारीरिक वेदना से बढ़कर मानसिक वेदना हुई। अपने पिता के सम्बन्ध में कहे गए अपशब्द उससे नहीं सुने गए, और न उनको वह बर्दाश्त ही कर सका।

संगीत सुनने से रोकनेवाले मामा उसे राक्षस-से लगे। उनके प्रति उसे ऐसी घृणा हुई कि वह मन-ही-मन उन्हें कोसने लगा, "यह मानव नहीं, दानव हैं। बुद्धिहीन पशु हैं, पशु से भी बदतर हैं !"

उसके पिता को अपमानित करते हुए उन्होंने जो गुस्सा दिखाया, क्षोभ प्रकट किया, वह सब उसके बाल-हृदय में ऐसा चुभा कि फिर निकाले न निकला। अपने और अपने पिता के प्रति घृणा का विष उगलनेवाले मामा की याद उसके हृदय में इतनी गहरी पैठ चुकी थी, मानो वह कोई बहुत बड़ा घाव हो। वह उनका मुंह तक देखना नहीं चाहता था।

इसलिए जब उसकी मां ने कहा कि पाठशाला की पढ़ाई के लिए उसे वह मामा के यहां भेज रही है, तो वह बहुत ही परेशान हो गया। उसने मन में कहा, "अब क्या पढ़ाई के लिए मामा के यहां जाना पड़ेगा ! वह भी वेदाध्ययन करने के लिए। इससे कई गुना अच्छा होगा कि कुएँ में गिरकर मर जाऊं !"

किट्टु अकथनीय वेदना में डूबा बैठा रहा। उसने तय किया, इस मुसीबत से बचने की कोई युक्ति निकालनी चाहिए। सोचने पर उसे एक युक्ति सूझी। उसने बिना किसी से कुछ कहे-सुने कहीं भाग जाने का निश्चय कर लिया।

उसे द्वार पर किसी की छाया दिखाई दी। किट्टु ने देहली से झांककर देखा तो रामू उसे इशारे से बुला रहा था।

"क्या है ?" किट्टु ने धीरे से पूछा।

"अरे पगले, आज मात्तूर में रथोत्सव है। भूल गया क्या ?" रामू ने पूछा।

तभी किट्टु को रथोत्सव की बात याद हो आई। बोला, "हाँ, मैं भूल ही गया था। अच्छा अभी चलूं क्या ? कौन-कौन साथ चल रहे हैं ?"

"सभी चल रहे हैं। चलता है तो जल्दी चल !" रामू ने कहा।

किट्टु ने घर के अन्दर झांककर देखा कि मां क्या कर रही है। वह पिछवाड़े बरतन-भाड़े मांज रही थी। किट्टु अन्दर गया। चावल के मटके के पास टीन का एक डिब्बा था। उसे खोलकर देखा तो उसमें दो रुपये थे। उन्हें उसने निकाल लिया। द्वार पर मित्र उसकी राह देख रहे थे। एक बार उसके मन में विचार आया कि मां से अनुमति लेकर जाऊं, लेकिन दूसरे ही क्षण, उसका यह विचार बदल गया। उसने सोचा, अगर मां रथोत्सव में जाने से मना कर दें, तो क्या होगा ? रथोत्सव देखने के बाद वह जो कुछ करना चाहता है, सम्भव है, उसमें ही खलल पड़ जाय। इसलिए बिना कहे-सुने चले जाना ही उसने अच्छा समझा। चुपचाप घर से बाहर निकल आया। घर से बाहर निकलते ही एक बार उसका मन तड़प उठा। उसकी आन्तरिक वेदना को देखकर मित्रों ने पूछा, "क्यों, क्या हो गया है तुझे ? इतना खोया-खोया-सा क्यों है ?" लेकिन उसने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। "कुछ नहीं !" बस इतना कहकर चुप्पी साध ली।

अपने मित्रों के साथ, उनके हँसी-मजाक में भाग लिये बिना ही, उनके पीछे-पीछे खामोशी से चल दिया। उसके मित्रों को यह पता ही नहीं था कि आज किट्टु और दिनों की तरह घर से खेलने नहीं जा रहा है, बल्कि वह सदैव के लिए घर छोड़ रहा है।

२

मात्तूर के तालाब के उत्तरी किनारे पर एक धर्मशाला थी। भगवान का जलूस जब वहां से निकलता तो वहां शुण्डल, पानक, मठ्ठा जैसे प्रसाद बांटे जाते थे। किट्टु और उसके मित्र हाथों में 'शुण्डल'[1] लेकर सामनेवाले बरामदे में जा बैठे और खाने लगे।

वह भी धर्मशाला का ही एक भाग था। उसमें शादी-ब्याह में जानेवाले बरातियों का एक दल ठहरा हुआ था। उसी दल के एक वृद्ध पुरुष, दीवार से पीठ टेके, चबूतरे पर बैठे थे। उन्हें कुछ विचार आया तो तनकर बैठ गए और उन लड़कों की ओर देखकर बोले, "ऐ लड़को, तुममें से कोई यहां तो आओ !" सभी लड़के वृद्ध पुरुष के पास गये। अपना सम्पुट खोलकर उन्होंने एक पैसा निकाला और कहा, "कोई जाकर एक पैसे की सुंघनी तो ले आओ।"

जब उनके बुलाने का कारण मालूम हो गया तो लड़कों की उत्सुकता जाती रही। बोले, "यहां सुंघनी नहीं मिलती, दादाजी !" और वे वहां से खिसक गये।

"मैं लाऊं, दादाजी ?" किट्टु पैसा लेकर दुकान की ओर बढ़ा।

"हम 'चरखी' के पास रहेंगे, किट्टु ! तुम वहां आ जाना !" कहकर दूसरे लड़के वहां से चले गये।

किट्टु ने सुंघनी लाकर दी। उसमें से एक चुटकी निकालकर नासिका में चढ़ाने के बाद वृद्ध पुरुष के चेहरे पर मुस्कराहट की रेखा खिची। बोले, "शाबाश बेटे ! तुम बड़े अच्छे हो। तुम्हारा भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। तुम होनहार निकलोगे। बड़े-बूढ़ों की बात मानना, यह अच्छी आदत है।"

---

[1] **चना, मंग, मटर जैसे अनाजों से बनाया जानेवाला खाद्य पदार्थ।**

यह कहकर वह अन्दर गये और एक केला लाकर किट्टु के हाथ में थमा दिया। किट्टु केला खाने लगा। वृद्ध के मन में लड़के के सम्बन्ध में जानने की उत्सुकता जगी तो पूछा, "तुम क्या पढ़ रहे हो ?"

जब उससे कोई भी यह प्रश्न पूछता था तो वह सकपका जाता था। प्रश्न के समय जो भी उत्तर उसके मन में आता, वही दे देता था। बड़ी विनम्रता से बोला, "मैं पढ़ता नहीं हूं, दादाजी !"

"क्या अभी तुम्हारी पढ़ने की उम्र नहीं हुई ?" वृद्ध पुरुष ने पूछा।

"दादाजी, मेरे घर में ऐसा कोई नहीं है, जो मुझे पढ़ाये-लिखाये !"

वृद्ध के हृदय में सहानुभूति जगाने और स्थान पाने के विचार से किट्टु इतना बड़ा झूठ बोल गया।

वृद्ध महाशय को किट्टु पर दया आ गई। पूछा, "खाना-वाना कहां खाते हो ?"

"एक नातेदार के यहां खा लेता हूं।" किट्टु ने उत्तर दिया।

वे लोग बातें कर रहे थे कि इतने में अन्दर से एक युवक आया और वृद्ध से कहने लगा, "भोजन परोसने को पत्तल नहीं है। क्या किया जाय ?"

"यहां कहीं नहीं मिलेगी क्या ?" वृद्ध ने पूछा।

"पास ही एक तालाब है। उसमें कमल के पत्ते बहुत हैं। कहिये तो मैं जाकर तोड़ लाऊं !" किट्टू ने कहा।

उसे अकेले भेजने को वृद्ध का मन नहीं हुआ। बोले, "मुत्तु, तुम भी इसके साथ जाकर तोड़ लाओ। सावधानी से तोड़ना !" इस प्रकार दोनों को सचेत करके उन्होंने भेजा। थोड़ी देर में दोनों पत्ते लिये लौटे।

"यह लड़का बड़ा होशियार है।" मुत्तु ने किट्टु की सराहना की।

"तो क्या हम इसे भी अपने साथ ले चलें ?" वृद्ध ने पूछा।

"आप कहते तो ठीक हैं, पर न जाने इसके मां-बाप क्या कहेंगे ! इसे ढूंढ़ते हुए आयें तो...?" मुत्तु ने पूछा।

"बेचारा कहता है कि उसके मां-बाप नहीं हैं !"

"पर इसकी बात पर विश्वास कैसे किया जाय ?" बिना पूछे-ताछे इसे कैसे ले चलें ? हो सकता है कि यह घर से नाराज होकर निकला हो !

"हां, क्यां भाई, बात क्या है ?" मुत्तु ने किट्टु से पूछा।

किट्टु डर गया। उसकी समझ में नहीं आया कि क्या उत्तर दे ? सोचा, इसे क्या पड़ी, जो ऐसे-ऐसे सवाल पूछता है ? पहले उसका चेहरा उतर गया। फिर किसी तरह उदास स्वर में बोला, "सच मानिये, दादाजी, मेरे कोई नहीं है। विश्वास न हो तो मेरे साथ आये हुए लड़कों से पूछ लीजिये। दादाजी, मुझे भी अपने साथ लेते चलिये।" सच पूछा जाय तो वह एक तरह से गिड़गिड़ाने ही लग गया। कारण यह था कि वृद्ध पुरुष के रूप में घर से बाहर रहने का जो सुयोग हाथ लगा था, उसे वह खोना नहीं चाहता था।

"बिना ठीक तरह से जाने-पूछे, इसे साथ ले जाना कहां तक उचित होगा ?" मुत्तु ने अपना संदेह फिर से दुहराया।

"लड़का झूठ क्यों बोलेगा ? आओ बेटा, हमारे साथ। छोटे-मोटे कामों के लिए तो हमें एक छोकरे की जरूरत पड़ती ही है।" कहकर वे वृद्ध किट्टु को भी खाने के लिए साथ ले चले। उसी समय से किट्टु उन बरातियों में से एक हो गया।

दूसरे दिन रात को बरातियों का वह दल एक दूसरे गांव की धर्मशाला में जा ठहरा। भोजनादि से निवृत्त होने पर लोग गप-शप करने बैठ गए। जिस लड़के की शादी होनेवाली थी, उसकी बड़ी बहन का एक लड़का था। वह अपने मां-बाप का इकलौता बेटा था और सबका लाड़ला था। वह कुछ गुनगुनाने लगा तो दूल्हे ने वृद्ध पुरुष से कहा, "जानते हैं, हमारा कुंजु बहुत सुन्दर गाता है !"

"अच्छा ! यह गाना भी जानता है ? मुझे तो इसका पता ही न था ! अरे बेटा, एक गाना सुनाओ तो।" वृद्ध पुरुष ने उसे प्रोत्साहित किया।

"मैं नहीं गाऊंगा। मुझे शरम आती है !" कहकर वह अपनी मां की ओर चल दिया। इतने में दूल्हे ने हाथ बढ़ाकर उसे पकड़ लिया और दादा के पास खींच लाया। बोला, "अरे, दादा तुम्हारा गाना सुनना चाहते हैं। गाना सुनने के बाद ही तो वे तुम्हें होशियार कहेंगे। जिद छोड़कर एक अच्छा-सा गाना सुना दो।"

"स्कूल में इसने बहुत-से पुरस्कार पाये हैं। यह मामूली गायक नहीं

है। मन होने पर ही गाता है। मन न हो तो एकदम जिद पकड़ लेता है!" मां ने गर्व से बच्चे की सराहना की।

आधे घंटे के प्यार-मनुहार और डांट-डपट के बाद लड़के ने मुंह खोला। नन्हा-सा बच्चा गा रहा है, ऐसा सोच कर सब लोगों ने उसका गाना बड़े धैर्य से सुना और उसकी बड़ी प्रशंसा की।

किट्टु भी उसका गाना सुन रहा था। उसका गाना सुनकर किट्टु को एक ओर हंसी आई तो दूसरी ओर गुस्सा भी आया! उसकी समझ में नहीं आया कि उस लड़के के अनाड़ी गाने में ऐसी कौनसी विशेषता है, जिसकी इतनी तारीफ की जा रही है! वह तो उस लड़के से कई गुना अच्छा गा सकता है। पर उसकी मां, जब भी कहीं गाने लगता था, तो उसके गालों को लाल किये बिना नहीं छोड़ती थी। क्यों? क्योंकि मां को उसकी विद्या की कद्र करना नहीं आता था। अपनी मां के इस आचरण पर उसे बड़ा गुस्सा हो आया। उस लड़के के लिए उसके मन में घृणा पैदा हुई। न गाना जानता है, न गाने का शऊर है। फिर ये लोग इसे सिर पर क्यों चढ़ाते हैं? इसकी इतनी तारीफ क्यों करते हैं? ये सारी बातें जब उसकी समझ में नहीं आईं तो घृणा और भी उभर आई। क्या, उससे कोई यह नहीं पूछेगा कि क्यों बेटा, तुम्हें भी गाना आता है क्या? बस, कोई इतना ही पूछ ले तो वह वहीं गाने की ऐसी अमृत-वर्षा कर देगा कि लोग जीवन-भर याद रखेंगे। उस लड़के के बेसुरे गानों को सुननेवाले कानों में वह मधुर स्वरों को ऐसा भर देगा कि लोग झूम उठेंगे। पर कोई पूछे तब न? किट्टु से किसीने न तो गाने को कहा और न वहां उसकी उपस्थिति को किसीने अनुभव ही किया। वहां था ही कौन, जो कि उनका ध्यान उसकी ओर आकर्षित करता! वहां तो वही लाड़ला सबके लिए आकर्षण का केन्द्र बना हुआ था।

लाड़ले का गाना खत्म हुआ। सब अपने-अपने बिस्तर लगाकर लेटने का उपक्रम करने लगे। वृद्ध पुरुष ने भी अपने लेटने का प्रबन्ध किया। बिस्तर पर बैठकर पानदान खोला, मुंह में सुपारी डाली। हाथ में पान लेकर चूने की डिबिया खोली तो उसमें चूना नहीं था। किट्टु को बुलाकर कहा, "जरा, जाकर चूना लाना, बेटा।"

किट्टु उनका हुक्म बजा लाया और पास आकर खड़ा हो गया। वृद्ध ने कहा, "खड़े क्यों हो ? जाओ, सो जाओ।"

किट्टु वहाँ से न हिला, न डुला। हिचकता-सा खड़ा ही रहा। वृद्ध ने उसे खड़े देखकर पूछा, "क्यों क्या चाहते हो ? खड़े क्यों हो ?"

किट्टु ने धीमे स्वर में कहा, "दादाजी, मैं गाऊंगा तो क्या आप सुनेंगे ?" उस समय उसके दिल में यह तीव्र अभिलाषा उठ खड़ी हुई थी कि वह किसीको अपना गाना सुना दे। बिना ऐसा किये उसे लगा कि नींद ही नहीं आवेगी।

इतनी देर तक लाड़ले का गाना सुनने से वृद्ध पुरुष ऊब चुके थे। देव या गंधर्व गान सुनने की भी अब उनमें हिम्मत नहीं रही थी। इसके अतिरिक्त उनकी आंखों में नींद भर आई थी। इसलिए बोले, "तुम्हारा गाना किसी और दिन सुनूंगा। अब जाकर तुम सो रहो।"

इतना कहकर वह बिस्तर पर लेट गये।

बरातियों के उस दल में किट्टु से सहानुभूति रखनेवाला अगर कोई था तो वही वृद्ध पुरुष थे। उन्होंने भी जब उसे अपनी कला के प्रदर्शन का अवसर नहीं दिया और अपने उत्तर से उसके उत्साह पर पानी फेर दिया तो वह बहुत ही निराश और उदास हो गया।

उस खिन्नावस्था में उसने दिल में यह निश्चय कर लिया कि उसे इस जन्म में इतना पुण्य करना चाहिए कि चाहे अगले जन्म में ही सही, इस लाड़ले की तरह उसे भी कोई अपना लाड़ला बनाये। फिर बिस्तर पर लेटकर सुबुद्धि, सुविद्या और सुकीर्ति प्रदान करने की भगवान से प्रार्थना करने लगा। उसे आसानी से नींद नहीं आई। बहुत देर तक वह अपने भविष्य के बारे में न जाने क्या-क्या सोचता रहा। उसे इस बात का भान भी नहीं हुआ कि कब उसकी आंख लग गई।

३

बरात लड़कीवालों के गांव पहुंची। वर और वधू दोनों बड़े घराने के थे, इसलिए ठाट-बाट से सारा आयोजन हुआ था। शादी में गाने-बजाने के लिए जो शहनाईवाले तैनात थे, वे उसी गांव के थे, पर बजाते खूब थे।

शहनाई बजने लगती तो किट्टू वहां आकर बैठ जाता था। लोग उसे कई छोटे-मोटे काम देते रहते थे, पर जैसा भी काम होता, उससे निबटकर वह शहनाईवाले के पास आकर बैठ जाता था।

एक बार ताल देनेवाले लड़के को, तबलची ने किसी काम से कहीं भेज दिया। विवाह-मंडप में हवन या न जाने क्या हो रहा था। "बाजा, बाजा!"—पंडित-पुरोहितों के समूह में से किसीने आवाज दी। स्वर भरनेवाले व्यक्ति ने स्वर भरना आरम्भ कर दिया। तबलची ने तबले पर थाप लगाई, लेकिन ताल देनेवाला लड़का अभी तक नहीं लौटा था। इसलिए स्वर भरनेवाले व्यक्ति ने ही एक हाथ से अपना बाजा संभालकर दूसरे हाथ से ताल देनी शुरू की। शहनाईवाले ने राग अलापा, एक पद गाया और फिर सरगम बजानी शुरू की।

किट्टु एक खंभे की आड़ में बैठकर बड़े चाव से बाजा सुन रहा था। स्वर भरनेवाला ठीक-ठीक ताल नहीं दे पाया तो तबलची उसे ऐसे घूरने लगा, मानों कच्चा ही चबा जायगा। पर उसकी उस जलती निगाह का कुछ भी असर नहीं हुआ। बेचारे स्वर भरनेवाले का दोष इतना ही था कि उसे ताल का सही ज्ञान न था। किट्टु हिम्मत करके उठा और सामने जा खड़ा हुआ। फिर उंगलियों की पोर पर गिनकर, काल-प्रमाण के अनुसार, ताली बजाकर उसे बताने लगा। यह देखकर शहनाईवाले और तबलची, दोनों आश्चर्य-चकित रह गये। उन्हें इस बात का बड़ा अचरज हो

रहा था कि इतनी कच्ची उम्रवाले लड़के को ताल की गति का ठीक-ठीक निर्णय करने का ज्ञान कहां से प्राप्त हुआ ?

इसी बीच किट्टु को खोजते हुए वहां कोई आ पहुंचा। "क्यों रे, छोकरे, कितनी बार मैं तुझसे कह चुका हूं कि कमरे से बाहर न निकला कर। पर तू तो सुनता ही नहीं और यहां आकर बैठ जाता है ! आगे कभी तुझे यहां बैठा पाया तो तेरी खाल उधेड़ दूंगा !"—डरा-धमकाकर वे अन्दर चले गये। किट्टु भी चुपचाप उठकर चला गया।

शादीवाले घर में उसे काम की कोई कमी न थी। भोजन करनेवालों को पानी देना, तश्तरियों में पान-सुपारी सजाकर रखना, शादी में सम्मिलित होने आनेवाले नये-नये मेहमानों की खातिरदारी में चन्दन का प्याला और मिश्री की थाली बढ़ाना, आदि बहुत-से काम उसे करने पड़ते थे। लेकिन फिर भी इन कामों से जो कुछ समय बचता, उसे वह शहनाई सुनने में ही गुजारता था।

उस दिन शाम को 'नलंगु'[1] के अवसर पर बाजा बजाने के लिए शहनाईवाले आ गये थे और पड़ोस के घर के चबूतरे पर बैठे थे। किट्टु को देखते ही शहनाईवाले के दिल में उसके लिए एक प्रकार का प्यार-सा उमड़ आया। बोला, "आओ, बेटा, ऐसा लगता है, तुम्हें गाना अच्छा आता है।"

"हां-हां, गाता तो अच्छा ही हूं !"—किट्टु ने बेखटके उत्तर दिया।

"तो एक गाना सुनाओ न ?"

किट्टु एकदम प्रसन्न हो उठा और गाना गाने लगा। उसकी आवाज़ बड़ी सुरीली थी। ऐसा मधुर कंठ शायद ही किसीने पाया हो। उसके गले से वह स्वर-लहरी उठती थी, मानो चांदी की घंटी टन-टन बजती हो। अभी बालक होने से उसका कंठ फूटा नहीं था। वह कोई तान छेड़ता तो लगता, मानो पेड़ की स्निग्ध शीतल छाया में फुदकती मैना चहक रही हो। उसकी उम्र की अपेक्षा उसका ज्ञान बढ़कर था। उसका काल-निर्णय

---

१. एक ऐसी क्रीड़ा, जिसके द्वारा नव-विवाहित दम्पति एक-दूसरे के निकटतम सम्पर्क में लाये जाते हैं। इसमें गाजे-बाजे और हास-परिहास प्रेमोद्दीपन का काम करते हैं।

बड़ा सही था और गीत भी भावों से ओतप्रोत थे।

शहनाईवाला चकित रह गया। उसकी समझ में कुछ न आया कि किन शब्दों में किट्टु की सराहना करे।

"किट्टु, किट्टु," बुलाते हुए एक वृद्ध पुरुष वहां आ पहुंचे। मधुर सस्वर में गाने की आवाज़ सुनकर पड़ोस के घर में उन्होंने झांककर देखा, किट्टु गा रहा था। गाना सुनते-सुनते वे आनन्द-विभोर हो गये। किट्टु ने गाना पूरा किया तो वे उसके निकट गये और अपने हाथ से उसकी पीठ थपथपाने लगे।

"वाह, कसा गला पाया है इस बच्चे ने! इस छोटी-सी उम्र में, भगवान जाने, इतना ज्ञान इसे कहां से मिल गया है!" शहनाईवाले ने किट्टु की प्रशंसा करते हुए कहा। शायद उसने सोचा था कि किट्टु उस बूढ़े का पोता या नाती है। पूछा, "बच्चा संगीत किससे सीख रहा है?"

"यह तो बेचारा अनाथ बालक है।...क्यों किट्टु, तुमने गाने की शिक्षा किससे पाई?" बूढ़े आदमी ने पूछा।

"किसीने मुझे कुछ नहीं सिखाया, दादाजी। बार-बार सुनने से मुझे आ गया है।" किट्टु ने उत्तर दिया।

"ईश्वर की विचित्र लीला देखिये कि इस बेचारे अनाथ बालक में उसने कैसी सुन्दर गान-विद्या ठूंसकर भर दी है! संगीत की इसे विधिवत् शिक्षा दी जाय तो अपना नाम ऊंचा करेगा। मैं तो कहूंगा कि यह माणिक है, मालिक, माणिक!" शहनाईवाले ने कहा।

"मुझे इस बात की आशा ही नहीं थी कि इस लड़के में संगीत का इतना अच्छा ज्ञान छिपा होगा। उस दिन इसने कहा था कि मैं गाऊंगा तो मैंने इसकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया था। पर अब मालूम होता है, मैं गलती पर था। इसमें बड़ी दैवी विद्या छिपी है।" वृद्ध पुरुष ने कहा।

"इस दिशा में इसे बढ़ावा दिया जाय तो मेरा विचार है, संगीत का गौरव बढ़ेगा।" शहनाईवाले ने कहा।

"मेरे मन में एक बात आती है। तिरुवैयारू के सभेशय्यर का नाम तुमने सुना है न?" बूढ़े आदमी ने पूछा।

"आप भी कैसी बात करते हैं, मालिक? तिरुवैयारु के उस महान

गायक को कोई न जाने तो वह संगीतज्ञ कसा ? वे तो महापुरुष हैं। संगीत के लिए अपना जीवन ही उन्होंने होम दिया है। आज के सारे गवैये उनके पुण्य-प्रताप और प्रसाद से ही तो थोड़े-बहुत चमक रहे हैं!" शहनाई-वाले ने उत्तर दिया।

"वे मेरे जाने-पहचाने ही नहीं, भाई-बंद भी हैं। सोचता हूं, इस लड़के के संबंध में उन्हीं से कहूं और वहीं इसे शिक्षा-दीक्षा के लिए छोड़ आऊं।" वह बोले।

"नेकी और पूछ-पूछ! वहां इसे पहुंचा दिया तो समझ लीजिए कि इसका भाग्य जग गया। उनसे संगीत सीखने का अवसर तो भाग्यवानों के ही हाथ लगता है।"

"उन्हें राजी करने का काम मेरा है।" वह वृद्ध बोले।

"जन्म-जन्मान्तर का ही पुण्य है कि लड़के में संगीत के लिए इतना लगाव है। ठीक तरह से इसकी शिक्षा-दीक्षा हो तो बड़ा यशस्वी होगा।" शहनाईवाले कहा।

वृद्ध ने उसका अनुमोदन किया और मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि किसी भी तरह किट्टु को तिरुवैयारु के सभेशय्यर के यहां पहुंचा देना चाहिए। उन्हें इस बात का बड़ा आश्चर्य हुआ कि जिस लड़के को वे अनाथ और आश्रयहीन आवारा समझकर अपने साथ लाये थे, वह कितना मेधावी निकला। सृष्टि की विचित्रता कौन जाने कि कहां कौन छिपा होगा और कहां कौन-सा फूल खिलेगा! उस लड़के के प्रति उनके मन में सद्भावना जागी और उन्हें इस बात से संतोष हुआ कि लड़के का मन ठीक रास्ते पर चल रहा है।

किट्टु के आनन्द का पारावार न रहा। उसका गांव छोड़कर भाग आना। उसके लिए एक प्रकार से वरदान ही सिद्ध हुआ। पाठशाला के बंधे वातावरण में बैठकर मेंढक की तरह गला फाड़-फाड़कर चीखने-चिल्लाने से उसका मन-पसन्द गाना सीखना कितना सुखकर है! भगवान की करुणा का ही यह फल है!

शादीवाले घर भर में किट्टु की बड़ी चर्चा होने लगी। 'नलंगु' के समय अधिकांश गीत किट्टु ने ही गाये। छोटे-मोटे काम करनेवाले लड़के

के मुंह से इतने उत्तम गाने सुनकर सब लोगों ने दांतों तले उंगली दबा ली। किट्टु के प्रति लोगों का आदर-भाव बहुत बढ़ गया। पहले काम देते हुए जो लोग उसके साथ सख्ती करते थे, वे ही अब बड़ी नरमी से पेश आने लगे। बड़ा प्यार जताकर मुंह पर मुस्कान लाकर वे उससे काम लेने लगे। पर वह लड़का जिसने पहले धर्मशाला में अपने गानों से लोगों को मुग्ध करने की चेष्टा की थी, किट्टु के प्रति अत्यन्त घृणा दिखाने लगा। 'गाता अच्छा है' यह नामवरी लूटने को यह अनाथ और अपरिचित लड़का कहां से आ टपका! अपना असन्तोष और घृणा दर्शाने के लिए वह उसके साथ बड़ी बेरुखी से व्यवहार करता, परन्तु किट्टु ने उसकी जरा भी परवा न की। कहां उसकी विद्या-संपन्नता और कहां इसकी विद्या-शून्यता! इसलिए उस लड़के की ईर्ष्या भी उसे आनन्द ही देती थी।

४

किट्टु और वह बूढ़े सज्जन जब तिरुवैयारु में सभेशय्यर के घर पहुंचे तो तीसरे पहर के तीन बज चुके थे ।

सभेशय्यर एक तख्त पर पीठ टेके बैठे थे । नीचे बाघ-चर्म बिछा था । हाथ में वाल्मीकि रामायण थी । अच्छा-खासा लम्बा कद था उनका । मुख से तेज टपक रहा था । विद्या, विनय और शक्ति की त्रिवेणी ने उन्हें गांभीर्य प्रदान कर रक्खा था । हाथ की रामायण चौकी पर रखकर वह बोले, "आइये, गणेश शास्त्रीजी । आइये, क्या बात है ! बहुत दिनों से इधर आप दिखाई ही नहीं दिये !"

वृद्ध गणेश शास्त्री ने किट्टु को पहले ही समझा रक्खा था कि उसे वहां जाने पर क्या करना चाहिए ।

उसके अनुसार किट्टु ने सभेशय्यर को साष्टांग नमस्कार किया । उन्होंने उसे आशीर्वाद दिया । पर किट्टु बैठा नहीं, जरा हटकर बड़े विनय से खड़ा रहा । केवल गणेश शास्त्री बैठे ।

किट्टु ने एक बार सारी बैठक में निगाह दौड़ाई । एक कोने में सुन्दर-सा तानपूरा लटक रहा था । दूसरी ओर एक वीणा थी । सामने श्रीरामचन्द्र के राज्याभिषेक का चित्र रक्खा था । उसके पार्श्व में त्याग-ब्रह्म[१] का चित्र था । चित्र के नीचे पूजा की अलमारी थी, जिसमें पूजा की पेटी और सामग्री रक्खी थी ।

"आप इतने दिनों से मिले ही नहीं ! बात क्या है ?" सभेशय्यर ने

---

१. सन्त त्यागराज

पूछा।

"गांव से बाहर गया था। कुछ इधर-उधर आने-जाने का काम आ पड़ा। फिर वेंकिट्टु के पोते की शादी थी न? उनके साथ दक्षिण में घूमने चला गया था। इसीसे इस तरफ नहीं आ सका!"

"ओ हो, यह बात है! ...हां, यह लड़का कौन है?" सभेशय्यर ने पूछा।

गणेश शास्त्री गला साफ करके बोले, "इसी लड़के के संबंध में आज यहां आया हूं।"

सभेशय्यर चुपचाप लड़के की ओर देख रहे थे।

"शादी में गये थे न? वहीं अचानक यह हमें मिल गया। स्वभाव का अच्छा है। इसके मां-बाप नहीं हैं। लड़के को अनाथ और अनाश्रय पाया तो मेरा दिल पसीज गया। शिक्षा-दीक्षा दिलाकर इसे आदमी बनाने का प्रयत्न करें, इस विचार से इसे साथ ले आया हूं। पर आने पर देखता क्या हूं..." कहते-कहते गणेश शास्त्री रुक गये।

शास्त्रीजी आगे क्या कहेंगे, यह समझ न सकने के कारण सभेशय्यर विस्मय से शास्त्रीजी की ओर देखने लगे।

"इसे साथ लाकर मैंने ठीक किया या गलत, अब इसे अपने पास रखना उचित नहीं मालूम देता।" शास्त्रीजी ने अपनी बात पूरी की।

"आप कहना क्या चाहते हैं? समझ नहीं पाया।" सभेशय्यर ने कहा।

"क्या कहूं मैं! दिव्य कंठ पाया है इस लड़के ने। साथ ही इसे संगीत का गहरा ज्ञान भी है। इसे अपने पास रखकर मैं क्या करूं? इसके रहने की जगह तो यही है। इसे सिखा-पढ़ाकर आदमी बनाना आपकी जिम्मेदारी है। मैंने इसका गाना सुना तभी इस नतीजे पर पहुंच गया। इसलिए अब आप ही को कृपा करके इसे संगीत-विद्या-विशारद बनाना है।" शास्त्रीजी ने प्रार्थना के स्वर में कहा।

"शास्त्रीजी, आपका कहना ठीक है, पर मेरी तो ढलती उम्र है। मैं इसे कहां से अच्छी शिक्षा दे पाऊंगा? मेरे सिखाये लोग हैं, और भी बड़े-बड़े विद्वान् हैं। वहीं कहीं इसका इन्तजाम कर दीजिये न? आपसे नहीं बने तो मैं किसीसे कहकर प्रबन्ध करा दूंगा।" सभेशय्यर ने कहा।

"नहीं-नहीं, आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए। दूसरों से सीखना

कुछ और है, आपसे सीखना कुछ और। दोनों एक कैसे हो जायंगे ? लड़के में विशेष योग्यता है, ऐसा समझकर मैं इसे आपके पास लाया हूं। आप इसकी परीक्षा ले लीजिये, तब कहिये। आपके दिल को अगर सन्तोष न हो तो आप जो उचित समझें, सो करें। न जाने यह लड़का कौन है और मैं कौन हूं। हममें कोई ऐसा नाता-रिश्ता तो है नहीं। इसमें मुझे कुछ विशेषता दिखाई दी तो विचार आया कि उसे प्रकाश में लाना चाहिए। यही कारण है कि इसे मैं आपके पास ले आया।" गणेश शास्त्री ने कहा।

हां, वह कहते तो ठीक ही थे। इसमें शास्त्रीजी का और क्या मतलब हो सकता था ?

शास्त्रीजी की बातों में सच्चाई दिखाई दी तो सभेशय्यर ने कहा, "गणेश शास्त्रीजी, शास्त्र कहते हैं कि विद्या की याचना करते हुए कोई आये तो इन्कार करना पाप है। मैंने भी अपने ज्ञान के अनुसार कुछ लोगों को सिखाया-पढ़ाया है। लेकिन इस बात को बहुत लोगों ने ठीक-ठीक नहीं समझा कि संगीत क्या है और उसकी साधना कैसे की जानी चाहिए।"

इतना कहकर वह कुछ रुके, फिर बोले, "हमारे बड़े बुजुर्ग तो संगीत को योग और तप मानकर साधना करते थे, लेकिन आजकल के हमारे गवैये तो संगीत को यश, धन और प्रभुत्व पाने का साधन-मात्र समझते हैं और इसीमें अपनी संगीत-साधना की इतिश्री मान लेते हैं। सच तो यह है कि संगीत आजकल एक पेशा हो गया है। मनुष्य को ऊपर उठाकर आत्मज्ञानी बनाने का काम छोड़, वह स्वयं इतना नीचे उतर आया है कि एक प्रकार से वह लौकिक व्यापार ही बन गया है। इसलिए मेरा दिल इतना ऊब गया है कि किसीको संगीत सिखाने को मन ही नहीं करता।"

"आपका कहना बिलकुल ठीक है। लेकिन जरा सोचिये कि दुनिया के ठीक न होने से हम अपने कर्तव्य से मुंह मोड़ लें क्या यह उचित होगा ? हो सकता है कि इस लड़के के द्वारा संगीत-जगत का बड़ा लाभ हो और संगीत-सरस्वती की कीर्ति में चार चांद लग जायं। उससे हम दुनिया को वंचित क्यों रक्खें ? इसलिए मैं तो यही कहूंगा कि हम अपना कर्तव्य पूरा करें, शेष सब ईश्वर की मर्जी पर छोड़ दें !" शास्त्रीजी ने कहा।

"यह लड़का किस गांव का रहनेवाला है ?"

"मैंने इसे मात्तूर में देखा था और वहीं से साथ लिया था। असल में यह रहनेवाला तो इलुप्पूर का है।"

"क्यों बेटा, तुम्हारे पिताजी का क्या नाम है?" सभेशय्यर ने पूछा।

"मेरे पिताजी का नाम वैत्ति है।" किट्टु ने बड़े विनय से उत्तर दिया।

"तो यह कहो कि तुम इलुप्पूर वैत्ति के बेटे हो!" सभेशय्यर ने उसके पिता का नाम लेकर आश्चर्य प्रकट किया तो किट्टु के छक्के छूट गये, उसका दिल एकदम बैठ गया। जब कभी पिता की बात चल पड़ती, मां और मामा के मुंह से अवज्ञा और अपशब्दों को छोड़ और कुछ नहीं सुना था। अब उसने सोचा कि इनके मुंह से भी अपशब्द ही निकलेंगे। लेकिन उसकी आशा के विपरीत जब सभेशय्यर के चेहरे पर प्रकाश की रेखाएं उभर आईं तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

सभेशय्यर ने गणेश शास्त्री की ओर मुड़कर कहा, "शास्त्रीजी, इस लड़के के पिता से एक बार मिला हूं और उसका गाना भी सुन चुका हूं। बेचारा छोटी उमर में ही चल बसा! वाह, उसके सुरीले कंठ का क्या कहना था! विद्वत्ता में भी वह किसीसे रत्तीभर भी कम न था। लेकिन स्वभाव का बड़ा टेढ़ा था। संगीत में तो वह और भी वक्र था। बड़ी संगीत-परंपरा में उसका जन्म हुआ था। नियम-संयम से रहा होता तो महान् कीर्ति का पात्र हुआ होता। एक मित्र उसे मेरे पास बुला लाये और कुछ दिनों के लिए उसे मेरे साथ रखने का प्रयत्न भी किया। वह इसके लिए राजी भी हो गया। कह गया कि गांव जाकर कुछ दिनों में लौट आऊंगा। लेकिन वह लौटा नहीं। मैं उत्सुकता से उसकी बाट जोह रहा था। जब मैंने सुना कि यहां आने का वादा करके जानेवाला वैत्ति इस दुनिया ही से रूठकर चला गया तो मुझे बड़ा दुःख हुआ। मेरी वेदना का मुख्य कारण यह था कि हम लोग सिखा-पढ़ाकर उसे बड़ा आदमी नहीं बना पाये और अपने कर्तव्य से वंचित रह गये।"

थोड़ी देर के मौन के बाद वे फिर बोले, "ईश्वर की इच्छा भी बड़ी विचित्र है। देखो तो, बाप के बदले बेटे को मेरे यहां भेज दिया है। हम अपना काम करें। लड़के का जैसा भाग्य होगा, वैसा होगा।"

किट्टु और गणेश शास्त्री की समझ में नहीं आया कि इसके उत्तर में क्या कहें !

गणेश शास्त्री ने अत्यंत आदर भाव से पूछा, "आप एक बार लड़के का गाना सुन लें तो अच्छा होगा।"

"उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। इस लड़के के रक्त में चार-पांच पीढ़ियों से संगीत प्रवाहित हो रहा है। इसे संगीत की शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं होगी। वह इसे तो स्वयं ही आ जायगा। हम बस रास्ता दिखा दें तो यही पर्याप्त होगा !" सभेशय्यर ने कहा।

"अब तो आप ही का भरोसा है।" शास्त्रीजी ने कहा।

"नहीं, सब भगवान का भरोसा है। उन्होंने तो इसे इलुप्पूर से यहां पहुंचाया है। मुहूर्त्त भी अच्छा है। विजयादशमी निकट है। उसी दिन श्रीगणेश कर दूंगा। आप किसी शुभ दिन लड़के को यहां पहुंचा दीजियेगा।" सभेशय्यर ने कहा।

"अच्छा !" कहकर शास्त्रीजी किट्टु की ओर मुड़े। उन्होंने आंखों-ही-आंखों में किट्टु को संकेत किया और वह तुरन्त सभेशय्यर के चरणों में साष्टांग दंडवत करने के लिए झुक गया।

फिर शास्त्री और किट्टु विदा लेकर वहां से चल दिये।

५

विजयादशमी के दिन किट्टु की संगीत की शिक्षा प्रारम्भ हुई।

सभेशय्यर केवल संगीत के ही विद्वान् न थे, बल्कि अन्य कलाओं में भी निपुण थे। वाल्मीकि रामायण का उन्होंने गहरा अध्ययन किया था। जब वह यौवनावस्था में थे, तब भी बाहर गाने के लिए अधिक नहीं जाते थे। संगीत को पेशा बनाने का विचार उनके मन में कभी नहीं आया। अब जबकि उनकी उम्र ढल रही थी और शरीर की सारी शक्तियां जवाब दे रही थीं, वह कहां से संगीत-सभाओं में गाना सुनाने जाते? उसके बदले वह रामायण का 'हरिकथा' के रूप में पाठ करते। मानव-रूप धारण कर और आदर्शमय जीवन बिताकर मानव-समाज का मार्ग-दर्शन करनेवाले मर्यादा-पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र की कथा लोगों को सुनाने तथा आदिकवि वाल्मीकि के काव्य को बार-बार पढ़ने में उन्हें अपार आनन्द प्राप्त होता था।

कहने की आवश्यकता नहीं कि संगीत का उन्हें सूक्ष्म-से-सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त था। वह संत त्यागराज की सीधी शिष्य-परम्परा में से थे। इस कारण उनमें त्याग-ब्रह्म की नादोपासना तथा राम-भक्ति सम्पूर्ण रूप से प्रकट होती थी। वह त्यागराज को आदिकवि वाल्मीकि का दूसरा अवतार मानते थे और बड़ी श्रद्धा-भक्ति से उन्हें पूजते थे। जिस प्रकार वाल्मीकि ने अपने अमर ग्रन्थ द्वारा जन-सामान्य के हृदय में राम-नाम को अमिट अक्षरों में अंकित कर रक्खा है, उसी प्रकार महात्मा त्यागब्रह्म ने महिमामय राम-नाम को जनता की जिह्वा पर प्रतिष्ठापित कर उन्हें अज्ञान के अन्धकार से निकालकर ज्ञान के प्रकाश में लाने का सत्कार्य बड़ी सरलता से किया है—ऐसा दृढ़ विचार उनके दिल में जम गया था। अतः उनके

हृदय के अन्तराल में श्री रामचन्द्र की दिव्य मूर्ति, मुख पर त्यागय्यर की कृति और मानस-पटल पर वाल्मीकि की महान् कथा, सदा-सदा के लिए स्थान पा चुकी थी।

उनकी सच्चरित्रता और विद्वत्ता के कारण, लोग उनपर बड़ी श्रद्धा-भक्ति रखते थे। उनके तेजस्वी मुख और उसपर विराजती शान्ति और गम्भीरता को देखकर लोग बरबस कह उठते थे कि यह साधारण मनुष्य नहीं हैं, वरन् महापुरुष हैं।

वह नित्य प्रातःकाल साढ़े चार बजे बिस्तर छोड़ देते थे। किट्टु को भी जगा देते थे। हाथ-मुंह धोकर रामायण के कुछ श्लोकों को कण्ठस्थ करते थे और किट्टु को भी करवाते थे।

किट्टु बड़े चाव से उन श्लोकों को याद करता जाता था। उसे यह श्लोक-पाठ उतना अप्रिय नहीं लगा। न 'शब्द' याद करना अथवा वेदाध्ययन करना पहले जैसा कठिन मालूम हुआ। गुरुजी जो कुछ कहते हैं, उसे दुबारा अपने मुंह से कहना पड़ता है। इतना ही न? फिर भी शुरू-शुरू में उसका दिल आपत्ति करता था कि आया तो तू संगीत सीखने है, पर यह कौन-सी बला है कि श्लोक रट रहा है! लगता है, यह संस्कृत तेरा पीछा नहीं छोड़ेगी!

लेकिन होते-होते दिल से वह भावना दूर हो गई। उसे मालूम हो गया कि यह पाठ में शामिल नहीं है। सवेरे जागने पर राम-नाम का उच्चारण करने के लिए इसे साधन-स्वरूप मानकर सभेशय्यर रामायण के हर प्रसंग को कण्ठस्थ कराने का प्रयत्न करते हैं, इस बात का पूरा विश्वास होने पर उसके दिल से यह डर दूर हो गया कि वह पाठ है। इसके अलावा सभेशय्यर की राम-भक्ति धीरे-धीरे किट्टु के दिल में अंकुरित होकर पल्लवित होती गई।

इस तरह सभेशय्यर किट्टु को रामायण के श्लोक सिखाते थे। उसके बाद संगीत की शिक्षा देते थे। पाठ पूरा होते-होते पौ फटने लगती। दोनों उठकर कावेरी में स्नान के लिए चल पड़ते। स्नानादि से निवृत्त होकर घर लौटने पर सभेशय्यर पूजा में बैठ जाते। पूजा-अर्चना कोई दस बजे तक चलती। उससे निपटकर हाथ में तानपूरा ले लेते और त्यागराज

के चित्र के सम्मुख बैठकर गाने लग जाते। गायन लगभग आध घंटे तक चलता। उसके बाद थोड़ी देर आराम करते। इतने में बारह बज जाते। सुबह के समय वह कलेवा नहीं करते थे, इसलिए बारह बजने पर भोजन कर लेते। किट्टु सवेरे बासी भात खा लेता, सो थोड़ी देर बाद खाने को बैठता।

भोजन के उपरान्त सभेशय्यर झूले पर बैठकर वाल्मीकि रामायण के पन्ने पलटते रहते थे। कभी नींद आ जाती तो थोड़ी देर झूले पर लेट जाते और मीठी झपकी ले लेते थे। वे सोते भी थे तो भी आध या पनौ घंटे से अधिक नहीं।

कोई तीन बजे किट्टु को बुलाकर गाने को कहते। वह गाता रहता। समय-समय पर, बीच-बीच में जो सिखाना होता, सो सिखाते रहते थे।

इस बीच शास्त्रों के या संगीत के मर्मज्ञ व्यक्ति या विद्यार्थी आते। उनके साथ बातें करके उन्हें विदा कर देते।

शाम को संध्या के कार्यों से निवृत्त होकर, थोड़ी देर तानपूरा लेकर गाते उनको गाते हुए देखने पर ऐसा लगता कि गायन भी उनकी पूजा-विधियों में एक है और वे उसे ईश्वरार्पण कर रहे हैं। थोड़ी देर गाने के बाद आहारादि करते और द्वार पर चौकी डालकर बैठ जाते।

उनका जीवन शील-संयम और शान्ति से परिपूर्ण था। उनके हृदय में एक प्रकार से अनासक्ति विद्यमान थी, जो उनके हर काम में प्रतिभासित होती थी। उन्हें मोह-माया ने अपने जाल में नहीं फंसा रक्खा था। उनकी धर्मपत्नी धर्माम्बाल अपने नाम के अनुकूल उत्तम गुणों से सम्पन्न थीं। यह कहने में अत्युक्ति नहीं होगी कि वह हिन्दू धर्म से ओत-प्रोत नारी-रत्नों की परम्परा को आगे बढ़ाने और उज्ज्वल करनेवाले रत्नों में से एक थीं।

सभेशय्यर पर कुटुम्ब का अधिक भार नहीं था। उनके एक लड़की थी। उन्होंने लाड़-प्यार से उसका भरण-पोषण किया और एक अच्छे घराने के सुशिक्षित और धनी लड़के से ब्याह कर दिया। पर उनकी वह पुत्री चार वर्ष भी अपनी गृहस्थी नहीं चला पाई कि भगवान के घर से उसे बुलावा आ गया। अपनी स्मृति के रूप में एक पुत्र को छोड़कर वह स्वर्ग

सिधार गई।

इस घटना से सभेशय्यर का दिल और भी पक्का हो गया। स्वभाव से ही वह दिल के कड़े थे, रामायण और त्यागय्यर के कीर्तनों में लीन रहते थे। भक्ति के प्रवाह में लोक-व्यवहार के प्रति उनकी आसक्ति बहुत ही घट गई थी। इस घटना ने चोट पहुंचाने के बदले उन्हें और भी अनासक्त कर दिया।

पर उनकी पत्नी धर्माम्बाल के लिए वह दुस्सह दुःख असहनीय हो गया। सभेशय्यर ने कितने ही धर्मों और नीतियों की बातें सुनाकर उसे दिलासा देने का भरपूर प्रयत्न किया, लेकिन दुःख भुलाने की अचूक दवा समय-रूपी वैद्य को छोड़कर और किसके पास है? दुःख पर विजय कालदेव ही पा सके हैं। आखिर कोई उपाय कारगर होते न देखकर सभेशय्यर ने अपने ही दिल को समझाया कि काल-चक्र के घूमते-घूमते वह अपना दुःख स्वयं ही भूल जायगी। उसे सान्त्वना देने के विचार से लड़की जो लड़का छोड़ गई थी, उसे ले आये और दोनों उसका पालन-पोषण करने लगे। उस लड़के का नाम था महादेव। किट्टु जब विद्याभ्यास के लिए उनके यहां आया, तब उसकी उम्र किट्टु की उम्र के बराबर ही थी। वह भी सभेशय्यर से संगीत और शास्त्र की शिक्षा पाता था।

सभेशय्यर की रामायण 'हरिकथा'[1] किट्टु के दिल पर अपना प्रभाव डालने लगी और श्रीराम का दिव्य स्वरूप उसके हृदय-पटल पर गहरा अंकित होने लगा। राम की लोकरंजक कथा को सभेशय्यर बड़े ही सुन्दर ढंग से सुनाते थे। प्रसंग के अनुरूप त्यागराज के पदों को ऐसा गाते कि सुननेवाले झूम उठते। साहित्य के शिखर पर विराजनेवाले वाल्मीकि और संगीत के शिखर को सुशोभित करनेवाले संत त्यागराज, ये दोनों किट्टु

---

१. हरिकथा एक प्रकार का स्व-अभिनय है। इसमें कथावाचक को अपने हाव, भाव, गायन, अभिनय द्वारा भी लोगों के चित्त को आकर्षित करना होता है। सच पूछा जाय तो इसमें कथावाचक को हर कला का उस्ताद होना पड़ता है। तभी वह लोगों के दिल पर अपना असर डालने में समर्थ हो सकता है।

के बाल-हृदय में जीवन-मार्गदर्शी मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी का दिव्य स्वरूप अमिट रूप से अंकित कर रहे थे। गुरु का पवित्र जीवन और उच्च विचार, उसके हृदय की पवित्रता को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुए।

"शीलहीन विद्या भी कोई विद्या है?" सभेशय्यर अपने आपसे पूछते थे। शास्त्रों और कलाओं से एक बड़ा लाभ है। मनुष्य ने आत्मानुभव प्राप्त करने के लिए बहुत-सी सीढ़ियां बनाई हैं। संगीत-शास्त्र आदि ऐसी ही साधन-पद्धतियां हैं। लोगों के उन्हें जीवन की साधना के रूप में उनकी अवहेलना करने से उनके दिल को बड़ी टेस पहुंचती थी।

ऐसे गुरु महाराज से विद्या प्राप्त करने का सौभाग्य किट्टु को पूर्व-जन्म के पुण्य-प्रताप से ही मिला था। सभेशय्यर का जीवन एक आदर्श जीवन था। जैसे उन्होंने किट्टु को शास्त्र और संगीत की शिक्षा देकर परि-पुष्ट किया था, वैसे ही उनके जीवन-यापन की पद्धति और संयम-शीलता ने उसके नन्हें हृदय में गहरे पैठकर उसके जीवन को संवारने का काम किया था।

अतः उसके दिल में वह बात जड़ पकड़ गई कि उसे उनका कृपा-पात्र बनकर उनका आशीर्वाद पाना चाहिए। स्वभाव से संगीत के प्रति उसकी बड़ी रुचि थी। इसपर जन्म-जन्मांतर की भावना थी सो अलग। इसलिए बिना प्रयास के उसका संगीत-ज्ञान दिनोंदिन बढ़ रहा था। साथ ही, साहित्य के प्रति उसके दिल में जो उदासीनता घर कर गई थी, वह धीरे-धीरे दूर हो गई। इतना ही नहीं, उस पर उसकी श्रद्धा जम गई। मां के बराबर जोर देने पर जो संस्कृत-पाठ उसे बहुत ही अप्रिय लगता था, वह सभेशय्यर के सिखाने की सुरीति के कारण अत्यन्त प्रिय लगने लगा। सभेशय्यर के सिखाये हुए रामायण के श्लोकों को रटते हुए उसके दिल में पहले-जैसा दुःख नहीं होता था। वास्तव में उनको कंठस्थ करने की उसके दिल में गहरी इच्छा पैदा हो गई थी।

अपने पिता के संबंध में लोगों के मुंह से उसने जो कटु शब्द सुने थे, उनके कारण उसके दिल में प्रच्छन्न रूप से यह विचार पोषित हो रहा था कि अपने जीवन को सुधारकर, उसे अपने कुटुम्ब पर लगे धब्बे को धो डालना चाहिए। बचपन में ही उसके दिल में बार-बार यह बात आती थी

कि लोग उसे नेक मानें। वह ऐसी प्रतिष्ठा पाना चाहता था कि लोग कहें, यह अपने पिता जैसा नहीं है, सब तरह से उनसे बढ़कर है।

सभेशय्यर के संसर्ग में आने के बाद उसके अमूर्त विचारों को मूर्त रूप मिल गया और अपनी इच्छाओं को कार्यान्वित करने का मनोबल भी उसे प्राप्त हो गया। सभेशय्यर का जीवन ऊंचे दर्जे का था। वे जिस राम-नाम का उपदेश देते थे, वह भी एक आदर्श पुरुष का था। अतः किट्टु के इस सपने को साकार करने के लिए कि उसके उन्नत आदर्श जीवन को देखकर सारा संसार सराहना करे, सभेशय्यर के जीवन ने रास्ता बना दिया। हां, उनकी जीवन-पद्धति ने किट्टु के मन की उपजाऊ भूमि में पवित्र जीवन के उत्तम बीज बो दिए। जैसे संगीत की शिक्षा ग्रहण की, वैसे ही सभेशय्यर के विशिष्ट गुणों पर अपने को न्यौछावर करके उनका अनुकरण करने का उसे सुयोग मिला। उनके रहन-सहन और आचार-विचारों ने किट्टु के जीवन-दर्शन में ही नहीं, जीवन में भी एक अद्‌भुत चमत्कार उत्पन्न कर दिया।

६

गुरुकुलवास करते हुए विद्याभ्यास करने में अनेक कठिनाइयां और कुछेक सुविधाएं हैं। जैसे विद्यार्थी कई प्रकार के होते हैं, वैसे ही, बल्कि उससे भी बढ़कर, गुरुओं की मनोभावनाएं होती हैं। विद्यार्थियों को गुरुओं का अनुकरण कर अपना जीवन बनाना पड़ता है। उनके आश्रय में रहकर, अनुकूल आचरण से, उन्हें परितृप्त करना पड़ता है और तब कहीं जाकर उनके अनुग्रह और आशीर्वाद का सुपात्र बनकर विद्या प्राप्त करनी होती है। अतः विद्यार्थी इस बात के लिए बड़े प्रयत्नशील रहते हैं कि गुरुओं के मनोनुकूल आचरण कर उनका आशीर्वाद प्राप्त कर लें।

सभेशय्यर से विद्याभ्यास करने का सौभाग्य सुकृतियों को ही प्राप्त होता था। वे विद्याओं का जैसे भंडार थे, वैसे ही विद्यार्थियों के लिए बहुत ही सुलभ भी थे। वे क्रोधी न थे, प्रेमी थे। हमेशा हँसमुख रहते थे और सबके साथ बड़ी नरमी से पेश आते थे। उनसे विद्या अर्जन करने का भाग्य बिरलों को ही मिल पाता था। विद्यार्थियों से वे पुत्रवत् आचरण करते थे और उनके गुण तथा सामर्थ्य को परखकर उसके अनुकूल शिक्षण-क्रम बनाकर सिखाते-पढ़ाते थे।

अतः उनके यहां रहते हुए विद्याभ्यास करने में किट्टू को किसी भी प्रकार की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। उसके नन्हे-से दिल में यह बात अच्छी तरह पैठ गई थी कि वह अनाथ और अनाश्रित है और भली प्रकार विद्या प्राप्त करके ही इस दुनिया में आदमी बनकर जी सकता है। विद्या के प्रति जिज्ञासा, गुरु के प्रति भक्ति, स्वभाव ही से उत्पन्न बुद्धिमत्ता और पूर्व-जन्म के पुण्य-प्रताप—इन सबने मिलकर उसकी प्रगति की रफ़्तार को तेज कर दिया।

लेकिन कुछ ऐसी भी चीजें थीं, जो उसकी कार्य-सिद्धि में रोड़े अटकाती थीं। उनमें से एक था सभेशय्यर का नाती महादेवन्।

महादेवन् और किट्टु, दोनों ही करीब-करीब समवयस्क थे। महादेवन् नानी का बड़ा लाड़ला था। मातृहीन बालक होने के कारण धर्माम्बाल् अपने उस नाती को बहुत चाहती थीं और बड़े ही लाड़-प्यार से उसका पालन-पोषण करती थीं।

महादेवन् को भी सभेशय्यर संगीत की शिक्षा देते थे, पर वह कुछ देर से सीख पाता था। किट्टु झट सीख लेता था। यह देखकर महादेवन् के दिल में ईर्ष्या पैदा हो गई। कभी सभेशय्यर किट्टु की बुद्धि की प्रशंसा करते और महादेवन् की सुस्ती की निन्दा करते। इससे महादेवन् को किट्टु पर बड़ा क्रोध आता। वह यह सोचकर मन-ही-मन जलता-भुनता कि जिस घर में मुझे सब तरह की सुख-सुविधाएं होनी चाहिए और राज करना चाहिए, वहां यह आश्रयहीन व्यक्ति मेरा सिर नीचा करने के लिए कहां से आ टपका! कभी वह सोचता, यह मुझसे अधिक बुद्धिमान् कैसे हो सकता है? यह बहुत दिनों से सीखता आ रहा है, इसलिए जल्दी सीख लेता है। पर मैंने तो अभी-अभी सीखना आरम्भ किया है। ऐसी हालत में नानाजी इससे मेरी तुलना क्यों करते हैं? परन्तु इस बात की याद आते ही उसका दिल भर आता कि रोटी के मुहताज एक प्राणी ने आकर मेरे नाना के मन से मुझे उतार दिया है और स्वयं ने उनके दिल पर अपना आसन जमा लिया है।

वह किट्टु के साथ ऐसा व्यवहार करता था, जिससे उसके दिल को चोट पहुंचे। सच यह है कि वह उसे हर घड़ी हैरान किये रहता था। नानी को उसपर प्रेम दर्शाने का भूलकर भी अवसर नहीं आने देता था। धर्माम्बाल भी जब कभी बच्चों को खाने को मिठाई या और कुछ देती तो पहले महादेवन् को देकर उसे बाहर भेज देतीं और तब किट्टु को गुप्त रूप से देती थीं, नहीं तो महादेवन् लड़-झगड़कर बड़ा उपद्रव मचा देता था।

किट्टु की कुछ-न-कुछ शिकायत करना महादेवन् का स्वभाव बन गया था। यही नहीं, वह उसे किसी-न-किसी काम में घेरे रखता था। उसे अपना नौकर मानकर डांटता-डपटता रहता था। अपने मित्रों के सामने उसे बड़ा

नीचा दिखाता था और उसका अपमान भी करता था। लेकिन किट्टु इस सबकी जरा भी परवा नहीं करता था। उसके गुरु सभेशय्यर और उनकी धर्मपत्नी धर्माम्बाल जब उससे प्रेम से पेश आते हैं, तब इस लड़के के असभ्य व्यवहार से उसका क्या बनता-बिगड़ता है, यह भावना रखकर उसके साथ वह अच्छा सलूक करता था। वह अपने काम से काम रखता था। वह जिस काम से आया था, वह एक महान् कार्य था। उसने अपने मन में ठान लिया था कि जबतक उसका यह काम पूरा न हो जाय, वह स्वयं मनुष्य बनकर सिर उठाकर इस संसार में विचरने न लगे, तबतक चाहे जो भी कष्ट उसे भोगने पड़ें, उन्हें भोगेगा । इसी काम के लिए तो वह अपनी मां और घर को छोड़कर इतनी दूर आया था! इतना होने पर भी कभी-कभी महादेवन् की करतूतें उसके दिल को चोट पहुंचाती थीं। ऐसे अवसरों पर वह अपने को यह कहकर समझा लेता था कि सब्र का फल मीठा होता है।

महादेवन् की क्रूरता-भरी करतूतें सभेशय्यर जब कभी देखते तो उसे टोकते और खरी-खोटी सुनाकर ठीक रास्ते पर लाने का प्रयत्न करते। लेकिन महादेवन् की हरकतों में इन सब बातों से कोई विशेष अन्तर नहीं आया। वे यथापूर्व चलती रहीं। एक बार किट्ट् सभेशय्यर की धोती धोने के बाद महादेवन् के कपड़े धो रहा था। महादेवन् का इस प्रकार किट्टु से काम लेना सभेशय्यर को पसन्द नहीं आया। "किट्टु, आगे से महादेवन् के कपड़े तुम मत धोना। उसे क्या हो गया है, जो वह तुमसे यह काम लेता है!" उन्होंने कड़े स्वर में कहा।

दूसरे दिन सबेरे स्नान करने के लिए किट्टु और महादेवन् कावेरी के पुष्प-मंडल-घाट पर गये। किट्टु स्नान से छुट्टी पाकर अपनी धोती धो रहा था कि महादेवन् ने अपनी धोती उसके आगे करके कहा, इसे भी धो दो।

किट्टु ने कहा, "महादेवन्, तुम अपनी धोती आप धो लो। नाना ने मुझे कहा है कि मैं तुम्हारे कपड़े न धोऊं!"

"वह कहें तो कहें! उससे क्या? मेरे कपड़े धोने का उन्हें पता ही क्यों चले? चुपचाप धो डालो।" महादेवन् ने आज्ञा के स्वर में कहा।

"उन्हें मालूम हो गया तो वह मुझपर नाराज होंगे। तुम्हीं धो लो!" किट्टु ने कहा।

महादेवन् का पारा चढ़ गया, बोला, "धोते हो कि नहीं?"

"नहीं धोऊंगा।" किट्टु ने दृढ़ स्वर में कहा।

उसका इतना कहना था कि महादेवन् बड़े जोर से उसकी ओर लपका और उसे धक्का दिया। अच्छा हुआ कि उस समय किट्टु आखिरी सीढ़ी पर खड़ा था। इसलिए नदी की रेत पर गिरा। कंधों और जांघों में चोट लगी और गालों पर खरोंच आ गई। सभेशय्यर के घर के सामने वेंकु अय्यर नाम के व्यक्ति रहते थे। वह पास ही खड़े यह दृश्य देख रहे थे। महादेवन् की इस करतूत को देखकर उन्होंने डांटा, "अरे पापी, यह क्या कर दिया तूने? धक्का मारकर उसके चोट लगा दी! चल, अभी तेरे नाना से कहता हूं!" उनकी फटकार सुन कर महादेवन् न जाने मन-ही-मन किसे क्या शाप दे रहा था।

घर आने पर सभेशय्यर ने किट्टु को सिर से पैर तक देखा और पूछा, "माथे पर यह चोट कैसे लगी है?"

किट्टु ने बात बनाकर कहा, "घाट पर पैर फिसलने से गिर पड़ा था, इसलिए यह हल्की-सी खरोंच आ गई है।"

पर सभेशय्यर को विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने क्रुद्ध होकर पूछा, "उस नालायक, दुष्ट ने तो कहीं तुझे धक्का देकर नहीं गिरा दिया?"

किट्टु चुप रहा। कोई उत्तर नहीं दिया।

सभेशय्यर ने अपनी पत्नी को बुलाकर कहा, "देखो तो क्या हाल कर दिया है इसका। उस धूर्त को तुम अन्दर मत आने देना। दरवाजे पर ही खड़ा रहेगा और अगर तुमने उसे खाना दिया तो मैं तुम्हें भी घर में नहीं रहने दूंगा। समझीं।"

सभेशय्यर को गुस्सा बहुत कम आता था, पर जब आता तो रुद्र ही हो जाते थे। आसानी से ठंडे नहीं पड़ते थे। धर्माम्बाल उनके इस स्वभाव से भली भांति परिचित थीं, इसलिए नाती के पक्ष में उन्होंने न तो एक भी शब्द कहा और न वकालत ही की। वह जानती थीं कि इनके क्रोध के कम होने तक बोलने से कोई लाभ नहीं होगा।

सभेशय्यर भोजन समाप्त कर चुके, किट्टु खा चुका और धर्माम्बाल भी खा-पीकर सोने चली गईं। सभेशय्यर झूले पर लेटे झपकी ले रहे थे। धर्माम्बाल की आंख लगी ही थी कि किट्टु सूखे कपड़े उठाने के लिए बाहर गया। कड़ी धूप थी, उस समय दोपहर के कोई तीन बजे होंगे। बाहर द्वार पर महादेवन् खड़ा था। उसके शरीर पर जो गीली धोती थी, वह सूख गई थी और पेट में चूहे कूद रहे थे। वह भूख से व्याकुल हो रहा था। नाना का उसपर गुस्सा उतारना, उसे बाहर खड़ा कर अपमानित करना, उसे छोड़कर और सबका पेट भरकर खाना खा लेना, उसे भूख से तड़पते देखकर भी किसीको तरस न आना और सबका मीठी नींद सोना—इस सबसे उसका दिल बेचैन हो रहा था। किट्टु को देखते ही उससे न रहा गया। वह फूट पड़ा। आंखों से आंसू की धारा बहने लगी। उसे रोते और भूख से तड़पते देखकर किट्टु का दिल पसीज गया।

"कहो, महादेवन्, क्या बात है ?" किट्टु ने पूछा।

"बड़ी भूख लग रही है, किट्टु !" महादेवन् ने सिसकते हुए कहा।

"लेकिन मैं क्या कर सकता हूँ ? नानी रसोई के द्वार पर लेटी हैं। जरा-सी आहट होते ही जाग जायंगी !"

"जैसे भी हो, मुझे थोड़ा-सा मट्ठा पिला दो। बड़ा पुण्य होगा।" किट्टु से महादेवन् ने कहा।

किट्टु दबे पांव चुपके से अन्दर गया और चुपचाप एक बरतन में मट्ठा लाकर महादेवन् को पिला दिया। लेकिन उसे पता न था कि जिस बरतन में वह मट्ठा लाया था, उसे वापस रखने जायगा तो सभेशय्यर जाग जायंगे।

आंख खुलते ही वह सारा मामला समझ गये। उन्होंने सोचा कि हो न हो, महादेवन् ने ही किट्टु को कुछ लाने के लिए मजबूर किया होगा। इससे महादेवन् पर उनका गुस्सा और बढ़ गया। उन्होंने किट्टु से पूछा, "तूने उसे क्या ले जाकर दिया है ?"

"मट्ठा।" सिर झुकाकर किट्टु ने उत्तर दिया।

"लेकिन मैंने तो तुम लोगों से उसे कुछ भी न देने के लिए कहा था। तूने मेरी बात का उल्लंघन क्यों किया ?" सभेशय्यर ने क्रोध से पूछा।

"बेचारा भूख से तड़प रहा था। मुझसे नहीं सहा गया और मैं..." कहते-कहते किट्टु चुप हो गया।

"गुस्ताख कहीं का ! तू इतना बड़ा आदमी हो गया कि दूसरों पर तरस खाये ? अच्छा, आज रात को तेरा भी खाना बन्द। चला जा मेरे सामने से।" सभेशय्यर ने बहुत ही गुस्सा होकर कहा।

"मैं भूखा मरने को तैयार हूं। पर महादेवन् तो भूख सह ही नहीं सकता।" गिड़गिड़ाते स्वर में किट्टु ने कहा।

सभेशय्यर ने कोई उत्तर नहीं दिया। पर वह इस बात पर आश्चर्य किये बिना नहीं रह सके कि इतनी छोटी उम्र में इस लड़के में स्वार्थ-त्याग की ऐसी भावना और ऊँची चेतना कहां से आई ?

महादेवन् और किट्टु के संबंधों में भी उस दिन से बड़ा परिवर्तन हो गया।

सभेशय्यर की पूजा की चीजों में एक वीणा भी थी। वह उनके गुरु की दी हुई थी। सभेशय्यर के गुरु सन्त त्यागराज के शिष्यों में से थे। साथ ही वे साहित्यकार भी थे। तमिल में उन्होंने कुछ भजन रचे थे। संगीत में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए वीणा का भी अभ्यास जरूरी होता है। इसलिए वीणा का भी उन्होंने अच्छा अभ्यास कर रक्खा था। वह जो भी नये पद रचते, उनके स्वरों को वीणा पर बजाकर स्वयं देख लेते और तब उनका स्तर निर्धारित करते।

चूंकि उस वीणा को उनके गुरु ने भी बजाया था, इसलिए सभेशय्यर उसे अपने गुरु तुल्य मानते थे और बड़ी श्रद्धा-भक्ति से उसकी पूजा-अर्चना किया करते थे। उन्हें यह स्वीकार न था कि दूसरा कोई उसे छुए। पूजा को पहले उसके तारों को ठीक करके स्वर मिलाते, तब पूजा करते। स्वरों के गुनगुनाते हुए यदि कोई कल्पना सहसा मन में उठती तो वीणा के तारों में बजाकर उसे देख लेते। उनके पास जैसी उन्नत कल्पना थी, वैसे ही संगीत के लक्षणों का भी उनको अच्छा ज्ञान था। अतः जब कभी वह कुछ राग-रागिनियों को स्वर-बद्ध करना चाहते, वीणा उनके बड़े काम आती। इसलिए भी वह उस वीणा को बड़ी सावधानी से संभालकर रखते थे।

वह वीणा बहुत पुरानी थी। उन्होंने उसे बड़े जतन से, तंजोर के एक

निष्णात् कारीगर के हाथों उसके पुर्जों की मरम्मत करवाकर और स्वर-स्थानों को ठीक करा कर, रक्खा था। उन्हें एक बड़ी चिन्ता यह रहती थी कि कहीं उनका नाती महादेवन् उसे खराब न कर दे। इस कारण वे महादेवन् को हमेशा धमकाते रहते थे कि वह भूलकर भी उसके पास न जाय।

एक बार महादेवन् सुखाने के लिए धोती अलगनी पर डाल रहा था। छड़ी से फैलाने में धोती फिसलकर नीचे गिर पड़ी। उसी अलगनी के नीचे वीणा थी। धोती वीणा के बहुत ही पास जाकर गिरी। वीणा के तूंबे पर पड़ने से वह एक बार हिल उठी। यह देखकर सभेशय्यर को बड़ा गुस्सा आया। उनकी पूज्य वीणा जो थी। तेजी से लपकते हुए गये और महादेवन् के गाल पर जोर से तमाचा जड़ दिया। तमाचा ऐसा पड़ा कि हमेशा याद रहे, भुलाये न भूले। इतने रुद्र रूप में किट्टु ने इसके पहले उन्हें कभी नहीं देखा था।

"निकम्मा कहीं का! देखता नहीं कि नीचे वीणा है। अन्धों की तरह काम करता है!" सभेशय्यर बरस पड़े।

किट्टु के मानस-पटल पर वह दृश्य अंकित हो गया। वीणा को वह कितनी श्रद्धा से संजोकर रखते थे, इसे वह भलीभांति जानता था और समझता था। लेकिन उसकी इच्छा थी कि कम-से-कम एक बार उस वीणा को वह अपने हाथों से बजाकर देखे। यद्यपि वह जानता था कि यह काम आसान नहीं है, सम्भव भी नहीं है, ठीक भी नहीं है, फिर भी उसकी यह इच्छा दूर नहीं होती थी कि किसी-न-किसी तरह एक बार उसे बजाकर देखना ही चाहिए।

एक बार कोई वीणा-विशेषज्ञ किसी शादी में वीणा बजाने के लिए आये हुए थे। वीणा सुनने के लिए सभेशय्यर, किट्टु, महादेवन् आदि सभी गये थे। वे वीणा-वादन में बड़े सिद्धहस्त और ख्याति-प्राप्त थे। वीणा बजाने का उनका ढंग बड़ा ही अच्छा था। उस दिन किट्टु ने जो मधुर गीत सुने, वे उसके कानों में गूंजते रहे। घर आने पर वीणा बजाने की उसकी इच्छा और भी तीव्र हो गई। यह जानते हुए भी कि उसके पास जाना अपराध है, वह इस नतीजे पर पहुंचा कि एक बार उसे बजाकर ही रहेगा।

दूसरे दिन ही उसे एक स्वर्ण सुयोग प्राप्त हुआ। सभेशय्यर घर के

काम से कहीं बाहर गये हुए थे। धर्माम्बाल कावेरी में स्नान करने गई थीं। महादेवन् अपनी नानी के साथ गया हुआ था। ऐसा अच्छा अवसर उसे और कब मिलनेवाला था!

अतः वीणा हाथ में लेकर वह एक ओर बैठ गया और तारों को ठीक कर सुर मिलाने लगा। यद्यपि उसने अबतक वीणा पर हाथ नहीं लगाया था, फिर भी सभेशय्यर को स्वर मिलाते हुए और स्वर-स्थानों को पकड़कर स्वर-संधान करते हुए ध्यान से देखा था। उसने वीणा के जो मधुर स्वर सुने थे, उन्हें एक बार याद किया। "कल उस विद्वान् के हाथ की वीणा से कितने मधुर दैवी-गान की अमृत-वर्षा हुई थी और आज मैं हाथ में वीणा लेकर यों बैठा हूं, यह कैसी विडम्बना है!"—इस प्रकार मन-ही-मन सोचता हुआ, वह वीणा को बजाने की चेष्टा में लग गया।

उसी समय द्वार पर किसीके आने की आहट-सी हुई। धड़कते दिल स वीणा को उसकी जगह पर रखने के लिए वह उठा, पर दैवयोग से घबराहट में वीणा की एक खूंटी दीवार से टकराई और टूटकर नीचे गिर पड़ी। इस घटना से उसके होश उड़ गये। एक क्षण के लिए सांस ही रुक गई। चेहरे पर पसीने की बूंदें झलक आईं। सिर से पैर तक सारा शरीर कांपने लगा। पर द्वार पर कोई आया नहीं था। वह तो उसके मन का भ्रम था। भ्रम का फल यह हुआ कि बाजा टूट गया।

किट्टु की समझ में कुछ नहीं आया कि क्या करे। सोचने लगा, अगर कोई भूत या प्रेत आकर उसे निगल जाय तो कितना अच्छा हो। इतने दिन तक उसके मन में जो अरमान दबा पड़ा था, उसे और अदृश्य भाग्य को, जिसने उसके हृदय में लोभ बढ़ाकर उसे परेशानी में डाल दिया था, दोनों को उसने जी भरकर कोसा। अब वह सभेशय्यर को कैसे मुंह दिखायगा? क्या उसे अपनी अधूरी शिक्षा को लेकर यहां से भाग निकलना पड़ेगा? 'विनाश काले विपरीत बुद्धिः!' उसके विषय में यह सूक्ति सच्ची निकली! वीणा के टूट जाने का हाल मालूम होने पर गुरुदेव को कितना सदमा पहुंचेगा? जिस वीणा को उन्होंने अपना गुरु ही मानकर पूजा है, उसके टूट जाने की बात सुनकर उनके दिल पर न जाने क्या बीतेगी! यहां आकर मुझे क्या कोई ऐसा बुरा काम करना चाहिए था, जो गुरु को

अथाह दुःख-समुद्र में डुबो दे !

हां, यह अच्छा ही हुआ कि किसीने उसकी इस करनी को नहीं देखा। चुपचाप वीणा को उसकी जगह पर रख दे तो उन्हें कैसे मालूम होगा ? और अगर मालूम भी हो गया तो यही समझेंगे कि महादेवन् ने यह किया होगा। वे उसकी खूब खबर लेंगे। बस यही होगा न !

लेकिन किट्टु झूठी बात महादेवन् पर थोपकर स्वयं बचना नहीं चाहता था। अब जो गलती हो गई, सो हो गई। वह गुरुदेव से क्षमा मांग लेगा। उसका जो फल भुगतना होगा, उसे भुगत लेगा। चाहे जो हो, सचाई के रास्ते पर जाना ही अच्छा होगा।

किट्टु सोचने लगा, एक गलत काम ने उसे कितनी उधेड़-बुन में डाल दिया। अगर इसी प्रकार वह आगे भी गलती करेगा तो क्या होगा ? उसके मन में इसी बात को लेकर अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था। लेकिन अन्त में उसने सही रास्ता ही पकड़ा।

वीणा को यथास्थान रखकर वह गुरुदेव की राह देखने लगा। उसे लगा, इस उलझन के निबटने के बाद ही उसके दिल का बोझा उतरेगा। प्रतीक्षा का हर क्षण उसे मृत्यु की-सी वेदना दे रहा था।

सभेशय्यर घर लौटे। उनका मुंह उदास था। जिस काम से गये थे, शायद वह पूरा नहीं हुआ था। माथे से पसीने की बूंदें टपक रही थीं। आकर झूले पर बैठे। धीमी-धीमी पेंगें बढ़ाकर हवा खाते हुए सुस्ताने लगे।

अचानक इधर-उधर घूमती हुई उनकी निगाह नीचे एक कोने में पड़ी किसी चीज़ की ओर गई। बड़ी तेजी से उसके पास गये और उठाकर देखा। उसे देखकर उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। वे वीणा के पास दौड़े हुए गये। हां, वह उसीकी खूंटी थी। वेदना से उनका चेहरा स्याह पड़ गया। क्रोध से उनकी आंखों से अंगारे बरसने लगे। वह चीख पड़े, "महादेवन् !" ओह, कैसा आवेश था उनके उस स्वर में ! "महादेवन् कहां है ?" दांत पीसते हुए उन्होंने किट्टु से पूछा। किट्टु का न तो मुंह खुला, न जबान हिली। उसका सारा शरीर भय से कांप उठा। होंठ फड़कने लगे। उसके मुंह से एक शब्द तक नहीं निकला। आंखों से आंसू की धारा बहने लगी। "मैं···मैं···मैं" यह शब्द ही वह दोहराने लगा। आगे के शब्द मुंह में ही

अटक गये ।

क्षण-भर के लिए सभेशय्यर की समझ में कुछ नहीं आया । पर धीरे-धीरे वह सारी स्थिति समझ गये ।

"यह अपराध...मुझसे..." किसी तरह ये शब्द उसके मुंह से निकले और वह फफक-फफककर रोने लगा ।

क्रोध से तमतमाये सभेशय्यर के चेहरे पर दूसरे ही क्षण करुणा उमड़ आई । शांत स्वर में बोले, "इधर आओ और जो कुछ हुआ, साफ-साफ कहो ।" हिम्मत जुटाकर किट्टु उनके निकट आ गया । वह मन-ही-मन सोच रहा था कि उसे जो भी दंड मिले, वह सहर्ष सहने के लिए तैयार है । लेकिन उसे इस घर से न निकाला जाय ।

किट्टु के कंधे पर हाथ रखकर सभेशय्यर ने पूछा, "तुममें यह बुद्धि कैसे आई ?"

वह कुछ बोला नहीं, पर उसकी आंखों से उमड़ते आंसुओं ने उसकी अंतर्वेदना को अच्छी तरह से प्रकट कर दिया ।

सभेशय्यर ने सांत्वना देते हुए कहा, "कोई बात नहीं । पहले से ही वह वीणा कुछ खराब हो रही थी । जो हुआ, सो हुआ । उसके लिए तुम दुखी मत होओ । लेकिन तुमने बात सच-सच कह दी, यह मेरे लिए काफी है । मैं मानता हूं, वीणा श्रेष्ठ है, पर सत्य तो उससे भी श्रेष्ठ है ।"

किट्टु को अपने कानों पर विश्वास न हुआ । उसने सोचा, यह सपना है या वास्तविकता ?

सभेशय्यर ने आगे कहा, "तुम जो कुछ भी करो, लेकिन सत्य से मुंह न मोड़ो । सदा सत्य के मार्ग पर चलो ।"

किट्टु अपने आपको भूलकर विस्मय-चकित खड़ा रहा । गुरुदेव ने जो प्रेम और करुणा उसके प्रति दिखाई, उससे उसमें नई जान आ गई । उसे लगा, जैसे विष-पान करने को प्रस्तुत व्यक्ति को अमृत मिल गया हो । सभेशय्यर उसकी आंखों के सामने प्रत्यक्ष देवता सदृश खड़े थे । उन्होंने जो बात अभी कही थी, वह उसके हृदय में गहरी पैठ गई थी । उसने मन में कहा, "चाहे मेरे प्राण चले जायं, पर सत्य से मुंह नहीं मोड़ूंगा ।" उसी दिन से सत्य के प्रति आस्था की गहरी नींव उसके दिल में पड़ गई ।

७

महादेवन् का उस वर्ष उपनयन-संस्कार कर देने का निश्चय हुआ। महादेवन् के पिता ने इस बात पर यद्यपि अधिक ध्यान नहीं दिया था, फिर भी सभेशय्यर और उनकी पत्नी ने निश्चय किया कि इस वर्ष उसका संस्कार कर ही देना चाहिए। इसके लिए जिन-जिन सामग्रियों की जरूरत थी, उन्हें जुटाने में वे लग गये। महादेवन् उनका इकलौता और लाड़ला नाती था। इसके अतिरिक्त कितने ही सालों के बाद उनके घर में यह अनुष्ठान संपन्न हो रहा था। अतः बड़े ठाट-बाट से सारा प्रबन्ध किया जा रहा था। बड़े-बड़े संगीतज्ञ इस शुभ अवसर पर भाग लेने के लिए आनेवाले थे।

अभी दो दिन बाकी थे। सभेशय्यर कुछ फुरसत पाकर विश्राम करने बैठे थे कि उनकी पत्नी धर्माम्बाल् काम से निबटकर वहां आई।

"बहुत दिनों से मैं आपसे एक बात कहना चाहती थी, पर कह नहीं पाई।" धर्माम्बाल ने कहना आरम्भ किया।

"कहो, क्या बात है?" सभेशय्यर उनकी ओर मुड़कर बोले।

"मैं चाहती थी कि महादेवन् के जनेऊ के साथ किट्टु का भी जनेऊ कर दें तो कैसा रहे? हमें छोड़कर उसका और कौन सहारा है? बेचारा हमारे घर में आ गया है। अगर हम ही न करेंगे तो और कौन करेगा?" धर्माम्बाल ने एक सांस में यह सब कह दिया।

सभेशय्यर थोड़ी देर तक कुछ सोचते रहे, फिर बोले, "तुम्हारा कहना ठीक है। मेरे मन में यह विचार नहीं आया, ऐसी बात नहीं है। मगर मैं सोचकर रह गया। मैं मानता हूं कि यह मेरी गलती थी। अब और चाहे जो कुछ कहो, स्त्रियों की बुद्धि आगे की बात सोचती है। अच्छी बात है। तुम चिन्ता न करो। मैं सुनार से कहकर उसके लिए भी चीजें तैयार करा

दूंगा।"

दोनों का संस्कार एक ही साथ कर देने का निश्चय उसी समय हो गया और आवश्यक प्रबन्ध भी किया जाने लगा।

महादेवन् के पिता अपनी दूसरी पत्नी के साथ आये। पिता की हैसियत से उन्होंने महादेवन् को ब्रह्मोपदेश दिया।

तभी धर्माम्बाल् ने इशारे से सभेशय्यर को अपने पास बुलाया और पूछा, "किट्टु को ब्रह्मोपदेश कौन देगा?"

सभेशय्यर ने कुछ उत्तर नहीं दिया। धर्माम्बाल् ने उनके मौन रहने का अर्थ लगाया कि वह कुछ सोच रहे हैं। वह उन्हें सोचने का अवसर न देकर बोली, "सोच क्या रहे हैं? एक बालक को ब्रह्मोपदेश देने से कितना पुण्य मिलता है, जानते हो? भाग्यवानों को ही यह सुयोग मिलता है।"

अपनी पत्नी के दिल की बात सभेशय्यर समझ गये, पर कुछ बोले नहीं। फिर भी उनके चेहरे ने उनके दिल की बात साफ-साफ प्रकट कर दी। धर्माम्बाल ने भी उनसे आखिर में यह कहलवा ही लिया कि और कोई क्यों, हमीं करेंगे।

जब सभेशय्यर और धर्माम्बाल जल्दी स्नान कर, नये वस्त्र धारण कर किट्टु के निकट आये तो सब आश्चर्य-चकित हो उन्हें देखने लगे। कुछ लोगों के दिल में ईर्ष्या भी पैदा हुई। और हो भी क्यों न, जब सभेशय्यर जैसे आचार-विचारवाले, सकल-कला-विधान, महाज्ञानी व्यक्ति अपने घर अनाश्रित होकर विद्यार्जन के लिए आये हुए अनाथ बालक को, अपना ही पुत्र मानकर, ब्रह्मोपदेश देने के लिए तैयार हो गये हों! लोग अपनी भावनाओं के प्रवाह में बह गये थे।

किसीने कहा, "लड़का बड़ा भाग्यवान है!"

दूसरे ने अनुमोदन के स्वर में कहा, "हां, सचमुच उसका भाग्य बड़ा प्रबल है। इनके पोते को भी जो भाग्य नहीं मिल सका, वह इसे मिल रहा है। ऐसे हाथों से संस्कार और ब्रह्मोपदेश प्राप्त करने का सौभाग्य भला और किसको मिलेगा?"

पर सभेशय्यर ने उसे ब्रह्मोपदेश दिया या ब्रह्मज्ञान, यह कौन कह सकता है?

किट्टु का मन ग्रानन्द से भर उठा। यह ग्रप्रत्याशित घटना शायद यह जताने के लिए घटी कि उसके गुरु उसे केवल लोक-ज्ञान की शिक्षा ही नहीं दे रहे हैं, ग्रात्मज्ञान का उपदेश भी दे रहे हैं। किट्टु तो ग्रपने घर से निकल कर एक ग्राश्रित की ग्रवस्था में उनकी शरण में ऐसे ग्राया था, मानो हवा के झोंकों में उड़कर ग्रानेवाला पतझड़ का सूखा पत्ता हो। ग्रपने ग्राश्रय में ग्राये हुए पितृ-विहीन उस ग्रनाथ बालक के साथ सभेशय्यर ने पिता-तुल्य व्यवहार किया, उसे शिक्षा दी। यही नहीं, परमाचार्य बनकर ब्रह्मज्ञान का उपदेश भी दिया। इन सब बातों से किट्टु के दिल में ग्रपने गुरु के प्रति ग्रगाध श्रद्धा का स्रोत उमड़कर उसकी ग्रांखों से बह निकला। उसका हृदय कृतज्ञता से भर उठा।

वह गुरु को प्रणाम करके उठा ग्रौर एक ग्रोर जाकर खड़ा हो गया। उस समय उसे देखने से ऐसा प्रतीत होता था, मानो वह कह रहा हो, इह-लोक ग्रौर परलोक—दोनों जीवन का मार्ग-दर्शन करानेवाले गुरु महाराज को भेंट-स्वरूप देने के लिए उस ग्रकिंचन के पास हृदय को छोड़ ग्रौर क्या है?

उस छोटे-से बालक के हृदय में भावनाग्रों की बाढ़ ग्रा गई थी।

ग्रपने नाती ग्रौर किट्टु को सभेशय्यर ने बारी-बारी से देखा। नाती की पीठ पर बड़े प्रेम से हाथ फेरा ग्रौर किट्टु को स्नेहपूर्ण नेत्रों से देखा। फिर हाथ उठाकर दोनों को ग्राशीर्वाद दिया—"सुखी रहो। भगवान तुम्हारा भला करेंगे!"

किट्टु उनका मुंह निहारता खड़ा रहा।

"किट्टु, ग्राज तुमने नया जन्म पाया है। यह जनेऊ मात्र धागा नहीं है। धीरे-धीरे इसका ग्रर्थ तुम समझ जाग्रोगे। इसे समझने योग्य गुण ग्रौर ज्ञान भगवान तुम्हें प्रदान करें, यही मेरी हार्दिक कामना है।" सभेशय्यर ने किट्टु को ग्राशीर्वाद दिया।

पता नहीं किट्टु उनकी बातों का पूरा ग्रर्थ समझा या नहीं, उसने ग्रपना सिर उनके चरणों पर रख दिया। उसका दिल भर ग्राया। उसे लगा, मानो उसका हृदय ग्रन्दर से भरा-पूरा हो गया है।

किट्टु छोटा था, तब एक बार तंजौर में एक नाटक मंडली आई थी। उस मंडली के अधिकांश अभिनेता बड़े विद्वान् थे। साथ ही संस्कृत और तमिल दोनों भाषाओं के अच्छे ज्ञाता भी थे। उनकी कवित्व और कल्पना-शक्ति ऐसी थी कि निमिषमात्र में सुन्दर पद रच सकते थे। संगीत-शास्त्र के भी अच्छे पंडित थे।

वे सब पढ़े-लिखे धार्मिक व्यक्ति थे और शील-संयम में भी ऊंचे थे। उस मंडली के प्रधान तो आचार-विचार के बड़े पक्के और गुण-सम्पन्न थे। इसीलिए मंडली का गौरव दिन-पर-दिन बढ़ता जाता था।

वे लोग पुण्य-चरितों को इतने उत्तम ढंग से रंगमंच पर उपस्थित करते थे कि लोग आश्चर्यचकित हो जाते थे। संगीत, साहित्य और नाटक का ऐसा सुन्दर समन्वय शायद ही और कहीं देखने को मिलता हो। लोग उनकी माधुरी में ऐसे खो जाते थे कि उन्हें अपना सुध-बुध ही न रहती थी। इस-लिए वह नाटक-मंडली जहां भी जाती, वहां काफ़ी सम्मान प्राप्त कर लेती थी।

सभेशय्यर भी संगीत और शास्त्र में पारंगत थे। उस मंडली के प्रधान की इच्छा हुई कि किसी तरह उन्हें बुलावें और अपने कुछ नाटकों को दिखलाकर उनका आशीर्वाद प्राप्त करें। जब सारा कला-जगत ही उनके मुख से कुछ प्रोत्साहन शब्द सुनने के लिए लालायित था तो उस मंडली का उनके द्वारा सम्मानित होने के लिए प्रयत्न करना आश्चर्य की बात नहीं थी।

अतः मंडली के प्रधान ने उन्हें तिरुवैयारु से तंजौर लिवा लाने के लिए घोड़ागाड़ी का प्रबन्ध किया, तंजौर में उनके ठहरने आदि की सुन्दर व्यवस्था की और उनकी सुख-सुविधाओं का पूरा ध्यान रक्खा। उनके आदर-सत्कार

की पूरी व्यवस्था की। ऐसा व्यवहार किया कि जिससे उनका प्रेम और आशीर्वाद प्राप्त हो सके।

सभेशय्यर तंजौर में एक सप्ताह ठहरे। दो-तीन नाटक उन्होंने देखे। वे नाटक उन्हें बहुत पसन्द आये। पात्रानुकूल अभिनेताओं की अभिनय-क्षमता, भाषा और संगीत का ज्ञान, स्वाभाविक कथोपकथन, नाटक की रचना-पद्धति और अभिनेताओं का संयमशील, सदाचरण—सबने उनको असीम आनन्द प्रदान किया। साथ ही उनके प्रति उन लोगों ने ऐसा विनयपूर्ण व्यवहार किया कि वे बहुत ही प्रभावित हुए।

उन्होंने मंडली के प्रधान से कहा, "आपके खेल बहुत अच्छे और कला-पूर्ण हैं। अपने नाटकों द्वारा आप समाज की बड़ी सेवा कर रहे हैं।

मंडली के प्रधान ने उत्तर में कहा, "हम ऐसी कौन-सी बड़ी सेवा कर रहे हैं? हां, हमारा इतना सौभाग्य है कि आप जैसे विद्वानों का अनुग्रह हमें प्राप्त हो रहा है।"

"नाटक 'दृश्य-काव्य' कहा जाता है। आपके नाटक इस कसौटी पर पूर्ण रूप से खरे उतरते हैं। मेरी कामना है, आपकी कला की दिन-व-दिन उन्नति हो!" सभेशय्यर ने आशीर्वाद दिया।

किट्टु उनकी बगल में खड़ा था। वह भी सभेशय्यर के साथ एक सप्ताह वहां रहा था। उसकी मुख-छवि ने मंडली के प्रधान का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया था। जब वे उसके सम्पर्क में आये तो विद्या, विनय आदि उसके गुणों ने उन्हें मुग्ध कर लिया। उसके संगीत-ज्ञान और मधुर कंठ के संबंध में तो उन्होंने पहले ही सुन रक्खा था। सभेशय्यर की अनुपस्थिति में उन्होंने एक बार किट्टु को बुलाकर कहा, "बेटा, एक गाना सुनाओ।"

किट्टु ने कहा, "मैं क्या गाऊंगा? मैं तो एक विद्यार्थी हूं। अभी मेरा अभ्यास ही ऐसा कहां हुआ है कि कुछ गा सकूं?"

"कोई बात नहीं! जितना जानते हो, उतना ही सुनाओ। तुम्हारी प्रशंसा तो मैं बहुत सुन रहा हूं।" मंडली के प्रधान ने उसे प्रोत्साहित किया।

किट्टु ने कोई आपत्ति नहीं की। एक-दो गाने गाकर सुनाये। उसके मधुर कंठ-ध्वनि और गाने के ढंग से मंडली के प्रधान बहुत ही प्रभावित हुए। उनके मन में लालसा का जो बीज पहले से पड़ा था, वह जड़ पकड़

गया। वे किट्टु को अपनी मंडली में मिला लेना चाहते थे और उसके लिए अच्छा अवसर हाथ लगा था।

आकृति से सुन्दर और संगीत-ज्ञान से संपन्न, एक छोटे लड़के की उनकी मंडली को जरूरत थी। उनकी मंडली में पहले एक ऐसा लड़का था, जो उनके पौराणिक नाटकों में प्रह्लाद, ध्रुव आदि के वेश धारण करके बड़ा ही कुशल अभिनय किया करता था। दुर्भाग्य से बीमार हो गया और उसकी अकाल मृत्यु हो गई। वे उस लड़के के स्थान पर अभिनय करने से लिए एक दूसरे लड़के की टाह में थे। अबतक कोई संतोषप्रद लड़का उन्हें नहीं मिला था। सुयोग्य पात्र आसानी से मिलते कहां हैं ?

किट्टु को देखने के बाद मंडली के प्रधान के मन में यह इच्छा तीव्र हो उठी कि किसी तरह उसे अपने दल में सम्मिलित करलें।

उन्होंने पूछा, "क्यों बेटा, तुम्हारी नाटकों में भाग लेने की इच्छा है ?"

किट्टु ने कोई उत्तर नहीं दिया। फिर भी उस प्रश्न का भीतरी अर्थ उसकी समझ में आ गया। क्षण-मात्र के लिए आनन्द से रोएं खड़े हो गए। उस दल में शामिल होना कोई आसान काम नहीं था और फिर लाखों व्यक्तियों के सम्मुख अपने अभिनय से लोगों को सन्तुष्ट करना तो और भी कठिन था।

उसने अनुभव किया, मानो वह अपार जन-राशि के सम्मुख मंच पर खड़ा तन्मय होकर गा रहा है। पर उसके मुंह से कोई शब्द नहीं निकला।

"क्यों बेटा, तुम हमारी मंडली में सम्मिलित होने को तैयार हो ?" उन्होंने पूछा।

"गुरुजी से पूछ लीजिये।" किट्टु ने विनम्रता से उत्तर दिया।

उस दिन रात को भोजन के उपरांत सभेशय्यर पानदान लेकर बैठे ही थे कि मंडली के प्रधान उनके पास आये और बोले, "आपकी सेवा में मेरी एक विनती है।"

"क्या ?" सभेशय्यर ने पूछा।

"आप गलत न समझें तो बताऊं ?" मंडली के प्रधान हिचकिचाते हुए बोले।

"नहीं-नहीं, आप बेधड़क पूछिये।" सभेशय्यर ने उन्हें प्रोत्साहित किया।

"बात यह है कि आपका यह जो चेला है न...वह हमारे बड़े काम..." वाक्य अधूरा ही रह गया।

सभेशय्यर के चेहरे पर असन्तोष की एक हल्की रेखा-सी दौड़ गई। वे कुछ समय के लिए मौन हो गए। उनके मौन और मुख-मुद्रा को देखते ही प्रधान की आशाओं पर पानी सा फिर गया, उनका उत्साह एकदम ठंडा पड़ गया। क्षमा-याचना के लिए वह तत्पर हो गये।

उन्होंने विनय के स्वर में कहा, "देखिए, आप बुरा न मानिये। अगर मुझसे अपराध हो गया हो तो क्षमा कीजिये। लड़का बड़ा ही योग्य है। लगता है, इसका भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। इसी नाते मुझे यह पूछने की हिम्मत हुई थी।"

"तो आप यह कहिये कि आपने अपने स्वार्थ के लिए उसकी याचना नहीं की··बल्कि उसके भविष्य का ध्यान रखकर आपने उसे मांगा है!" सभेशय्यर की बातों में कटाक्ष और चुभता हुआ व्यंग्य था।

प्रधान यह सुनकर सकपका गये, बोले, "नहीं, सच पूछिये तो वह गौण ही है। मुख्य बात तो यह है कि उसके द्वारा हमारी नाटक-मंडली और कला की कीर्ति में चार चांद लग जायंगे, साथ ही हमें अच्छी आमदनी भी होगी।"

"इस बारे में लड़के का क्या विचार है? आपने पूछा?"

"उससे क्या पूछना है? वह तो आप जैसा कहेंगे, करने को तैयार होगा।"

"आप उत्तम प्रकृतिके हैं और अपने नाटकों को बड़े उत्तम ढंगसे प्रस्तुत करते हैं। किट्टु इस उद्योग को अपनाना चाहे तो इससे अच्छी संगत उसे और कहीं नहीं मिलेगी। लेकिन फिर भी मैं उसे इस काम में उतरने की अनुमति नहीं दूंगा। आप उसे नाटक-कला की श्रीवृद्धि में लगाना चाहते हैं, सो तो ठीक है, पर मेरे विचार से उसे संगीत की अभी बहुत सेवा करनी है। उसीमें मैं उसे लगाना चाहता हूं। इसलिए आप अपनी इच्छा को त्याग दीजिये और संगीत के मेरे कामों के लिए उसे रहने दीजिए।" सभेशय्यर ने दृढ़ स्वर में कहा।

मंडली के प्रधान को उनकी बातों से बड़ी निराशा हुई। फिर भी उनके विनम्र व्यवहार से बहुत बुरा नहीं लगा।

"मैंने बिना सोचे-विचारे अचानक यह कह दिया, इसके लिए क्षमा चाहता हूं। कला की उन्नति करने के विचार से ही मैंने ऐसी मांग की थी। चाहे वह किसी भी क्षेत्र में उन्नति करे, उससे समाज का भला ही होगा। आपके अनुग्रह के होते हुए अब उसे किस बात की कमी हो सकती है ?" प्रधान ने कहा।

"मनुष्य अपने जीवन में एक ही काम उचित रूप से निभा सकता है। मेरा विचार ही नहीं, विश्वास भी है, कि संगीत में वह अवश्य कुछ कर दिखायेगा। फिर ईश्वरेच्छा को कौन जानता है !" सभेशय्यर ने कहा।

"आपकी इच्छा अवश्य पूरी होगी।"

जिस समय दोनों में यह वार्तालाप हो रहा था, उस समय किट्टु उस ओर नहीं आया। बातचीत का रुख बदलने के बहुत देर बाद किट्टु वहां आया तो सभेशय्यर ने पूछा, "किट्टु, क्या तुम नाटकों में भाग लेना चाहते हो ?"

किट्टु की समझ में नहीं आया कि उनके प्रश्न का क्या उत्तर दे ? वह चुपचाप खड़ा रहा। सभेशय्यर ने दुबारा जोर दिया, "चुप क्यों हो अपने दिल की बात बताओ।"

"मैं क्या बताऊं ? मेरी आंखें खोलने, मुझे सही रास्ता दिखाने और आदमी बनाने का काम तो आपका है। मुझे कुछ कहने का क्या अधिकार है ?" किट्टु ने विनयपूर्वक उत्तर दिया।

सभेशय्यर का चेहरा खिल उठा। बोले, "नाटक के क्षेत्र में तुम मत जाओ। तुम्हारे दिल में यदि उसके प्रति रंचमात्र भी इच्छा जगी हो तो उसे निकाल दो। अपनी सारी बुद्धि संगीत पर ही केन्द्रित करो। उससे सबका भला होगा।"

किट्टु ने कोई जवाब नहीं दिया। उसके मन में थोड़ी ही देर पहले रंगमंच के लिए जो मोह जागा था, कुशल अभिनेता बनने की लालसा पैदा हुई थी, वह निराशा के रूप में परिणत हो गई और इससे उसके दिल को थोड़ा-सा दुःख भी पहुंचा, पर वह दुःख अधिक देर नहीं टिका, क्योंकि वह उसका भ्रम मात्र था। उसे लगा, गुरुदेव अपने मुंह से कहे बिना ही यह कह रहे हैं कि संगीत तुम्हें उन्नति के शिखर पर चढ़ा देगा।

थोड़ी देर के मौन के बाद सभेशय्यर ने किट्टु से कहा, "तुम सन्त

त्यागराज की शिष्य-परंपरा के उदीयमान कलाकार हो।"

किट्टु के कानों में ये शब्द अमृत के समान जान पड़े। उसके दिल में विचार उठा कि उसे संगीत का ऐसा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, जिससे वह इस परंपरा का नाम रख सके और ऐसी योग्यता प्राप्त करे कि संगीत-जगत उसका भी नाम उस यशस्वी परंपरा में गिने। "अगर ऐसा सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ तो मैं अपने को धन्य मानूंगा।" उसने निश्चय किया कि संगीत को छोड़कर उसके मन में और किसी चीज की इच्छा नहीं होगी।

६

दिन-पर-दिन किट्टु विद्याभ्यास में उन्नति करता जा रहा था। सभेशय्यर उसे विधिवत् रूप से शिक्षा दे रहे थे। उसकी ग्रहण-शक्ति ग्रौर सीखी हुई बात को कई गुना बढ़ा लेने की क्षमता देखकर सभेशय्यर को बड़ा हर्ष होता था।

संगीत-शास्त्र में कुछ स्वर स्थानों को दर्शा दिया जाय ग्रौर मोड़ों को बता दिया जाय तो सीखनेवाला उस रास्ते बेधड़क बढ़ता चला जाता है। सभेंशय्यर जो कुछ सिखाते थे, उसे किट्टु ऐसे ग्रहण करता था, मानो भूली-बिसरी बातों को फिर से याद कर रहा हो।

उसकी संगीत के प्रति जैसी ग्रासक्ति थी, वैसी ग्रासक्ति उसे सीखने के प्रति भी थी। वह इतना लगनवाला था कि सूक्ष्म-से-सूक्ष्म, कठिन-से-कठिन बातों को भी सीखकर ही चैन लेता था। घंटों बैठकर बिना ग्रलसाये-सुस्ताये एकाग्र भाव से संगीत-साधना करने में वह बेजोड़ था। जबवह गाने बैठ जाता तो उसे ग्रपने ग्रास-पास की बिल्कुल सुध न रहती थी। गाते-गाते ग्रात्मविस्मृत हो जाता था। ऐसे समय पर उसे भूख-प्यास का भी ध्यान नहीं रहता था। उसे देखकर ऐसा लगता, मानो योग-साधना में लीन वह कोई ऋषिकुमार हो।

उसकी यह साधना ग्रौर मेधा देखकर लोग कहते, "यह संगीत-जगत् की चोटी पर चढ़ेगा ग्रौर उसकी शोभा को बढ़ायेगा।" उसके विनयी स्वभाव ग्रौर गुणों को देखकर वे कहते, "यह उत्तम गुणों से संपन्न महान् व्यक्ति होगा।"

किटट की विधिवत् शिक्षा-दीक्षा जब पूरी हुई उस समय उसकी उम्र

का सोलहवां साल पूरा हुआ था। उसी वर्ष एक घटना घटी।

सभेशय्यर प्रतिवर्ष बड़ी धूम-धाम से रामनवमी का उत्सव मनाया करते थे। देश के कोने-कोने से विद्वान्-गायक उत्सव में भाग लेने आते थे। सभेशय्यर रामनवमी के दिन सभा में गाया करते थे। उनका गायन सुनने के लिए गांव-गांव से गायक और विद्वान वहां आकर एकत्र होते थे।

लेकिन उस वर्ष रामनवमी के एक महीने पहले सभेशय्यर ज्वर-ग्रस्त हो गये और उन्होंने बिस्तर पकड़ लिया। रामनवमी के दो दिन पहले ज्वर तो उतर गया, पर वह बहुत ही दुर्बल थे। ढलती उम्र थी और उसपर तीव्र ज्वर का आक्रमण। शरीर जर्जर हो गया था। इसलिए वह उस वर्ष के संगीत में भाग नहीं ले सकते थे। उन्हें इस बात का बड़ा दुःख हो रहा था। दुःख इस बात का नहीं था कि सभा में गाकर अपने नाम को और विख्यात करने से वंचित होना पड़ रहा था, बल्कि इसलिए कि उनके नियमित कार्य में बाधा पड़ रही थी।

पर इस कारण उन्होंने उस समारोह के कामों में किसी प्रकार की कमी या त्रुटि नहीं होने दी। उत्सव के कामों में उन्होंने अपने शिष्यों और मित्रों को पूर्ण रूप से लगा दिया और कार्य-विभाजन करके उन्हें सौंप दिया था।

रामनवमी के दिन रात को सभेशय्यर को भाग लेना था। अब यह समस्या उठ खड़ी हुई कि उनके बदले कौन गाये? उनके पुराने शिष्य विश्वनाथन ने, जिसने उत्सव के कार्यों में सक्रिय भाग लिया था, आकर उनसे पूछा, "आज रात को समारोह में आपकी जगह कौन गानेवाले हैं?"

सभेशय्यर ने ठंडी सांस ली और कहा, "इतने सालों से मैं हर साल बराबर गाता आया हूं। इस साल की लाचारी...." कहते-कहते उनका गला भर आया।

"अब किससे गाने को कहें?" विश्वनाथन ने दुबारा पूछा।

सभेशय्यर ने थोड़ा सोचकर कहा, "मेरे बदले हमारा किट्टु गायेगा।"

उन्होंने जो कुछ कहा, वह उनके दिल की बात थी; लेकिन उससे विश्वनाथन को विस्मय हुआ और उसके साथ ही ईर्ष्या भी हुई। विस्मय इसलिए कि गाने का जो सुयोग उसे मिलना चाहिए था, वह एक लड़के को मिल रहा था। ईर्ष्या इसलिए कि कितने ही बड़े-बड़े गायकों और पुरा-

शिष्यों के रहते, किट्टु को यह सौभाग्य प्राप्त हो रहा था।

"किट्टु का तो अभी सभा-प्रवेश ही नहीं हुआ है। अच्छा दिन शोधकर श्रीगणेश कराना ठीक होगा। आज तो नवमी है।" विश्वनाथन ने व्यंग्य से कहा, मानो उसीके हित की बात कह रहा हो।

"अरे, इससे अच्छा दिन और कौन-सा होगा? आज भगवान का जन्म-दिन है और वह भजन सुनानेवाला है। मैं तो कहूंगा कि यही शुभ दिन है और इससे अच्छा दिन नहीं मिलेगा। आज उसे गाने दो। भगवान उसपर कृपा करें, यही मेरी प्रार्थना है।" सभेशय्यर ने जोर देकर कहा।

आखिर, गुरुदेव की जैसी इच्छा थी वैसा ही हुआ। उनके विरुद्ध कौन बोल सकता था! जब किट्टु गाने के लिए जाने लगा तो पहले उनके पास आया और सिर झुकाकर खड़ा हो गया। उसने उनसे चरणस्पर्श करके कहा, "विद्वानों की इस बड़ी सभा में मैं क्या गा सकूंगा?"

"इसमें हिचकने की क्या बात है, किट्टु? तुम तो भगवान के नाम का गुणगान करनेवाले हो! इसमें सोचने-विचारने को अब क्या रह गया है? मैं तुम्हें विद्वत्ता दिखाने के लिए गाने को नहीं कह रहा हूं। नहीं-नहीं, मैं ऐसा कर भी नहीं सकता। तुम निस्संकोच धीरज से गाओ। श्रद्धा-भक्ति से गाओ। तुम्हें भगवान का अनुग्रह प्राप्त होगा। संगीत ही एक ऐसी वस्तु है, जो भगवान को बड़ी भक्ति से अर्पित की जाती है, यह बात तुम कभी न भूलना।" सभेशय्यर ने उसे समझाया।

किट्टु उठा। उसने श्रद्धा-भरे नेत्रों से गुरु को देखा। उनके मुख पर करुणा और अनुग्रह की भावना दृष्टिगोचर हो रही थी। 'ईश्वर की जो इच्छा' कहता हुआ वह मंच पर जाकर बैठ गया और गाने लगा। मंच के एक ओर पुष्पादि से अलंकृत श्री रामचन्द्र का चित्र रक्खा था।

उसके बाल-कंठ से गम्भीर स्वर निकलने लगा। इन स्वरों को सुनकर सारी सभा मन्त्र-मुग्ध हो गई। अच्छा-खासा समां बंध गया। उसके गाने का ढंग ही कुछ ऐसा था कि वहां पर उपस्थित लोगों को लगा, मानो सभेशय्यर ही गा रहे हों। सभी ने सोचा कि सभेशय्यर की परम्परा का विकास निश्चित है। उनके बताये हुए स्वरों और ध्वनियों पर अपनी कल्पना से आरोह-अवरोह द्वारा ऐसा समां बांधा कि सारी सभा 'वाह-वाह' कर उठी।

उसके लयपूर्ण और मधुर गायन ने सबका मन मोह लिया। उसके स्वरों का मेल उत्तम था और ऐसा प्रतीत होता था, जैसे रागों में राग और जीवन दोनों ही मिलकर स्पष्ट रूप से स्फुटित हो रहे हों।

उस दिन उसका गाना सुनने के लिए बड़े-बड़े कला-रसिक आये थे। वे अपनी सुध-बुध खोकर संगीत का रसास्वादन कर रहे थे। तभी उनमें से किसीने कहा, "यह संगीत साधारण नहीं अपितु दिव्य है तथा वास्तव में ईश्वर को अर्पण करने योग्य है।" दूसरे ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा, "इतनी छोटी उम्र में इसे इतना ज्ञान और विद्वत्ता कहां से प्राप्त हो गई?"

तीसरे ने कहा, "मैं तो यही कहूंगा कि वह पूर्व जन्म का प्रताप है। जन्म-जन्मान्तर तक चलनेवाला अटूट नाता है, नहीं तो भला कहीं पढ़ी-पढ़ाई और सीखी-सिखाई बातों को कोई इतनी जल्दी सीख सकता है?"

किट्टु का गायन समाप्त हुआ। एक बड़े-बूढ़े व्यक्ति ने सभेशय्यर के पास जाकर कहा, "आपके आशीर्वाद से इसने इतनी विद्या प्राप्त की है, यह कितनी बड़ी बात है। इसके लिए आपकी जितनी भी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।"

"सब भगवान की कृपा है। भला इसमें मेरा क्या? आप सब बुजुर्ग लोग इसे आशीर्वाद दीजिये कि यह अच्छी तरह से सीखकर, संगीत-विद्या का विद्वान् बने और मेरी परंपरा को आगे बढ़ाये!" सभेशय्यर ने कहा।

किट्टु मंच से नीचे उतर आया और अपने गुरु के चरण छूकर एक ओर खड़ा हो गया। उसी समय एक थाली में फल-फूल, तांबूल आदि रखकर उसके हाथ में देते हुए सभेशय्यर ने उसे आशीर्वाद दिया और कहा, "भगवान् श्री रामचन्द्रजी की तुम पर भरपूर कृपा हो।" यह कहकर वह थोड़ी देर के लिए मौन हो गये।

किट्टु उनको एकटक देखता हुआ खड़ा रहा। सभेशय्यर ने अपनी बात आगे बढ़ाई, "संगीत-साधना एक महान योग-साधना है। श्री सद्गुरु त्यागब्रह्म ने हमें बतलाया है कि नाद की उपासना और रामभक्ति दोनों एक ही हैं। जबतक तुम्हारे हृदय में भक्ति और नाद के प्रति प्रेम है तबतक तम्हारा मंगल होगा। सभी प्रकार की सुख-सुविधाएं तुम्हें मिलेंगी।"

किट्टु से जब वह ये सब बातें कह रहे थे, उस समय भगवान श्री रामचन्द्र के चित्र की आरती हो रही थी। उस दीप की ज्योति किट्टु के नेत्रों और हृदय में प्रतिभासित हो उठी। उसके गुरुदेव ने जो कुछ कहा, वह उसके हृदय-पटल पर अंकित हो गया। उसने एक बार रामचन्द्र के चित्र के सामने प्रणाम किया और फिर आत्म-विस्मृत होकर एक ओर चल पड़ा।

१०

सभेशय्यर के स्वास्थ्य में सुधार नहीं हुआ। वह दिन-पर-दिन गिरता जा रहा था। शरीर में शिथिलता और दुर्बलता बढ़ती जा रही थी। उन्होंने अपनी जन्म-कुंडली देखकर समझ लिया था कि इस वर्ष उन्हें कष्टों का सामना करना पड़ेगा। उनका जन्म-पत्री और ज्योतिष-शास्त्र पर अटूट विश्वास था। वह स्वयं ज्योतिष-शास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे और जन्म-पत्री देखकर फलाफल बताने की योग्यता भी रखते थे।

अतः उनके मन में हमेशा यह आशंका रहा करती थी कि न जाने कब यमराज का निमंत्रण आ जाय। अतः उसके लिए सदैव तैयार रहना चाहिए। उसके लिए उन्हें किसी विशेष तैयारी की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि वे पहले ही से विरागी प्रकृति के थे। किसी भी प्रकार की मोह-माया उनका मार्ग नहीं रोक सकती थी।

यदि कभी कोई मित्र आकर उनसे किसी काम के लिए कहता तो वह सदा यह कहकर टाल दिया करते थे कि पता नहीं, अब यह काम मैं कर भी पाऊंगा अथवा नहीं। मैं तो मौत के पास खड़ा हूं। एक पांव जल में है, दूसरा दलदल में। सो आप किसी दूसरे से अपना यह काम करा लीजिये।" लेकिन लोग उनकी बातों को केवल औपचारिक बातें समझते थे। बाद में उन्हें मालूम हो गया कि उनकी इस प्रकार की बातें केवल औपचारिकता ही नहीं लिये हुए थीं, बल्कि आगामी घटना की पूर्व सूचक थीं।

एक दिन जब सभेशय्यर घर के पिछवाड़े के बगीचे में घूमकर लौट रहे थे कि उनके पांव में कुछ चुभ गया। निकाला तो पता चला कि वह कांच का टुकड़ा था। अपने घर के अन्दर आकर झूले पर बैठते हुए उन्होंने

कहा, "लगता है कि मेरे लिए भगवान के घर से बुलावा आ गया है।" उस समय उनके स्वर में एक विचित्र शांति विद्यमान थी। धर्माम्बाल् को लगा, कांच का वह टुकड़ा, जो उनके पांव में चुभा था, उसके दिल में चुभ गया है। वह तड़प उठी और उसकी आंखों में आंसू उमड़ आये।

अबतक धर्माम्बाल् को इस घर में गृहलक्ष्मी बनकर आये आधी सदी से अधिक बीत चुकी थी। कोई चालीस वर्ष तक दोनों ने अभिन्न दाम्पत्य-जीवन बिताया था। अतः वे दोनों एक-दूसरे के लिए इतने आवश्यक अंग हो गए कि एक-दूसरे से अलग नहीं हो सकते थे। इतने लम्बे साथ और गुणों के कारण दोनों एक-मन हो गए थे। इतने दिनों के अभिन्न जीवन के बाद ढलती उम्र में किसीका पृथक होना कठिन यातना ही हो सकती थी। पर संयोग का वियोग तो अवश्यंभावी है। होनी होकर ही रहती है। कोई पहले जाता है तो कोई पीछे। लेकिन पहले कौन जाता, इसकी होड़ दोनों के दिल में लगी थी—वह भी एक लंबे अरसे से।

धर्माम्बाल ने आंखें पोंछते हुए कहा, "ऐसी बातें आप अपनी जीभ पर क्यों लाते हैं ? आखिर भगवान भी तो हैं। उनकी जैसी इच्छा होगी, वही होगा। हम क्यों अशुभ बातें करें ?"

"अशुभ नहीं, मुझे तो यही लगता है कि अब मेरा अंतकाल निकट आ गया है। मैं समझता हूं कि इस संसार में मेरे जन्म लेने का प्रयोजन पूरा हो गया है।" सभेशय्यर ने कहा।

"बार-बार आप ऐसे शब्द क्यों मुंह से निकाल रहे हैं ? भगवान् पंच-नदीश्वर से मैंने सदा यही प्रार्थना की है कि वह मुझे सुहागिन के रूप में ही उठा लें। परन्तु न जाने भाग्य में क्या बदा है !" धर्माम्बाल् ने कहा।

"चित्रगुप्त हिसाब-किताब में बड़ा होशियार है। उसे आसानी से धोखा नहीं दिया जा सकता। वह अच्छी तरह जानता है कि किसे कब और कैसे ले जाना है ? हमसे पूछकर थोड़े ही वह कुछ करता है।"

"अच्छा इन बेकार की बातों को छोड़ो। मैं वैद्य को बुलवाती हूं। किट्टू जा, जल्दी से वैद्य कण्णप्पन् को बुला ला। उनसे कहना कि वह फौरन आ जायं।"

किट्टु को भेजकर वह रसोई में गई। लेकिन मन में बेचैनी बनी रही।

दिल के एक कोने में यह विचार कांटे की तरह चुभ रहा था कि कहीं कुछ अनहोनी न हो जाय। लेकिन इस अंधेरे में भी प्रकाश की क्षीण रेखा उन्हें अभी तक विश्वास दे रही थी कि इस विपत्ति से बचने का भी कोई-न-कोई उपाय निकल ही आयेगा। भगवान् सबके सहायक हैं, लेकिन सभेशय्यर इस बात को भली प्रकार समझ चुके थे कि भगवान का बुलावा आ गया है।

वैद्य आये। जड़ी-बूटियां कूटकर मरहम-पट्टी की। बाद में भी वह अपनी ओर से सभी प्रकार से चिकित्सा करते रहे। लेकिन वह व्याधि साधारण नहीं थी कि दवा-दारू से ठीक हो जाती, बल्कि वह तो सभेशय्यर के लिए काल का आमंत्रण था। भला यह रोग काबू में आ सकता था?

दवाओं का उनपर कोई असर नहीं हुआ। दिन-पर-दिन रोग बढ़ता ही गया। पैर के जिस भाग में कांच चुभा था, वह भाग पक गया, उसमें पीव पड़ गया तथा धीरे-धीरे वह सड़ने लगा। इससे उन्हें बहुत पीड़ा हो रही थी। कुछ दिनों के बाद बुखार आने लगा। उन दिनों एलोपैथी की चिकित्सा का उतना प्रचार नहीं हुआ था। तिरुवैयारु जैसी छोटी-सी नगरी में डाक्टर कहां से मिलते? इसलिए नश्तर लगाने का प्रबंध नहीं हो सका। उस समय वहां पर चीड़ा-फाड़ी का काम नाई कण्णप्पन् ही किया करता था। वह यद्यपि इस काम में कुशल था, तथापि यमराज का सामना करने की ताकत उसमें भी नहीं थी। कालदेव के सम्मुख तो वैद्य भी हार जाता है। अतः उसकी चिकित्सा से उन्हें कोई लाभ नहीं हुआ। दिन-पर-दिन उनका बुखार बढ़ता गया। हालत बहुत ही गंभीर हो गई।

इस पैर की चोट से उन्हें असहनीय कष्ट हो रहा था। शरीर बुखार से तप रहा था। फिर भी वे बेहोश नहीं थे। उन्हें अपनी सुध-बुध थी, पर उन्हें मालूम हो गया था कि अब उनके प्राण-पखेरू शरीर के इस पिंजड़े में और अधिक समय तक नहीं ठहरेंगे। बड़ी ही कठिनता से उन्होंने अपने नेत्रों को खोला। उनके सामने चिता और दुख में डूबा हुआ किट्टु बैठा था। वह अपलक उनकी ओर देख रहा था। उसको उन्होंने इशारे से धर्माम्बाल् को बुला लाने को कहा।

वह घबरायी हुई-सी दौड़ी आई। सभेशय्यर ने उन्हें अपने पास बैठने का संकेत किया। वह घबराकर बैठ गई। सभेशय्यर धीमे स्वर में बोले,

"आज सन्ध्या के बाद ये प्राण इस शरीर में नहीं टिकेंगे। इस शरीर को घर और संसार के ऋणों से अब मुक्त समझो।"

धर्मास्वाल् के दुखी दिल में ये शब्द नुकीली बर्छी की भांति लगे। "इस ढलती उम्र में मेरे भाग्य में न जाने अब और क्या-क्या लिखा है?" वह यह कहना ही चाहती थीं कि उनका कंठ रुंध गया, मुंह से आवाज़ भी नहीं निकल सकी।

सभेशय्यर ने उनके दिल की बात समझ ली। बोले, "इस संसार में कितनी ही कम-उम्र लड़कियां विधवा हो जाती हैं। क्या तुम अपने दुःख को उनके दुःख से बड़ा समझती हो? अपने दिल को दिलासा दो और भगवान् का नाम लेकर शेष उम्र बिता दो। तुम जिन्दगी की इतनी बड़ी मंजिल पार कर चुकी हो और अब दिन ही कितने बाकी रहे हैं! मौत से बचकर कहीं कोई रह सकता है?"

इतना कहकर सभेशय्यर ने ज्योंही करवट ली तो देखा, किट्टु खड़ा-खड़ा अपने आंसू पोंछ रहा है। उन्होंने उसे अपने पास बुलाया। वह धीमे-धीमे उनके पास आया। उन्होंने प्रेम से उस पर हाथ फेरा। उनकी आंखों में प्रेम के आंसू छलक आए। वह बोले, "संगीत की भक्तिपूर्वक उपासना करना। यदि तुम्हारा मन पवित्र होगा तो तुम्हें महान् सफलता प्राप्त होगी और तुम्हारा कल्याण होगा।"

किट्टु मौन सिर झुकाए खड़ा रहा। सभेशय्यर ने अपने गुरु से विरासत में प्राप्त वीणा की ओर इशारा करके कहा, "मैं इसे तुम्हें देता हूं, क्योंकि तुम इस परंपरा के उत्तराधिकारी हो। ऐसा प्रयत्न करना कि इस परंपरा के गौरव में वृद्धि हो।"

फिर थोड़ी देर रुककर बोले, "भगवान् के चित्र के सामने दीपक और अगरबत्ती जला आओ।"

किट्टु ने श्रीरामचन्द्र और संत त्यागराज के चित्रों को हार पहनाया और दीपक और अगरबत्ती जलाकर चित्रों के दोनों ओर रख दीं। इसके पश्चात् जब वह सभेशय्यर के पास आया तो उन्होंने संत त्यागराज के पंचरत्न पदों में से दो पद और रामायण के कुछ श्लोकों का पाठकरने को कहा।

किट्टु की मनःस्थिति उस समय गाने योग्य नहीं थी। लेकिन गुरु का

आदेश टाला भी कैसे जा सकता था। वह समझ चुका था कि यह उनकी अंतिम आकांक्षा है। ऐसी परिस्थिति में वह उनके आदेश की अवहेलना कैसे कर सकता था। वह मना नहीं कर सका। उसने मन को समझाकर गाना आरंभ किया। धीरे-धीरे वह गाने में लीन हो गया और संगीत ने उसकी व्यथा को दबा लिया। मन की टीस जरा कम हो गई। वह उत्साह के साथ गाने लगा। सभेशय्यर ने मन-ही-मन सोचा—"मधुर संगीत से आत्मा को कितनी शान्ति मिलती है।" पता नहीं, किट्टु ने भी इसका अनुभव किया या नहीं, लेकिन उस समय वह अपने आपको भूलकर अदम्य उत्साह से गाए जा रहा था। गायन समाप्त होते ही सभेशय्यर ने कहा, "रामायण लेकर कुछ श्लोक पढ़ो।"

रामायण के कुछ प्रसंगों को वह बहुत पसन्द करते थे। उन श्लोकों को बार-बार पढ़ने पर भी वह नहीं अघाते थे। उन्हीं प्रसंगों में से एक प्रसंग निकालकर किट्टु पढ़ने लगा।

सभेशय्यर मन्त्र-मुग्ध होकर सुनते रहे। वह उसमें इतने खो गये कि उन्हें अपनी सुध-बुध न रही। भगवान् श्रीरामचन्द्र का सच्चिदानन्द स्वरूप उनकी आंखों के सामने उभर आया। रामायण के श्लोकों को सुनते-सुनते उनका श्वास मुंह को आ गया। उस समय प्राणों के साथ संघर्ष करते हुए उन्होंने बड़े ही प्रयत्न से दो बार राम का नाम लिया। उनकी जीवनलीला समाप्त हो गई, आंखें सदा के लिए मुंद गईं। राम-नाम का श्रवण करते-करते वह श्रीरामचन्द्र के पदारविन्दों में पहुंच गये। उधर किट्टु रामायण के श्लोक-पाठ में इतना लीन हो गया था कि उसे इस बात का पता ही नहीं लग सका कि कब उसके गुरुदेव का श्वास बन्द हो गया!

तभी पड़ोस की बूढ़ी दादी ने सभेशय्यर की ओर संकेत किया। किट्टु ने श्लोक पढ़ना बन्द कर दिया और चौंककर उनकी ओर देखा। उस ज्ञानाचार्य का भौतिक शरीर ही अब शेष रह गया था, जिसने उसको केवल संगीत की ही शिक्षा नहीं दी थी, अपितु आत्म-बोध भी कराया था और उसके साथ पिता-तुल्य व्यवहार दिया था। आज उस यशःकाय से भी विछोह हो गया। इस बात का भान होते ही किट्टु का दिल धक-से रह गया। वह सिर से पैर तक कांप उठा। उसका मन व्यथा और भय से भर उठा। उसके

जीवन में घटित होनेवाली यह प्रथम दुर्घटना थी। इसीका उसे भय था श्रौर हुश्रा भी वही। श्रब गुरुदेव-सा शुभेच्छु श्रौर कौन है, जो उनकी तरह उसके साथ प्रेम श्रौर वात्सल्य का व्यवहार करेगा ? उसके मन में एक प्रकार का श्रंधेरा-सा छा गया।

"सचमुच वह महान् व्यक्ति थे। श्रन्तिम समय में भी उन्होंने यह दिखा दिया कि मृत्यु को कैसे जीता जाता है। वह धुन के पक्के थे, वीतरागी थे श्रौर भक्त थे। ऐसी मृत्यु क्या हर किसीके भाग्य में बदी होती है ?" वहाँ खेद प्रकट करने के लिए श्रानेवाले सभी लोगों के मुंह पर यही बात थी। सभी उनकी प्रशंसा कर रहे थे। किट्टु ने इन सब बातों को सुनकर भी नहीं सुना। वह श्रपने-श्राप में नहीं था।

सभेशय्यर की मृत्यु की खबर पाकर पास-पड़ोस के लोग श्राये। भाई-बंद तथा सगे-सम्बन्धी श्राये। लोगों की भीड़ बढ़ने लगी। लेकिन किट्टु एक कोने में गुमसुम बैठा रहा।

धीरे-धीरे श्रन्तिम संस्कार के सभी कार्य किये जाने लगे। एक श्रोर द्वार पर उपलों में श्राग जल रही थी तो दूसरी श्रोर श्रर्थी की तैयारियां हो रही थीं। इतने में सवाल उठ खड़ा हुश्रा कि दाह-क्रिया कौन करेगा ? यों उनके क्रिया-कर्म का श्रधिकारी उनका नाती महादेवन था, लेकिन उस समय वह श्रपने पिता के घर गया हुश्रा था। उसे बुलाने के लिए एक श्रादमी भेजा गया। पर उसके लौटने में कम-से-कम दो दिन लग सकते थे। उसकी श्रनुपस्थिति में धर्माम्वाल् को यह काम करना पड़ता, लेकिन स्त्री को सीधे कर्म करने का श्रधिकार नहीं था। श्रतः उसके हाथ से दर्भ लेकर कोई पुरुष ही इस काम को कर सकता था। पुरोहित ने धर्माम्वाल् से पूछा तो उसने उत्तर दिया, "किट्टु हमारे घर में पुत्र की तरह पला है, वही करेगा।"

श्रतः किट्टु ने कार्यारम्भ किया।

किट्टु ने कुछ देर पहले श्रपनी श्रांखों से मृत्यु के दर्शन किए थे। वह समझ गया कि मृत्यु जीवन का सनातन श्रंग है, जो मनुष्य के श्रन्तर्मन में चुभकर उसे जीवन के मर्म का बोध कराता है। उसने सोचा, धर्मराज युधिष्ठिर ने विष के तालाब में खड़े होकर श्राश्चर्य प्रकट किया था, मनुष्य

क्यों अपने जीवन-काल में मृत्यु का विचार नहीं करता ! इस नश्वर शरीर को अनश्वर मानकर क्यों चलता है ? उसे अपने प्राणों से क्यों इतना मोह हो जाता है ? यह बड़े आश्चर्य की बात है और उसका हाल भी क्या हो सकता है ? यह सब सोचते हुए किट्टु ने स्नान किया और शरीर को बिना पोंछे, गीले वस्त्र पहनकर वैदिक रीति से अग्नि की क्रियाएं करने लगा। उस समय के मन्त्र, उसका अप्राकृतिक वेष, क्रिया-कर्म के लिए प्रस्तुत साधन-सामग्री—सभी उसे इस बात का बोध करा रहे थे कि जीवन से भिन्न भी कोई कार्य है।

अन्तिम क्रिया में सम्मिलित होने के लिए आनेवाले बंधु-बांधव अधिक नहीं थे, पर एक महादेवन था, न जिसकी उपस्थिति आवश्यक थी। लोग उतावली कर रहे थे कि सभेशय्यर की दाह-क्रिया जल्दी होनी चाहिए। पूरब और पच्छिम में शिव और विष्णु के मन्दिर थे। वहां शव के पड़े रहने से देव-पूजा-विधि में बाधा पहुंचती थी। यही कारण था कि उस ब्राह्मण गली के लोग जल्दी कर रहे थे। अतः अर्थी यथाशीघ्र श्मशान के लिए रवाना हो गई। आगे-आगे किट्टु हाथ में आग की मटकी लेकर जा रहा था।

मन की पूर्णता के लिए श्मशान-भूमि एक बड़ी अभ्यास भूमि होती है। सच पूछा जाय तो जीवन का सत्य श्मशान-भूमि से ही प्रारम्भ होता है। शायद यही कारण है कि जिस परम पुरुष के डमरू से संसार, वेद और जीव-राशि का जन्म हुआ है, वह भी मृत्यु पर विजय पानेवाले अपने तांडव-नृत्य को रुद्र-भूमि में ही करता है।

मृत्यु और श्मशानभूमि ने किट्टु को बुरी तरह से प्रभावित कर रक्खा था। उसकी अवस्था कम थी, इसलिए उसका मन बहुत शीघ्र प्रभावित हो जाता था। अतः अप्रत्याशित रूप से घटी इस घटना ने भी उसका दिल दहला दिया था, नहीं तो भला मृत्यु और इन क्रियाओं का विचार उसके नन्हे दिल में कहां से उठ सकता था ! दुनिया का यह अनुभव उसे कहां मिला था !

वह मन्त्रों का उच्चारण तो कर रहा था, पर उसे शुद्ध-अशुद्ध की सुध नहीं थी।

श्मशान में चिता तैयार की गई। उसपर उपले सजाये गये और सभेशय्यर के शव को लिटा दिया गया। उसने चिता की परिक्रमा की।

उसके मन में अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था। जिस व्यक्ति ने उसे ज्ञान दिया, शिक्षा-दीक्षा प्रदान की, उपदेश देकर उसे आदमी बनाया, उसे वह यह कैसी गुरुदक्षिणा दे रहा है? इस संसार में न जाने कितने मनुष्य जन्म लेते हैं, लेकिन क्या सभी उसकी तरह गुरु की कृपा प्राप्त कर लेते हैं? कभी नहीं। ऐसे पितृ-तुल्य व्यक्ति के प्रेम और वात्सल्य को प्राप्त करके ही तो मैं इतना बड़ा हुआ हूं। लेकिन उसने उनकी क्या सेवा की? कुछ भी तो नहीं। प्रेम और करुणा की वर्षा करनेवाले गुरु के शरीर को हाय, दुर्भाग्य से आज उसे आग लगानी पड़ रही है। क्या यही गुरु-सेवा मेरे भाग्य में बदी थी।

खिन्न मन से उसने उनकी छाती पर के उपलों को हटाकर मटकी की आग उंडेली। फिर मटकी फोड़कर सब घर को चल दिये। उसने सोचा, फूटी मटकी और निर्जीव देह—शायद दोनों एक-से ही हैं।

किट्टु घर लौटा। घर बिल्कुल सुनसान पड़ा था। उस घर को उज्ज्वल करनेवाला, कोने-कोने में प्रकाश फैलानेवाला दीपक बुझ गया था। ईंट और मिट्टी से बना घर ही शेष रह गया था। उस घर का जीवन तो श्मशान भूमि में विलीन हो चुका था। राम-नाम और भक्ति का अथक उपदेश करनेवाले उस महान पुरुष का शरीर लपलपाती आग में जलकर भस्मीभूत हो गया था। किट्टु का मन सोचते-सोचते विह्वल हो उठा। दुःख और वेदना ने उसके हृदय को हिला दिया। अब कहां वह वात्सल्यपूर्ण आवाज़ सुनाई देगी! संगीत का कीर्ति-स्तम्भ—गुरुदेव का शरीर—आज धराशायी हो गया था। सब यही कह रहे थे और किट्टु का मन रो रहा था।

काश वह और कुछ दिन जीवित रहते! संसार के प्रसिद्ध व्यक्तियों के समाज में उसकी स्थिति बनने तक ही वह बने रहते तो कितना अच्छा होता। गुरु-सेवा का सुअवसर प्राप्त होता। इतना ही जीवित रह लेते।

पर उसका ऐसा भाग कहां था! उसे जीवन देनेवाला ही आज निर्जीव हो गया था, प्रोत्साहन देने वाला आज सदा के लिए चला गया था!

उनके प्राण-पखेरू पिंजड़ा छोड़कर उड़ गये और वह अनाथ हो गया। अब उसकी खोज-खबर भला कौन लेगा ! किट्टु अभी तक इन्हीं भावनाओं में बह रहा था।

दूसरे दिन, सवेरे मिट्टी का घड़ा और फावड़ा लेकर लोग मसान को चले। कल किट्टु ने जीवन की भयंकरता का एक अंश देखा था। हां, प्राणों से भी प्यारे व्यक्ति को आग में झोंक आने का दृश्य वह अपनी आंखों देख आया था। आज एक दूसरा ही दृश्य—उससे भी भयंकर—उसे और देखना था। उसके प्राण-प्रिय उस महान् पुरुष का शरीर जलकर राख बन गया था। उन्हीं के भस्मावशेषों को देखने वह जा रहा था।

श्मशान में जाकर उसने उन महान पुण्यात्मा की मृत-देह की भस्मीभूत चिता का दर्शन किया। उनकी अस्थियां राख के ढेर में इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं। अपने हरि-भजनों, कीर्तनों और कथाओं से लोगों को संवारने-सुधारनेवाले उस महान व्यक्ति के शरीर का बस यही शेष बचा था। किट्टु यह दृश्य नहीं देख सका। इतना सक्रिय और सचेष्ट मनुष्य-शरीर मुट्ठी भर राख में कैसे समा जाता है ? मनुष्य के सारे अरमानों और अभिलाषाओं को भी क्या इसी तरह जल-भुनकर राख बनना पड़ता है ? जैसे मनुष्य की मृत-देह को जलाकर भस्म कर डालते हैं, वैसे क्या इस मन को जला डालने का भी कोई साधन है ? उफ, यह भी कैसा संसार है और कैसा जीवन है ! कहीं हम इसलिए तो भस्म धारण नहीं करते कि यह शरीर भी एक-न-एक दिन मुट्ठी भर राख में परिणत हो जायगा ! शायद यही स्मरण दिलाने के लिए लोग भस्म धारण करते हैं।

किट्टु के मन में ऐसे कितने ही विचार उठ रहे थे। अस्थियां बीनने की क्रिया पूरी करके घर लौटने तक, उसके दिल में न जाने कितने भयंकर विचार और कल्पनाएं उभर आईं ! स्वभाव से किट्टु मृदु और सात्विक प्रकृति का था। उसने अभी पहले-पहल इस प्रकार के दृश्यों का निकट से साक्षात्कार किया था। वे उसके मन पर अमिट प्रभाव छोड़ गये। अतः उसके मन में वैराग्य-भावना जग उठी।

११

एक के बाद एक, तेरहवीं तक के सभी क्रिया-कर्म पूरे हो गए। किट्टु इसी दिन की राह देख रहा था। सभेशय्यर की मृत्यु के बाद वह उस घर में और अधिक दिन रहना ठीक नहीं समझता था। उसका मन अशान्त था। फिर अब उस घर में उसे रोक रखने के लिए रह ही क्या गया था? धर्माम्बाल् का दुःख उससे नहीं देखा जाता था। एक और चिन्ता उसके मन को मथ रही थी कि धर्माम्बाल् इस ढलती उम्र में इस घर में अकेली कैसे रहेंगी। दुःख और चिन्ता के इस वातावरण से बचने का एकमात्र यही उपाय उसकी समझ में आया कि अब इस घर से—चाहे थोड़े दिन के लिए ही सही—चले जाना चाहिए।

पितृ-तुल्य गुरुदेव के देहावसान के बाद आज प्रथम बार बहुत दिनों के बाद उसे अपनी माता का स्मरण हो आया। गुरुदेव के स्नेह और वात्सल्यपूर्ण व्यवहार में वह अपनी जननी तक को भूल गया था। न जाने कितने दिनों से उसे उनकी याद ही नहीं आई। लेकिन, आज इस दुर्घटना ने उसे फिर मां की याद दिला दी। एक सहारा छिन गया तो क्या? दूसरा तो अभी है। उसने अपनी माँ से मिलने का दृढ़ निश्चय कर लिया। इतने दिनों बाद अब जब वह अपनी मां से मिलेगा तो वह अपने बिछुड़े बेटे को पाकर कितनी प्रसन्न होगी, इसका अन्दाजा लगाना कठिन है। जन्म देनेवाली माँ ही तो अब उसका सबसे बड़ा सहारा है। वह यह जानकर कितनी प्रसन्न होगी कि उसका पुत्र श्रेष्ठ विद्या प्राप्त करके पारंगत होने जा रहा है। यद्यपि उन्हें संगीत पसन्द नहीं है, इसलिए हो सकता है वह उससे घृणा भी करने लगें, लेकिन··नहीं-नहीं, वह वर्षों बाद अपने लड़के से मिलकर घृणा

नहीं करेंगी। मां को भी तो ग्राखिर पुत्र की ग्राकांक्षा होगी। इस प्रकार से उसके मन में न जाने कितने विचार उठ रहे थे। ग्रतः उसने एक बार गांव जाने का निश्चय कर ही लिया।

एक दिन धर्माम्बाल जब फुरसत से बैठी थीं, किट्टु ने उन्हें ग्रपना निर्णय बता देने का निश्चय किया। वह उनके पास जाकर बोला, "मांजी, एक बात कहना चाहता हूं। ग्राशा है, ग्राप मुझे ग्राज्ञा देंगी।"

धर्माम्बाल कुछ भी न समझ पाई कि वह क्या कहना चाहता है। उन्होंने कहा, "क्या कहना चाहते हो ? बिना लम्बी-चौड़ी भूमिका के ग्रपनी बात कह डालो।"

"मैं···मैं यह कहना चाहता हूं कि मुझे ग्रब यहां से जाने की ग्राज्ञा दे दीजिए। मुझे ग्रब यहां..."

वह बात पूरी कर भी नहीं पाया कि उसका गला भर ग्राया। ग्रभी तक वह उनके निकटतम संपर्क में रहा ग्रौर ग्रब वह उनसे कैसे जोर देकर कहे कि मैं जाना चाहता हूं, मुझे जाने की ग्राज्ञा दीजिये।

उसकी यह बात सुनकर धर्माम्बाल् स्तब्ध रह गयीं। यह कैसा पागलपन है! ग्रब वह भी उन्हें ग्रकेला छोड़कर जाना चाहता है, ग्राखिर क्यों ? इस संसार में उसका कौन है, जो उसे ग्रपने घर बुलायेगा ? यह सोचते-सोचते उन्होंने पूछा, 'कहां जाना चाहते हो ? तुम्हारे घर पर कोई सगे-सम्बन्धी भी हैं क्या ?"

उन्हें इस बात का पता नहीं था कि किट्टु की मां ग्रभी जीवित हैं। किट्टु ने कहा, "मांजी, मुझे जन्म देनेवाली मेरी मां जीवित हैं।"

"तुम्हारी मां हैं ? ग्ररे, तुमने तो मुझे ग्रबतक बताया ही नहीं। इतने दिनों तक इस बात को तुम क्यों छिपाये रहे ?" धर्माम्बाल् ने पूछा।

लेकिन किट्टु ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। वह नहीं चाहता था कि इस ग्रवसर पर उन्हें पुरानी बातें विस्तार से सुनाये। इसलिए उसने कहा, "गुरुदेव की मृत्यु के बाद से मेरा मन ठिकाने नहीं है। मैं कुछ दिनों के लिए यहां से जाना चाहता हूं। तभी मेरे मन को शान्ति मिल सकेगी।"

"लेकिन मैं इस घर में ग्रकेली कैसे रहूंगी ? मेरा मन भी यहां नहीं रहना चाहता !" धर्माम्बाल् ने कहा।

"आप अपनी बहन को और कुछ दिनों के लिए यहां रोक लीजिये। महादेवन भी यहीं रहे, और सगे-सम्बन्धी भी साथ रहेंगे तो आपका मन बहल जायगा।" किट्टु ने ये बातें इस प्रकार से कहीं, मानो उसे संसार का काफी अनुभव हो।

धर्माम्बाल् ने उत्तर में कहा, "अगर तुम जाना ही चाहते हो तो एक शर्त पर जा सकते हो। तुम थोड़े दिन घूमकर यहीं वापस लौट आओगे। अगर मेरी यह शर्त तुम्हें मंजूर हो तो चले जाओ।"

"मेरे लिए वहां अधिक रहने को रक्खा ही क्या है। मुझे यदि कुछ मोह है तो वह इसी मिट्टी से है, जिसे मैं गर्व से अपनी कहता हूं। मैं अपने चित्त को शांत करने के लिए जा रहा हूं। जल्दी ही लौट आऊंगा।" यह कहकर किट्टु ने विदा मांगी।

राह-खर्च के लिए रुपये ले जाने को धर्माम्बाल् ने उससे कहा, परन्तु किट्टु ने एक भी पैसा नहीं लिया। उसने पहले ही रुपयों का प्रबन्ध कर लिया था। एक स्थानीय धनी-मानी व्यक्ति से उसने बीस रुपये उधार ले लिये थे।

वहां से विदा होते समय दुःख और विषाद से उसका मन भर आया। सिर चकराने लगा। आंखों तले अंधेरा छा गया। किट्टु और धर्माम्वाल् दोनों ही सोच रहे थे कि पता नहीं, अब कब मिलना होगा। घर जाकर कौन लौटता है। अतः विदाई की यह बेला बड़ी ही करुणापूर्ण और हृदय को द्रवित करनेवाली थी। धर्माम्वाल् की आंखों से आंसुओं की झड़ी लग गई।

इससे पहले भी कुछ विद्यार्थी विद्याभ्यास पूरा करके विदा हुए थे, लेकिन ऐसा दृश्य आजतक सामने नहीं आया था। किट्टु उन सबसे भिन्न था। किट्टु उनके कुटुंब का अभिन्न अंग हो गया था और एक लाड़ले बेटे की तरह पला था। इसलिए पति-वियोग के तुरन्त बाद ही किट्टु को विदा करना धर्माम्बाल् को बहुत ही कष्ट-प्रद लगा, वह फूट पड़ी।

"मां, मैं जल्टी ही लौट आऊंगा।" किट्टु ने भरे गले से बड़ी कठिनाई से कहा और वहां से तेजी से कदम बढ़ाता हुआ चल दिया। ऐसा लग रहा था, मानो उसे दुःख ही वहां से आगे की ओर तेजी से ढकेलता जा

रहा हो।

किट्टु ने अपना मार्ग कहीं घोड़ागाड़ी से तो कहीं बैलगाड़ी से तय किया। कहीं-कहीं उसे पैदल भी चलना पड़ा। जैसे-तैसे करके आखिरकार वह अपने गांव पहुंचा। उसे अपने गांव से चले दस वर्ष से भी अधिक हो गये थे। अब जब लौटा था तो न जाने कैसा अजीब-सा अपने-आपको महसूस कर रहा था। दस साल पहले जब वह किसीसे बिना कुछ कहे-सुने घर से निकल भागा था, तब की और अब की उसकी मनोदशा में काफी अंतर आ गया था। उस समय उसके पास ऐसी कोई चीज नहीं थी, जो उसका मूल्य बढ़ाती। लेकिन अब उसके पास दस वर्षों के अथक परिश्रम से कमाई अमूल्य निधि है, जो उसकी कीर्ति में चार चांद लगा सकती है।

इसलिए आज वह अपनी मां के पास जाकर कहना चाहता था, "मां, उस दिन तुमने मुझे कितना अयोग्य समझ रक्खा था, और अब देखो, मैं एक बड़े संगीताचार्य के पास रहकर संगीत-विद्या सीख आया हूं। उनके आशीर्वाद से मुझमें अब ऐसी योग्यता आ गई है कि मैं भी चार आदमियों के बीच अपने को आदमी कह सकूं।"

और जब इतना कहकर वह माता के आगे सिर झुकाएगा तो वह हर्ष से फूली न समायेगी। मां का उल्लास देखकर उसे भी स्वयं कितना आनन्द मिलेगा, यह कहना कठिन था। किट्टु ने मन-ही-मन इस मधुर दृश्य की कल्पना कर ली।

मां संगीत से पता नहीं, क्यों इतनी घृणा करती हैं। कदाचित् मेरी इस रुचि को देखकर भी उनके मन में मेरे लिए भी घृणा उत्पन्न हो जाय। लेकिन नहीं, वह मेरी योग्यता और पांडित्य को देखकर बड़े प्रेम से मेरा स्वागत करेगी। अपने बिछुड़े पुत्र को पाकर वह फूली नहीं समायेगी। इस विचार के आते ही उसकी आशंका समाप्त हो गई। मां से वह आशीर्वाद पाना चाहता था। वह अपने जीवन को बोझ नहीं बनाना चाहता था, बल्कि अपनी कुल-परम्परा को, अपनी पैतृक सम्पति-संगीत से समृद्ध करना चाहता था। इसीलिए इतनी घोर तपस्या करके उसने इस विद्या को सीखा था। इन सब बातों के साथ-साथ वह अपनी मां से और भी बहुत कुछ कहना चाहता था।" उसकी मां ने उसकी याद में दस वर्ष रो-रोकर

गुजार दिये हैं। उसके चले जाने से कितना असीम दुःख हुआ होगा मां को। लेकिन आज वह लौट आया है। अब मां के सब कष्ट दूर हो जायंगे। "मां, अब तुम्हारे जीवन के अंतिम दिनों को ही सही, मैं सुख और शांति से भर दूंगा।"

ये सब बातें वह अपनी मां से कहना चाहता था। उसे याद आया, पिताजी ने भी मां को कितना दुःख दिया था, लेकिन मैं पिताजी की तरह नहीं हूं। मैं मां के साथ इतना अच्छा व्यवहार करूंगा कि लोग मेरा नाम गर्व और आदर से लेंगे। आज इसी ध्येय को लेकर मैं अपने गांव लौटा रहा हूं।

गांव से डेढ़ मील दूर ही वह गाड़ी पर से उतर गया। वहां से उसके गांव का रास्ता खेतों की मेंड़ पर की पगडंडी और नहर-नालों के किनारे से होकर गया था। और दूसरा कोई रास्ता ही न था। गाड़ी से उतरते ही उसने गांव जानेवाली पगडंडी को पहचान लिया और उसपर चल पड़ा। अपने गांव की धरती पर पांव पड़ते ही उसके हृदय में भावनाओं का उतार-चढ़ाव आरम्भ हो गया। वहां की मिट्टी का उसके शरीर के साथ अकथनीय सम्बन्ध है। आज से दस वर्ष पहले जब उसने अपनी जन्मभूमि को छोड़ा था, तब वह एक अबोध बालक था। इन दस वर्षों में न जाने कितनी चीजें बदल गई थीं। उसे बहुत कुछ बदला-बदला-सा नजर आ रहा था। यद्यपि बहुत-सी चीजें वह नहीं रही थीं, फिर भी उस गांव की जमीन में, वहां के लोगों में, कोई भी विशेष परिवर्तन नहीं आया था। आना कोई जरूरी भी नहीं था। उसे गांव के दृश्य पहले जैसे ही दीख रहे थे। उसके बचपन की की स्मृतियां धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगीं। हर चीज उसे परिचित-सी जान पड़ी।

गांव के निकट जाने पर वह नाले के किनारे पर आ गया। उस नाले के किनारे पर वर्षों पुराना एक ताड़ का पेड़ था। उस पेड़ के नीचे वह अपने साथियों के साथ बचपन में खेला करता था। किनारे पर पहुंचते ही उसकी आंखें उस ताड़ के पेड़ को खोजने लगीं। लेकिन वह पेड़ वहां नहीं था। वह आश्चर्य-चकित हो उठा।

वहीं नाले के किनारे पर, कुछ किसान बैठे पान के बाग की ओर मुंह

किये बातें कर रहे थे। किट्टु उनके लिए अजनबी था, इसलिए वे एकटक उसे देखने लगे। उनके देखने के ढंग ने बता दिया कि उनमें से किसीने भी किट्टु को नहीं पहचाना। किट्टु भी उनमें से किसी को नहीं पहचान सका।

किट्टु ब्राह्मणों की बस्ती 'अग्रहारम' की ओर बढ़ा। गली के सिरे पर ही गणेशजी का मन्दिर था। उसके बाद गली शुरू होती थी।

गणेशजी के मन्दिर के द्वार पर दो आदमी बैठे थे। उनमें एक वृद्ध था और दूसरा युवक। वृद्ध पुरुष ने किट्टु को एड़ी से चोटी तक देखा। उनके चेहरे पर आश्चर्य और विस्मय की रेखाएं उभर आईं। पास बैठे युवक के कंधे पर हाथ मारकर उन्होंने उसे किट्टु की ओर देखने के लिए इशारा किया। युवक ने एक क्षण के लिए किट्टु को ध्यान से देखा, किट्टु ने भी उसे देखा। दूसरे ही क्षण वह युवक उठा और बड़े आनन्द से 'किट्टु' पुकारता हुआ उसकी ओर दौड़ा। पास जाकर उसके दोनों हाथ कसकर पकड़ लिये। "रामू, रामू !" किट्टु गद्गद हो गया। आगे उसके कंठ से आवाज तक नहीं निकली।

थोड़ी देर बाद उसने गला साफ कर पास बैठे वृद्ध पुरुष से कहा, "क्यों शेषु मामाजी, आपने मुझे नहीं पहचाना ?"

वे वृद्ध पुरुष उस गणेश मंदिर के पुजारी थे।

"अरे, पहचाना क्यों नहीं ? तुम्हें देखे भी तो दस साल से ज्यादा हो गये हैं। इसलिए जल्दी से याद नहीं आया। तभी तो मैंने रामू को इशारा किया।"

"किट्टु, हमें तो तुम्हारे बारे में आशा नहीं रही थी। सोचता था कि अब लौटोगे ही नहीं। इस जनम में हमारी शायद ही मुलाकात हो सके। आज तुम्हें सामने आंखों देखकर विश्वास नहीं हुआ कि तुम आ गये हो।" रामू ने बड़े ही मित्र-भाव से कहा।

"क्यों किट्टु, अबतक कहां थे ? क्या कर रहे थे ?" शेषु शास्त्री ने पूछा।

लेकिन किट्टु के पास इन सब प्रश्नों का उत्तर देने का समय कहां था! उसका मन तो जल्दी-से-जल्दी अपनी मां के पास पहुंचने के लिए व्याकुल था। वह शीघ्रता से मां के पास पहुंचकर उनसे क्षमा-प्रार्थना करना चाहता था।

सो सवालों की झड़ी उसे नागवार लग रही थी। उसका धीरज जवाब दे रहा था। वह वहां पर खड़ा था, लेकिन उसका मन अपने घर की खोज में चल पड़ा था। वह उनकी बातों को ध्यान देकर नहीं सुन रहा था। उसकी आंखें 'अग्रहारम' की ओर दौड़ रही थीं। तभी उसकी दृष्टि अपने घर पर पड़ी। गणेशजी के मन्दिर के द्वार से उसका घर साफ दिखाई देता था। अपने घर पर निगाह पड़ते ही उसका दिल धक-से रह गया। उसे हृदय की धड़कन बन्द होती प्रतीत हुई। उसकी आंखों से आंसू की धारा बहने लगी। क्यों न बहती, उसका घर उजड़कर खंडहर मात्र रह गया था। उसके दिल के सारे अरमान और हवाई किले घर के साथ ढह गये, आंसुओं के साथ बह गये।

उस खंडहर में आक और धतूरे के पौधे उग आये थे। बकरी के दो बच्चे वहां पर उगी हुई घास चर रहे थे। उस दृश्य ने उसके दिल और दिमाग को हिला दिया। हाय, विधि की कैसी विडम्बना है! उसके भाग्य में क्या यही बदा था कि उसका घर खंडहर बन जाय और वहां झाड़-झंखाड़ उग आयें? इतना सोचते ही उसका मन असह्य वेदना से तड़प उठा।

शेषु शास्त्री ने उसकी आंतरिक वेदना तो देखी, पर उसका ठीक कारण नहीं समझ पाये। उसे ढाढ़स देते हुए बोले, "अरे किट्टु, किस बात की याद करके दुखी हो रहे हो? अपने घर की हालत तुमने देखी? कैसा घर था! इसमें कितने बड़े-बड़े विद्वान् पले थे? आज वह मिट्टी में मिल गया। अब तो तुम्हींको यहां नया मकान खड़ा करना चाहिए। इतने दिन बाद आये हो। अच्छा किया जो आ गये!"

किट्टु की समझ में नहीं आया कि क्या कहे। उसने पूछा, "मेरी मां अब यहां नहीं है क्या? इस गांव से वह कहां चली गई? कब चली गई?" उसका दिल कांप रहा था कि न जाने कौन-सी बुरी खबर उसे सुनने को मिलेगी? शेषु शास्त्री के चेहरे पर हिचक और करुणा के भाव उमड़ आये।

वह बोले, "तो तुम्हें कुछ भी मालूम नहीं! अभी तक खबर नहीं मिली? तुम्हारी माता को गुजरे तो छः साल से भी ऊपर हो गये हैं।

मैं तो अभी तक यही समझे बैठा था कि तुम्हें सबकुछ पता है।"

किट्टु का सिर चकरा उठा। उसे लगा, जैसे शरीर की सारी नसें एक झटके से कट गई हों, और सारे शरीर में काठ मार गया हो। वह वहीं गणेशजी के मन्दिर की सीढ़ियों पर धम्म-से बैठ गया। उसकी आंखों से आंसू बहने लगे।

उसे शोक-संतप्त देखकर शेषु शास्त्री ने सांत्वना भरे स्वर में कहा, "जो हो गया, सो हो गया। उसपर दुख करने से अब क्या होगा! तुम्हें अच्छी हालत में सुख-चैन से रहता देखकर अगर उनकी आंखें मुंदी होतीं तो उनके दिल को कितनी शांति मिली होती। लेकिन भगवान की इच्छा ही दूसरी थी। हम मनुष्यों की क्या सामर्थ्य है? शोक करना छोड़ो। आओ, घर चलो। यह कहकर उन्होंने उसके साथ चलने को कहा। निराश और दुःखी किट्टु का मन किसी के निमंत्रण को स्वीकार करने में उत्साह नहीं दिखा रहा था।

"मैं इसी आशा को लेकर इतनी दूर दौड़ा आया था कि मेरा अपना कहने को घर है और मां है। लेकिन वह भी भगवान को सहन नहीं हुआ! उसने दोनों को मुझसे छीन लिया। अब मेरे यहां रहने से क्या लाभ है!" यह कहता हुआ वह उठा। "यहां की मिट्टी ने मुझे शरीर दिया है। अब इतना ही सम्बन्ध इसके साथ मेरा रह गया है। अब मैं वहीं जाऊंगा, जहां मैंने विद्या और ज्ञान का उपार्जन किया है।" इतना कहकर वह वहां से बिना विदा मांगे ही फुर्ती से चल दिया।

इस विशाल संसार में निराश्रित बनाकर छोड़नेवाले भगवान पर उसे बड़ा क्रोध आया। आज पहली बार उसने अपने आपको संसार में अकेला महसूस किया। उसे लगा कि यह संसार प्रतिक्षण विस्तृत होता जा रहा है। उसका मन यह सोचकर कमजोर होता जा रहा था कि अब इस विशाल संसार में उसे अकेले संघर्ष पड़ेगा। इस पर विजय प्राप्त करनी होगी, अपना भविष्य बनाना होगा। यह काम अत्यन्त कठिन है, सहल नहीं है। इन्हीं चिन्ताओं में उलझता वह धीरे-धीरे उसी रास्ते से लौट रहा था, जिस रास्ते से आया था।

किट्टु गांव से चला तो सीधा धनुष से निकले हुए बाण की तरह तंजा-

ऊर आकर ही रुका। तंजाऊर में सभेशय्यर के एक घनिष्ठ मित्र पान्नैय्या पिल्ले रहते थे। वह बड़े धनी थे। किट्टू ने निश्चय किया कि उनसे मिल कर सलाह करनी चाहिए तथा उनके कहे अनुसार जीवन-यापन की योजना बनानी चाहिए।

पोन्नैय्या पिल्लै बड़े रसिक व्यक्ति थे। सभेशय्यर के प्रति बड़ी भक्ति और श्रद्धा रखते थे। सभेशय्यर की सभी तरह से मदद भी किया करते थे। वे जानते थे कि कितने ही विद्यार्थी सभेशय्यर से संगीत की शिक्षा पाकर बड़े नामी संगीतज्ञ हुए हैं। लेकिन शायद ही कोई सभेशय्यर की तरह शील-संयम और ज्ञान-विज्ञान में पूर्ण योग्यता प्राप्त कर पाया हो। लेकिन जब सभेशय्यर के साथ किट्टु को देखने का मौका मिला तो उन्होंने निकट से उसका अध्ययन किया और समझ गये कि किट्टु अन्य विद्यार्थियों से भिन्न है। दूसरे कई व्यक्ति भी उनके इस मत से सहमत थे। उसके अतिरिक्त सभेशय्यर ने भी अनेक अवसरों पर किट्टु की योग्यता और गुणों की प्रशंसा उनसे की थी। अतः पिल्लै के दिल में किट्टु के प्रति ऊंची धारणा बन गई थी।

सभेशय्यर की मृत्यु के बाद से ही पोन्नैय्या पिल्लै के दिल में यह चिंता सवार हो गई थी कि सभेशय्यर की स्थान की पूर्ति कौन करेगा ? सभेशय्यर जैसा व्यक्ति, जो कर्नाटक संगीत का कीर्ति-स्तंभ था, अब ढूंढ़ने पर भी कहां मिलेगा ? अतः जब किट्टू उनके पास अपने जीवन के संबन्ध में परामर्श करने आया तो उन्हें अपनी राय देने में अधिक देर न लगी। उन्हें अपने मित्र के परम-प्रिय शिष्य के जीवन-निर्माण का अवसर अनायास ही मिल गया। उनकी प्रसन्नता की सीमा नहीं रही।

"कृष्णैय्या !" (वे किट्टु को इसी नाम से पुकारते थे) "तुम किसी बात की चिन्ता न करो। यह तंजाऊर नगरी संगीत की जननी-जन्मभूमि रही है। तुम मेरे साथ यहां रहो और संगीत का अभ्यास करो। यह स्थान तुम्हारी कीर्ति की वृद्धि में बड़ा सहायक होगा।"

किट्टु से एकाएक उनकी बात का कोई उत्तर देते न बना। वह नहीं चाहता था कि किसी दूसरे के आधीन या आश्रय में रहकर अपना उदर-पोषण करे।

"आपको छोड़कर मेरा हितचिन्तक कौन है, जो मेरी उन्नति का सही मार्ग मुझे बतलाए। मेरे गुरु और उनकी परंपरा का ध्यान करके आप मुझे जो भी उचित आदेश देंगे, उसे मैं मानने को तैयार हूं।" किट्टु ने कहा। पर उसके दिल की तह में छिपी बात पोन्नैय्या पिल्लै से छिपी न रह सकी।

वह बोले, "तुम किसी बात की चिन्ता न करो। उत्तर वीथि में मेरा एक घर खाली पड़ा है। उसमें तुम ठहर जाओ। बाकी की सारी व्यवस्था मैं कर दूंगा। इसके बदले में तुम्हारा संगीत सुनता रहूंगा। मेरे लड़के को भी तुम्हारा गाना सुनने का मौका मिलता रहेगा। मैं उसे भी संगीत का कुछ ज्ञान कराना चाहता हूं, इसीलिए तुम्हारे लिए यह सब व्यवस्था कर रहा हूं। सभेशय्यर की तरह ही तुम मेरे यहां रहोगे। तुम्हारी प्रगति में सभेशय्यर जितना प्रयास करते उतना, यकीन मानो, मैं भी करूंगा।"

पोन्नैय्या पिल्लै की इन सहानुभूति-पूर्ण बातों ने किट्टु के दिल को काफी दिलासा दी। बेचारा निराश होकर लौटा था, वह जैसा आश्रय चाहता था, वैसा ही पोन्नैय्या पिल्लै ने बड़े प्रेम से उसे देना स्वीकार कर लिया। यद्यपि वह दूसरों के आधीन आश्रित होकर नहीं रहना चाहता था, फिर भी उसने तबतक उनके आश्रम में रहने का निश्चय कर लिया, जबतक वह अपने पैरों पर खड़ा न हो ले। इस प्रकार उसने अपने जीवन का नया अध्याय तंजाऊर में प्रारम्भ किया।

१२

तंजाऊर में एक सप्ताह रहने के बाद किट्टु तिरुवैयारु गया । धर्माम्बाल् किट्टु के आने से बहुत प्रसन्न हुईं । वह तो समझे बैठी थीं कि अब किट्टु वापस नहीं आयेगा । उन्होंने उसके आगमन पर आश्चर्य प्रकट करते हुए कुशल-समाचार पूछे । जब उन्हें उसके घर के बारे में मालूम हुआ तो उन्होंने किट्टु के प्रति अपनी सहानुभूति दिखाई । पर उन्हें जब यह मालूम हुआ कि किट्टु इतने दिन तक अपनी मां को जीवित समझकर यहां विद्याभ्यास करता रहा और जब वह उनके दर्शनार्थ घर पहुंचा तो वे पहले ही स्वर्ग सिधार चुकी थीं । उसे उनके अन्तिम दर्शन भी न हो सके, तो उनका हृदय द्रवित हो गया । फिर भी किट्टु के पुनरागमन से उन्हें बहुत कुछ सम्बल मिला ।

किट्टु उनके घर में बचपन से उनके ही घर के बालक के समान पला था । इसीलिए उसे लौटकर तिरुवैयारु आना ही चाहिए था । लेकिन तंजाऊर में बस जाने का उसने इरादा क्यों कर लिया, यह उनकी समझ में नहीं आया । क्या वह इस ममतापूर्ण बन्धन को तोड़ लेना चाहता था ?

उन्होंने शंकित स्वर में किट्टु से पूछा "क्यों किट्टु, तुम्हें तंजाऊर में रहने की क्या जरूरत पड़ गई ?"

किट्टु ने उत्तर में कहा, "मांजी, मैं अब कबतक इस तरह से छोटा बालक बना रहूंगा ? अभी तक तो गुरुजी के ही आश्रय में पला हूं । अब बड़ा हो गया हूं, अतः मुझे इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि जीवन में मैं स्वयं आगे बढ़ूं और संसार में अपने लिए स्थान खोजूं !"

आजतक कितने ही विद्यार्थी सभेशय्यर के यहां से विद्यार्जन करके

गये थे, लेकिन शिक्षा पूरी होने के बाद फिर कभी लौटकर वहां नहीं आये थे। किट्टु उन सब जैसा नहीं था। धर्माम्बाल को उससे विशेष स्नेह हो गया था। अतः उन्होंने निश्चय किया कि ऐसी कोई व्यवस्था करनी चाहिए जिससे इस घर से किट्टु का नाता न टूटे, वरन् घनिष्ठता पैदा हो जाय। वह अपने दिल की बात दिल ही में छिपाकर बोलीं, "हां-हां, अब तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा पूरी हो गई है और तुम बड़े हो गये हो, अपने पैरों पर खड़े होकर बहुत बड़े आदमी बन जाओगे और अपना घर भी बसा लोगे। परन्तु मेरे पास क्या रह गया है! मैंने तो अपने पति तक को खो दिया है। तुम भी इस घर से अलग रहोगे। अब मुझसे तुम्हें क्या मतलब!" यह कहते-कहते उसकी आंखों में आंसू छलछला आये।

"मांजी, मैं अपना अलग घर बसाने या अकेले रहने नहीं जा रहा हूं। मैं तंजाऊर इसीलिए चला आया कि आपकी आंखों के सामने आप ही के पास रहूं। अब आपको छोड़कर मेरा कौन सहारा है?"

किट्टु के मुंह से बातें सुनकर धर्माम्बाल् प्रसन्न हो गईं। वाह, किट्टु कैसा सच्चा और साफ दिल था। उन्होंने रसोई की तरफ मुंह कर आवाज दी, "नीला, ओ नीला।"

किट्टु चकित हो उठा। उसके गांव चले जाने के बाद धर्माम्बाल् की छोटी बहन और उनकी पुत्री तिरुवैयारु आई थीं। किट्टु को विस्मित होकर सोचते देखकर धर्माम्बाल् ने उन दोनों के आगमन के बारे में उसे बताया।

इतने में नीला आई और द्वार की ओट में खड़ी हो गई।

धर्माम्बाल् ने कहा, "नीला, किट्टु को नमस्कार करो।"

किट्टु को इस बात से बड़ा संकोच हो रहा था कि उसको बड़ा आदमी बनाकर धर्माम्बाल् नीला से नमस्कार करा रही है! नीला के नमस्कार को स्वीकार करते हुए जब उसने उसकी ओर देखा तो शरम से गड़ गया। नीला ने भी उसकी ओर देखा और तेजी से अन्दर भाग गई। उसकी उम्र कोई बारह साल की रही होगी। रंग जरा सांवला था। लेकिन मुख की कांति और बुद्धि की तीक्ष्णता ने इसे एक विशेष प्रकार का सौन्दर्य प्रदान किया था।

'यह तुम्हारी वहू है, किट्टु।" धर्माम्बाल् ने कहा।

जब सभेशय्यर जीवित थे, तब उसने उनके सामने यह बात उठाई थी कि किट्टु से उसकी बहन की लड़की की शादी करा दी जाय तो अच्छा हो। सभेशय्यर ने कोई आपत्ति नहीं की थी। केवल इतना ही कहा कि अभी किट्टु बालक है। जल्दी क्या है? उसी समय धर्माम्बाल् के मन में यह विचार जड़ पकड़ गया था। उनकी यह धारणा थी कि किट्टु गुणवान तथा बुद्धिमान युवक है, उसका भविष्य उज्ज्वल है, उससे नीला की शादी हो जाय तो दोनों का जीवन सुखमय रहेगा।

किट्टु को मौन बैठे देखकर वह बोली, "अरे, चुप क्यों हो गया? तेरी शादी करने की इच्छा नहीं है क्या?"

उस जमाने में गार्हस्थ्य-जीवन जीवन-धर्म माना जाता था। स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध भोग-लिप्सा की नींव पर नहीं खड़ा था। भोग-लिप्सा तो बहुत गौण बात थी। गृहस्थी एक धर्म मानी जाती थी, इसलिए वह इच्छा और अनिच्छा से परे थी। उस समय लोगों ने अपने अनुभव-जन्य ज्ञान से जाना था कि गृहस्थी में मन हिल-मिल जाय तो प्रत्येक दम्पति आनन्द से जीवन बिता सकता है। किट्टु के जीवन के मार्ग में इच्छा-अनिच्छाओं ने कोई रोड़ा नहीं अटकाया था। इसलिए इतनी जल्दी उसे विवाह की आवश्यकता नहीं जान पड़ी। यही कारण था कि वह विवाह की सुनकर भौचक्का-सा रह गया।

"अरे, चुप क्यों हो? लड़की थोड़ी सांवली है, इसीकी चिन्ता सता रही है क्या?" विनोद के स्वर में उन्होंने प्रश्न किया।

किट्टु ने सरलता से कहा, "मांजी, इसमें मुझे कहने को क्या रह गया है? मेरे लिए तो आप ही माता-पिता, गुरुदेव—सबकुछ हैं। संसार में आपही एकमात्र मेरी हितैषी हैं। आप जो भी कहेंगी, मेरे भले के लिए ही कहेंगी। अतः आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। आपसे बढ़कर मेरे सुख-दुख का ख्याल करनेवाला और कौन है?" यह कहकर उसने धर्माम्बाल् के आगे सिर झुका दिया।

उसकी इन बातों ने धर्माम्बाल् के दयालु हृदय को और भी दयार्द्र कर दिया। बोलीं, "मेरी कामना है कि तुम अपने उत्तम गुणों और बुद्धि-चातुर्य

के अनुसार फूलो-फलो और संसार में बहुत बड़े आदमी बनो। नीला के लिए तुमसे अच्छा कोई नहीं है। मैंने इसी विचार से कहा कि यदि उसे तुम्हारे हाथों सौंप दिया जाय तो वह सुख-चैन से रह सकेगी। उससे तुम ब्याह कर लो तो मेरे दिल को शांति मिले।"

"मैं तो यही चाहता हूं कि आप मुझे अपना आशीर्वाद दें।"

"तुम दोनों चिरजीवी होओ और तुम्हारा जीवन सभी तरह से फूले-फले।" धर्माम्बाल् ने पुलकित होकर आशीर्वाद दिया।

इसके बाद 'शुभस्य शीघ्रम्' की कहावत चरितार्थ हुई। किट्टु-नीलांबाल का विवाह यथाविधि सम्पन्न हुआ। आनन्दोत्सव के उस अवसर पर सभी के दिल में यह बात थी कि इस शुभ विवाह को देखने के लिए सभेशय्यर आज होते तो कितना अच्छा होता।

१३

तंजाऊर में कन्दस्वामी भागवतर नाम के एक व्यक्ति थे। वह भगवान सुब्रह्मण्य के बड़े भक्त थे। प्रतिवर्ष बड़ी धूम-धाम से स्कंध-षष्ठी उत्सव मनाते थे। उसमें भाग लेने के लिए दूर-दूर से नामी संगीतज्ञ आते थे। दो चार दिन वे वहां ठहर भी जाते थे। भागवतर अच्छे संगीतज्ञ थे। बड़े-बड़े गायक-शिरोमणि उनका आदर करते थे। चाहे कोई कितना भी बड़ा कलाकार क्यों न हो, वहां आकर संगीत-समारोह में गाने के लिए कभी इन्कार नहीं करता था।

जिस वर्ष किट्टु पोन्नैय्या पिल्लै के आश्रय में तंजाऊर में आकर ठहरा था, उस वर्ष भी उन्होंने हमेशा की तरह स्कंध-षष्ठी-उत्सव का आयोजन किया था। उत्सव के दिनों में सबेरे से ही गान-गोष्ठी आरंभ हो जाती तो रात के दो-दो बजे तक चलती। बारी-बारी से गायक गाते रहते थे। रात को नौ बजे नामी-गरामी गायकों का गाना होता। उनके लिए पार्श्व-संगीत का भी बड़ा अच्छा प्रबन्ध होता था। पूजा, भोजन आदि से निवृत्त होकर रात की शीतल, सुहावनी वेला में लोग संगीत का रसास्वादन करने बैठ जाते। सभी गाना सुनने में इतने तन्मय हो जाते कि उन्हें सर्दी का भी ध्यान न रहता।

उस वर्ष दूसरे दिन के संगीत-समारोह में भाग लेने के लिए एक बड़े नामी संगीतज्ञ आनेवाले थे। शाम तक लोगों को उनके आने की आशा रही। लेकिन शाम को सात बजे उन्होंने एक आदमी से कहला भेजा कि उनके परिवार में कुछ आकस्मिक असुविधाओं के कारण वह नहीं आ सकेंगे। इसलिए किसी दूसरे का प्रबन्ध कर लिया जाय। कन्दस्वामी भागवतर ने

इसकी कुछ भी चिन्ता नहीं की। कितने ही गायक आये हुए थे। उनमें से कोई भी आसानी से उनका स्थान ले सकता था। अतः उन्होंने कोई विशेष प्रबन्ध नहीं करवाया। लेकिन पोन्नैय्या पिल्लै इस सुअवसर से हाथ धोना नहीं चाहते थे। अतः कन्दस्वामी भागवतर से "कहा, आज कृष्णैय्या को ही अवसर दे दें तो कैसा रहे ?"

कन्दस्वामी भागवतर थोड़ी देर के लिए मौन बैठे रहे। पोन्नैय्या पिल्लै को संदेह हुआ कि शायद इनकी इच्छा नहीं है। अतः बोले, "गायक नौसिखिए हों तो भी उन्हें मौका देकर प्रोत्साहित करना ही चाहिए।"

कन्दस्वामी भागवतर रामनवमी के अवसर पर तिरुवैयारु हो आये थे। वहां पर उन्होंने किट्टु का गाना भी सुना था। उन्हें वह पसन्द भी आया था। लेकिन फिर भी बड़े-बड़े पार्श्व-वादकों के मध्य में यह क्या कर सकेगा ? अपने गानों से उन्हें कैसे संभाल सकता है ? और बड़े-बड़े पार्श्व-वादक इस छोटे से बालक का साथ देना कैसे स्वीकार करेंगे ? वे इस बालक के साथ बैठने में अपमान न समझेंगे ? ये सारे प्रश्न उनके मन में आये। उन्होंने पोन्नैय्या पिल्लै से कहा, "पार्श्व-वादक तो दिग्गज हैं, पंडित हैं, न जाने वे इस बात को मानेंगे भी या नहीं ?"

पोन्नैय्या पिल्लै ने कहा, "आपके कहने को वे टाल नहीं सकेंगे। आप जरा कहकर तो देखिए।"

"उन लोगों से भी एक बार पूछ लूं" यह सोचकर कन्दस्वामी भागवतर ने वायलिन-वादक और मृदंग-वादक, दोनों को बुलाकर यह बात कही।

वायलिन-वादक उस वाद्य के बजाने में इतने निष्णात् थे कि जनता उनकी प्रशंसा करते थकती नहीं थी। वे वायलिन का उपयुक्त ढंग से उपयोग करने की क्षमता रखते थे। उस वाद्य के स्वरों का उन्हें इतना परिचय था कि वे कमाल कर दिखाते थे और लोगों को मुग्ध कर देते थे। उन्होंने यह कहकर अनुमति दे दी, "चाहे कोई भी क्यों न हो, योग्यता हो तो उसे सभा में आना चाहिए। आप उसी लड़के से गवाइये, इसमें मुझे तनिक भी आपत्ति नहीं है।"

मृदंग-वादक भी तो अपने समय के प्रमुख वादकों में माने जाते थे।

उन्हें अपनी विद्या पर गर्व था। लोगों का कहना था कि वे बड़े घमंडी हैं। वे बड़ी बेरुखी से पेश आते थे। करुणा-दया का नाम भी वह नहीं जानते थे। मुंह के सामने ऐसी बातें करते थे मानो तमाचे मार रहे हों। कन्दस्वामी भागवतर को उनकी ओर से सन्देह हो रहा था कि न जाने क्या कहेंगे ? उनसे अपना विचार कहकर जब उनकी अनुमति मांगी तो उनकी बात पर मृदंग-वादक ने ऐसा मुंह बनाया, मानो उन्हें बहुत बुरा लगा हो। फिर मुंह सिकुड़ते हुए सवाल किया, "उसे संगीत-सभा में बैठने का सलीका भी है या नहीं ?"

कन्दस्वामी भागवतर को यह उत्तर अच्छा नहीं लगा। उन्होंने आवेश में कहा, "उसे बैठने का ही नहीं, पार्श्व-वादकों से उचित रीति से काम लेने का भी ढंग आता है।"

"अच्छा, तो क्या वह इतना बड़ा गायक है ? ठीक है, देखेंगे। कह दीजिये कि वह मंच पर आये गाने को !" मृदंग-वादक ने हामी भर ली। उसके बाद संगीत-सभा का आयोजन आरम्भ हो गया।

इतने में श्रोताओं में यह खबर फैल गई कि सभेशय्यर का कोई शिष्य बड़े-बड़े पार्श्व-संगीतज्ञों के साथ गानेवाला है। कुछ लोगों के कानों में इस बात की भनक बहुत पहले पड़ चुकी थी कि सभेशय्यर का एक बालक शिष्य बड़ी छोटी उम्र में ही असाधारण विद्वत्ता प्राप्त कर चुका है। लोगों को जब इस बात का पता चला कि वही शिष्य आज बड़े-बड़े पार्श्व-वादकों के साथ गानेवाला है, तो उसे सुनने की उन्हें उत्कण्ठा हुई और वे वहां इकट्ठे हो गये।

किट्टु मंच के बीच आकर बैठ गया। उसने भगवान् और गुरु दोनों का ध्यान किया। पार्श्व-वादकों के साथ ऐसा विनयपूर्ण आचरण किया कि जिससे उनकी श्रद्धा और आदर-भावना और बढ़ गई। लेकिन मृदंग-वादक का उसके प्रति कुछ कटु और अवहेलना भरा व्यवहार था। उन्होंने उसकी ओर ऐसे देखा, मानो वह कह रहे हों कि यह तो कल का छोकरा है। इसकी आज ऐसी गत बनाऊंगा कि यह दुबारा मंच पर आने का साहस ही न करे। लेकिन वायलिन-वादक का विचार दूसरा ही था। "विद्या और कला पर आयु का कोई प्रतिबंध नहीं होता है।" उनका यह मत था और

आचरण भी इसके अनुरूप था—आदरपूर्ण और भेद-भाव-रहित।

मृदंग-वादक का रूखा व्यवहार इतना स्पष्ट था कि एकत्र सभी लोगों का ध्यान उस ओर हो गया। "भगवान मेरा भला करेगा, वह मुझे नहीं छोड़ेगा।"—किट्टु ने भगवान के भरोसे, भगवान का ध्यान कर 'वातापि गणपतिम्' का स्तव-गान आरम्भ किया।

भीड़ शान्त हो गई। किट्टु के कण्ठ से मधुर रागिनी गूंज उठी। रात के उस शीतल सन्नाटे में किट्टु के गान की माधुरी ऐसी प्रवाहित हो उठी, मानो अमृत की धारा बह रही हो। "यह मानव-गायन है, अथवा गन्धर्व-गान?" किट्टु के कण्ठ से फूटनेवाले संगीत को सुनकर लोग आश्चर्य-चकित हो दांतों तले उंगली दबाने लगे। पद, राग-अलाप स्वर-प्रस्तार—इन सबमें अपनी कला-निपुणता दर्शाता हुआ किट्टु गाता जा रहा था। वायलिन-वादक गान में ऐसे तल्लीन हो गये कि उन्हें अपनी सुध-बुध ही नहीं रही। वह "वाह बेटा, वाह! शाबाश!" कहकर दाद भी देते जा रहे थे और किट्टु के गान के अनुरूप अपना वाद्ययन्त्र भी बजाते जा रहे थे।

आनंद से पोन्नैय्या पिल्लै की आँखों से आंसू बहने लगे और कन्दस्वामी भागवतर तो ऐसे डूब गये कि उन्हें अपनी स्थिति का भान ही न रहा।

मृदंग-वादक ने जब समां बंधते देखा तो जान लिया कि गायक की कितनी योग्यता है? उनके दिल में यह विचार उठा कि छोटे होने पर भी इस लड़के ने कुछ साधना अवश्य की है। साधारण गवैया समझकर जिसके प्रति उन्होंने बड़ी लापरवाही बरती थी, उसमें असाधारण प्रशंसनीय प्रतिभा पाकर वे मन-ही-मन ईर्ष्या से जल उठे। उस ईर्ष्या ने उनकी बुद्धि को पलट दिया। उन्होंने सोचा कि अगर इस लड़के को अभी न रोका गया तो यह बहुत बढ़-चढ़कर गायेगा और मेरा सिर नीचा कर देगा।

उस समय किट्टु एक पूजन का सरगम गा रहा था। सरगम के लिए उसने जो काल-प्रमाण लिया था, वह कुछ नाज़ुक और बड़ा कठिन था। मृदंग-वादक ने देखा कि लड़के की परीक्षा लेने का यही अच्छा अवसर है। किट्टु की ओर देखकर बोले, "बेटा, इसे त्रिकाल कर दो तो कैसा रहे?" यानी उन्होंने कहा कि वह जिस काल में स्वरावली गा रहा था, उसके ऊपर और नीचे के दोनों कालों में वह स्वर-लहरी पैदा करे।

वायलिन-वादकों ने कन्दस्वामी भागवतर की ओर देखा। मृदंग-वादक के मन की बात दोनों की समझ में आ गई। "इस काम में इस बालक को सफलता मिल भी सकती है या नहीं, दोनों को एकसाथ यह अंदेशा हुआ और यही कारण था कि दोनों ने एक-दूसरे को अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा। लेकिन किट्टु ज़रा भी विचलित नहीं हुआ। चेहरे पर चिन्ता का तनिक भी भाव लाये बिना बोला, "अच्छा, ऐसा ही करता हूं। जैसा आप कहें, वैसा गाना मेरा परम भाग्य है।"

इतना कहकर उसने स्वरावली का ऐसा संधान किया कि ऊपर और नीचे—दोनों कालों में लय मिलने लगी और रागच्छाया भी परिपूर्ण रूप से प्रकट होती रही। उसका स्वर-संधान समाप्त होते ही वायलिन-वादक ने आनन्द-विभोर होकर उसके दोनों हाथ पकड़ लिये। उनके उल्लास की कोई सीमा न रही। श्रोताओं के हृदय में भी उत्साह की बाढ़ उमड़ आई। लेकिन एक मृदंग-वादक ही ऐसे थे, जिनके चेहरे पर उत्साह की रेखा नाममात्र को भी नहीं उभरी, बल्कि अप्रसन्नता के चिह्न ऊपर आ गये।

तभी किट्टु के दिल में एक विचार उठा। "जब इन्होंने मेरी परीक्षा ली है तो मैं भी इनकी परीक्षा क्यों न लूं?" यह सोचकर उसने टेक गाते समय काल बदला, अनुलोम-प्रतिलोम किया, लेकिन संचार-गति में काल-प्रमाण नहीं दर्शाया। इस प्रकार स्वर-लहरी पैदा करने के बाद मृदंग-वादक से कहा, "अब आप बजाइये तो!"

किट्टु उस समय हाथों से ताल नहीं दे रहा था, बल्कि मन-ही-मन हिसाब लगाकर गुनगुना रहा था। अचानक उसके मुंह से यह बात सुनकर मृदंग-वादक थोड़ी देर के लिए अकचका गये। फिर उन्होंने आग्नेय नेत्रों से किट्टु की ओर देखा और किसी तरह संभालकर मृदंग बजाना शुरू किया। एक गत बजाकर उसे दुहराया तो ताल चूक गई। मृदंग-वादक को जहां पहुंचना चाहिए था, वहां पहुंच नहीं पाए। किट्टु के मुंह से अनायास 'शाबाश' निकला तो मृदंग-वादक पर मानो घड़ों पानी पड़ गया। वायलिन-वादक और कन्दस्वामी भागवतर दिल-ही-दिल में आनन्द अनुभव करने लगे, लेकिन मन के भावों को उन्होंने प्रकट नहीं किया।

संगीत समाप्त होने को हुआ तो कन्दस्वामी भागवतर उठे और मंच की ओर ऐसे बढ़े, मानो मोह के वशीभूत हों। उनके मन में यह विचार जमकर बैठ गया था कि यह कोई साधारण गवैया नहीं है, संगीत-संसार का यशस्वी गायक-शिरोमणि है। वे मंच पर चढ़कर बोले, "अबतक आप लोगों ने जिस संगीत का रसास्वादन किया, उसकी प्रशंसा में कुछ कहूं तो वह निरी औपचारिकता ही होगी। संगीत तो भगवान का प्रसाद है। मैं तो यही कहूंगा कि भगवान की परम कृपा से ही यह विद्या इस लड़के के हाथ आई है। मेरे पास धन होता तो इसे सोने से मढ़ देता, लेकिन इतने उत्तम संगीत पर रुपये वार देने मात्र से क्या कर्तव्य समाप्त हो जायगा ? नहीं, कभी नहीं। इस संसार में मेरे लिए एक अत्यन्त प्रिय वस्तु है। उसे मैं सबसे बढ़कर मानता हूं। इतने दिनों से सोच रहा था कि उसे किसे दूं ? आज मुझे उसको पाने के लिए सुपात्र का पता लगा। वह चीज है एक तानपूरा। उत्तर के एक संगीतज्ञ ने मुझे वह दिया था। वे एक महान संगीतज्ञ थे। संगीत उनका प्राण था और वे जिये भी संगीत के लिए थे। वह जब गाने लग जाते थे तो सारा जन-समूह मंत्र-मुग्ध होकर सुना करता था। वह बहुत ही उत्तम गाते थे। एक बार उनका गाना सुनकर मैं इतना खो गया कि मुझे अपनी देह का भी ध्यान न रहा। मैंने उनसे कहा, "आप महान् हैं, बड़े संगीतज्ञ हैं। संसार-भर में आपका गाना अनुपम है। मुझे लगता है कि आपके हृदय के अन्दर से साक्षात् सरस्वती देवी ही गा रही हैं।"

"यह कथन सुनकर वे हंसते हुए बोले, "बेटा, मेरी अब अधिक प्रशंसा न करो। हमारे पास ऐसी कौनसी चीज है, जिसे हम अपना कह सकें ? यह विद्या भी तो हमारी अपनी नहीं है। मेरी प्रशंसा में जान-बूझकर या अनजाने तुमने जो कुछ भी कहा, सच पूछो तो वही सत्य है। असल में मैंने नहीं गाया। साक्षात् सरस्वती देवी ही मेरे हृदय में स्थित होकर गा रही हैं।"

"उनकी वे बातें सुनने पर मैं उनके पैरों पर गिर पड़ा और साष्टांग दंडवत् करके उठा। वे कुछ समय तक मेरे साथ रहे और जब विदा लेकर चलने लगे तो उन्होंने मुझे यह तानपूरा दिया। तब से यह तानपूरा उनकी यादगार के रूप में मेरे पास रक्खा है। मैं इस बात का जिक्र इसलिए कर

रहा हूं कि मनुष्य को विद्याविनय-संपन्न होना चाहिए। जो विद्या विनय की सीख न दे, वह वृथा है। आप लोग जानते हैं कि हम जिस कुमार कार्तिकेय की वन्दना करते हैं, उन्होंने ब्रह्मा के घमंड को किस प्रकार चूर किया था। अतः मैं भगवान से प्रार्थना करता हूं कि यह बालक विद्या और विनय-संपन्न होकर उत्तरोत्तर वृद्धि करे, ख्याति प्राप्त करे, त्यागराज की संगीत परंपरा आगे बढ़ावे और सभेशय्यर को अमिट कीर्ति प्रदान करे।" इतना कहकर उन्होंने वह तानपूरा अपने आशीर्वाद सहित किट्टु के हाथों में थमा दिया।

अहंकार, विद्या और विनय के संबन्ध में भागवतर ने जो कुछ कहा, वह उसके लिए था, या मृदंगवादक के लिए, इस बात की तह में वह नहीं गया। वह स्वभाव से ही संयमी था। फिर भी कन्दस्वामी भागवतर की बातों का उसके दिल में ऐसा असर हुआ कि वह और भी सावधान हो गया और उसने निश्चय कर लिया कि विजय के मद को दिल में भूलकर भी स्थान नहीं देना चाहिए। भागवतर को प्रणाम कर उसने वह तानपूरा हाथ में लिया। उनकी आंखों की चमक यह बता रही थी कि उसके हृदय में विनय बहुत बड़ी मात्रा में विद्यमान है।

१४

किट्टु का यश बड़ी तेजी से सारे देश में फैलने लगा। कोई उसके सुरीले कंठ की प्रशंसा करता तो कोई उसके आत्म-संयम की। किसीने उसके स्पष्ट उच्चारण की दाद दी, तो किसीने उसके स्वच्छ लय-ज्ञान का यशोगान किया। वास्तव में इन सभी गुणों ने मिलकर किट्टु के संगीत में चार चांद लगा दिये थे। लोग उसे संगीत-संसार का एक जाज्वल्यमान नक्षत्र मानने लगे थे। इतना ही नहीं, उनको यह विश्वास भी हो गया था कि किट्टु के रूप में संगीत का उद्धार करने के लिए कोई देव-पुरुष इस धरती पर आया है। देश के कोने-कोने से उसको निमंत्रण मिलने लगे। बड़े-बड़े राजा महाराजाओं ने उसे अपना दरबारी गायक बनाना चाहा। बड़े-बड़े मठाधीशों ने ऊंचा आसन देकर उसके संगीत को गौरवान्वित करना चाहा। यश और सम्पदा दोनों ने किट्टु को अपनाया। बाढ़ आई नदी के समान उसकी कीर्ति उमड़ने लगी। लेकिन इस बाढ़ में किट्टु ने अपने आपको बह जाने नहीं दिया। अपने आत्म-संयम और लगन के साथ कला की साधना करता रहा।

एक बार एक बड़े धनी-मानी व्यक्ति के घर विवाहोत्सव के अवसर पर किट्टु गाने के लिए गया था। वे सज्जन अच्छे खासे सम्पन्न जमींदार थे, साथ ही बड़े रोबीले व्यक्तियों में से थे। उन्होने विवाहोत्सव में हाथ खोल कर खर्च किया था। उन्होंने नृत्य और संगीत का भी अच्छा प्रबन्ध किया था। किट्टु का नाम उस समय के उत्तम गायकों में लिया जाता था, इसलिए उसकी माँग बहुत अधिक थी। जिस शादी में उसके संगीत का आयोजन नहीं होता था, वह शादी फीकी ही रहती थी। कोई भी धनवान

व्यक्ति इस प्रतिष्ठा से वंचित नहीं होना चाहता था। सभी खास-खास लोग इतने प्रतिष्ठित गायक को अपने यहां बुलाकर नेकनामी लेना चाहते थे। इसीलिए किट्टु को भी उन्होंने अपने यहां शादी में उसकी कला का प्रदर्शन देखने के लिए बुला भेजा, वैसे उनकी संगीत में कोई विशेष अभिरुचि नहीं थी।

इसके अतिरिक्त उन महाशय में दूसरों पर अपना रौब गांठने की प्रवृत्ति कुछ हद से ज्यादा थी। कुछ उन पर धन का नशा भी चढ़ा हुआ था। नौकर-चाकरों से उनका व्यवहार बहुत अच्छा नहीं था। बात-बात पर उन्हें डांटते रहते थे। बड़े ही चिड़चिड़े स्वभाव के थे। गुस्सा तो उनकी नाक पर रहता था।

संगीत-सभा के लिए शाम का छः बजे का समय नियत था। संगीत-सभा के बाद में भोज होना था और उसके बाद नव-विवाहित दम्पत्ति का जलूस निकलने का कार्यक्रम था। उस अवसर पर हजारों रुपयों की आतिशबाजी छोड़ने की योजना बनी थी। अतः सेठसाहब जल्दी-से-जल्दी जलूस निकालने के लिए व्याकुल थे। वे अपनी आतिशबाजी से उस छोटे से गांव के लोगों पर अपनी धन-सम्पदा का प्रभाव डालना चाहते थे। इसलिए संगीत-सभा की ओर उनका उतना झुकाव नहीं था। वह अपनी रुचि के अनुसार ही संगीत के बारे में अन्य लोगों की रुचि का गलत अनुमान लगाए हुए थे। अतः उन्होंने संगीत-सभा के प्रति अधिक श्रद्धा नहीं दिखाई।

लेकिन सभी लोग उनकी तरह नहीं थे। पास-पड़ोस के गांवों और कस्बों से संगीत-प्रिय जनता किट्टु का गायन सुनने के लिए आकर इकट्ठी हो गई थी। शाम को होनेवाले समारोह को देखने के लिए दोपहर ही से लोगों का तांता लग गया था। जैसे-जैसे नियत समय पास आता जा रहा था, लोगों में उत्साह भी बढ़ रहा था लोग बड़ी आतुरता से किट्टु की राह देख रहे थे। लेकिन सबसे अधिक उतावले मेजबान लोग थे, जिनके यहां संगीत-सभा का आयोजन था। उनकी उतावली का कारण यह था कि यदि यह सभा ठीक समय पर आरम्भ हो गई तो अन्य कार्यक्रम भी नियत समय पर सम्पन्न हो सकेंगे। इसी बात की चिन्ता उन्हें परेशान कर रही

थी। धीरे-धीरे पांच बजे, सवा पांच बजे, फिर साढ़े पांच, फिर छः, लेकिन गवैये महाशय का पता ही न था। यहां तक कि साढ़े छः बजने पर भी जब किट्टु नहीं आया तब श्रोताओं का धैर्य छूट गया। उन श्रोताओं से अधिक परेशान धनिक महाशय हो रहे थे। उनका चेहरा तमतमा उठा और वे आगबबूला हो गये। उन्होंने किट्टु को बुला लाने के लिए एक आदमी भेजा। लेकिन उसे किट्टु नहीं मिला। पता नहीं, वह अचानक कहां चला गया। धनिक महाशय को गायक पर बड़ा क्रोध आया। "एक गवैये की इतनी हिम्मत! यहां इतने लोग उसका गाना सुनने के लिए बैठे हैं और वह न जाने कहां चला गया है! क्या यह इस गायक की योग्यता है?" यह कह-कर वे गायक को भला-बुरा कहने लगे। इतने में किसीने आकर खबर दी कि किट्टु नदी पर सन्ध्या-वन्दन कर रहा है। धनिक ने फौरन एक आदमी को भेजा और कहा, "बाकी सन्ध्या-वन्दन कल भी किया जा सकता है। उसे तुरन्त बुलाकर ले आओ।"

किट्टु को यह सब मालूम नहीं था। वह बड़ी शान्ति से यथा-विधि सन्ध्या-वन्दन कर रहा था। सभेशय्यर के आदेशानुसार वह अपने नित्य-कर्मों को नियमपूर्वक किया करता था। चाहे कुछ भी हो जाय, वह अपने नियमों के पालन में कोई कमी नहीं आने देता था।

उसका जप-तप अभी समाप्त नहीं हो पाया था कि उन धनिक महा-शय का भेजा हुआ आदमी आया और बोला, "मालिक आपको जल्दी बुला रहे हैं। कहते हैं कि देर होगई है।"

किट्टु कुछ नहीं बोला, लेकिन हाथ के इशारे से उसे थोड़ी देर ठहरने के लिए कहा। उस आदमी ने सोचा अगर इनको अपने साथ न ले गया तो मालिक मुझसे नाराज होंगे, अतः वह वहीं पर जप पूरा होने तक बैठ गया।

जप पूरा होते ही किट्टु उस आदमी के साथ चल दिया। चलते-चलते उसने मुस्कराते हुए उस आदमी ने कहा, "क्यों भैया, जब रुपये देनेवाले मालिक को थोड़ी देर हो जाने पर इतना गुस्सा आता है, तो उस मालिक को, जिसने तन-धन-प्राण दिये हैं, अगर दातव्य न देकर उसके प्रति हम लापरवाही वरतें तो तुम्हीं कहो, उसे कितना गुस्सा आयेगा?"

सेठ साहब के उस नौकर में किट्टु की इन बातों का ठीक से समझने की शक्ति कहां थी। वह तो किट्टु को जल्दी-से-जल्दी अपने मालिक के पास पहुंचा देना चाहता था।

घंटों से प्रतीक्षा में बैठे लोग धैर्य खो रहे थे। भीड़ में से किसीने कहा, "अभी तक गायक महोदय क्यों नहीं आए हैं?" किसी ने उत्तर दिया, "शायद अचानक उनकी तबियत बिगड़ गई है।" इस प्रकार से जितने मुंह उतनी बातें हो रही थीं। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति इस देरी का कारण जानने के लिए उत्सुक था।

सेठजी आपे से बाहर हो रहे थे। ऐसा लगता था मानो क्रोध का भूत उनपर सवार हो गया हो। दो जिला अधिकारी भी किट्टु का संगीत सुनने के लिए आए थे। क्रोध के मारे सेठजी गवैये की छाती चीरने की बात सोचने लगे। वे किट्टु के आगमन की राह लाल-पीली आंखों से देख रहे थे।

किट्टु द्वार पर अभी पहुंचा ही था कि उन्होंने अपना सारा गुस्सा उसपर उतार दिया। क्रोध के मारे उनका मुंह लाल हो गया। एक ही सपाटे में वह किट्टु के सामने खड़े हो गए और उस पर आग उगलने लगे। "अजी महाशय, आप यहां गाने आये हैं या हमको खाने? कितने ही धनी-मानी व्यक्ति और हाकिम-हुक्काम यहां घंटों से बैठे हैं और आप हैं कि बेकार की पूजा में लगे हैं! आपने आखिर क्या समझ रखा है? जब मैंने आपको मुंह मांगे रुपये दिये हैं, तब आपको मेरे बताये हुए समय पर आना चाहिए था। अगर आपकी जगह दूसरा कोई होता तो मैं उसकी खबर लिये बिना न रहता।"

वह आवेश में न जाने क्या-क्या कहे जा रहे थे। यह सब सुनकर किट्टु का सिर चकरा गया। "मैं यह सपना तो नहीं देख रहा हूं। यह आदमी मुझसे ऐसी ओछी बातें कह रहा है। अपने धन के घमंड में चूर मुझ जैसे व्यक्ति से इस प्रकार का व्यवहार कर रहा है। मेरे सामने पागल की तरह अनाप-शनाप बके जा रहा है। मैं तो भगवान् के प्रति अपना कर्तव्य निबाह करके लौटा हूं और यह उसपर ऐसी बुरी बातें कह रहा है।" किट्टु का सारा शरीर थर-थर कांप उठा। उसके सारे अंग फड़क

उठे। वह पसीने से नहीं गया। किसी तरह से उसने अपने को संभाला। बड़ी कठिनाई से उसके मुंह से शब्द फूटे, "अजी महाशय, आप बड़े धूर्त हैं। आपको आदमी तक की पहचान नहीं, भले-बुरे का विवेक नहीं। आपने पैसे देकर मुझे क्रीत-दास नहीं बना लिया है। मैं अभी आपका रुपया लौटाये देता हूं। अब आपके घर नहीं गा सकूंगा। आप जैसों के सामने गाना महापाप है!" इतना कहकर वह वहां से तीर की तरह चल पड़ा।

सेठजी को इस प्रकार के उत्तर की आशा नहीं थी। उनकी समझ में नहीं आया कि अब क्या किया जाय। आजतक उन्होंने किसीसे ऐसे शब्द नहीं सुने थे। आज यह पहला अवसर था। किट्टु की इन तीखी बातों से उनका दिल दहल गया। उन्होंने सोचा कि पता नहीं, आमंत्रित सज्जन अब क्या कहेंगे। इन लोगों को किस प्रकार समझाया और संभाला जाय? हाकिमों को क्या उत्तर दें?

ऐसे नाजुक समय पर एक व्यक्ति काम आये। वे थे कन्दस्वामी भागवतर। वह भी शादी में आये हुए थे। जब उन्हें वास्तविक स्थिति का पता चला तो वे तुरन्त किट्टु के पास गये।

किट्टु चुपचाप बैठा था। ऐसा लगता था, मानो वह इस संसार से विरक्त हो गया हो। कन्दस्वामी भागवतर उसके पास आकर उसका हाथ अपने हाथ में लेने लगे तभी वह बिना मुड़े ही बोला, "मुझे तंग न कीजिये।"

"मैं हूं, किट्टु।" कन्दस्वामी भागवतर ने कहा।

उनकी आवाज पहचानकर किट्टु सादर उठ खड़ा हुआ।

"बेटा, तुम अभी अबोध बालक हो, और तुम्हें संसार का अनुभव नहीं है। इसलिए जल्दी क्रोध आ जाता है। हमें समाज में रहना है, उससे सम्बन्ध बनाये रखना पड़ता है। संसार में सबकी प्रकृति एक-सी नहीं होती है और न एक-दूसरे से मेल खाती है। लेकिन सबके साथ हमें निभाना चाहिए। तुम दुःखी मत होओ। चलो मेरे साथ, चलकर गाओ। यह दुनिया तो तरह-तरह के लोगों का जमघट है।" कन्दस्वामी भागवतर ने उसे समझाया।

"उस दोपाये के लिए मैं नहीं गाऊंगा। कृपा करके मुझे और अधिक

मजबूर न कीजिये।" किट्टु ने कहा।

"बेटा, अभी तुम्हारी उम्र अधिक नहीं हुई है। तुम भावावेश में सोच रहे हो। माना वह धनी व्यक्ति है, उसके पास पैसा है, लेकिन तुम जो गाना गाते हो, वह तो उसका नहीं है। सच पूछो तो तुम उसके लिए थोड़े ही गाते हो। इतनी दूर-दूर से लोग तुम्हारा गाना सुनने के लिए आये हुए हैं। तुम उनके लिए गाओगे।" कन्दस्वामी भागवतर ने किट्टु को फिर समझाया।

किट्टु कुछ क्षण सोच में पड़ा रहा।

उसे मौन देखकर कन्दस्वामी भागवतर ने अपनी बात आगे बढ़ाई।

"वहां किसी कोने में मैली-कुचैली धोती पहने कोई परम रसिक भी बैठा होगा, जो तुम्हारा गाना सुनकर आत्मानन्द में लीन होकर दिल से तुम्हें आशीर्वाद देगा। तुम्हारी सीखी हुई विद्या तो तभी सफल होगी। इस गुस्से के वश में होकर उस आशीर्वाद से हाथ धो न लेना। एक व्यक्ति से नाराज होकर हजारों व्यक्तियों को तुम्हें निराश नहीं करना चाहिए!"

किट्टु ने पूछा, "तो क्या आप यह कहते हैं कि मुझे उनके घर पर गाना ही चाहिए?"

"बेशक!" कन्दस्वामी ने जोर देकर कहा।

"तो चलिये।" कहकर किट्टु उनके साथ हो लिया और शादीवाले घर पर पहुंच गया।

उस दिन संगीत-सभा खूब जमी। श्रोता लोग 'वाह-वाह' कहकर झूम उठे। लोगों का अपार उत्साह और किट्टु का अद्वितीय गान देख-सुनकर सेठजी आनन्द-सागर में डूब-से गये।

यह बात ठीक थी कि वह जरा गुस्सैल प्रकृति के थे, लेकिन उनमें दूसरा कोई दोष नहीं था। छल-कपट उन्हें नहीं आता था। संगीत-सभा के खतम होने पर वे किट्टु से मिले और बोले, "मुझे क्षमा कर दीजिये। मैं जरा क्रोधी जीव हूं। यह मेरी कमजोरी है कि गुस्से में ऊल-जलूल बक जाता हूं। मुझे जाननेवाले मेरे इस स्वभाव से परिचित हैं।"

"और मैं भी आज परिचित हो गया! आज आपने मुझे एक अच्छा पाठ पढ़ाया है!" यह कहकर किट्टु कन्दस्वामी भागवतर के साथ अपने घर

लौट आया।

चलते-चलते उसने कन्दस्वामी भागवतर से कहा, "मैं झूठ नहीं कहता। सचमुच उस पुण्यात्मा ने मुझे आज एक अच्छा सबक सिखाया है। धन का यह गुण है कि वह मनुष्य के स्वभाव पर भी हावी हो जाता है और उसे अपना गुलाम बना लेता है। मैंने पैसों के लिए हाथ बढ़ाया, तो उससे ऐसी-ऐसी बातें सुनने को मिलीं, जो कानों के सुनने योग्य नहीं थीं। मुझे यह दंड मिलना ही चाहिए था। लेकिन इन लोगों को यह मालूम होना चाहिए कि संगीत कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो मोल ली जा सके, बल्कि संगीत ऐसी वस्तु है जो भक्ति से सुनी जाती है। आज से मैंने निश्चय कर लिया है कि उसी स्थान पर गाऊंगा, जहां पर संगीत का आदर हो। अब कभी भी पैसे के लिए नहीं गाऊंगा।"

कन्दस्वामी भागवतर आश्चर्य-चकित होकर बोले, "यह तो ठीक है। मैं मानता हूं कि तुम्हारा यह विचार अति उत्तम है। लेकिन दुनियादारी नाम की भी तो एक चीज है, उसका भी ध्यान रखना चाहिए। लक्ष्य और जीवन दोनों का समन्वय करके ही जीवन-यापन करना मेरे विचार में ठीक है।"

"हो सकता है कि वह ठीक हो, परन्तु आज से यह मेरा दृढ़ निश्चय है। अब इसमें हेर-फेर की कोई गुंजाइश नहीं। रियासतों और मठालयों से जो सम्मान-पूर्ण सहायता प्राप्त होती है, वही मेरे लिए पर्याप्त है। इससे ही सब कुछ संभाल लूंगा, निबाह लूंगा।" किट्टु ने दृढ़ शब्दों में कहा।

कन्दस्वामी भागवतर ने कोई उत्तर नहीं दिया। उन्हें मालूम था कि वह जो कहता है, उसे अवश्य करके दिखाता है। अतः वह उसके भावी जीवन की चिन्ता में चुपचाप उसके साथ चले जा रहे थे।

१५

किट्टु का यश काल के साथ बढ़ रहा था। काल बड़ा मायावी होता है। काल एक ऐसी शक्ति है, जिसकी उपस्थिति का बोध दूसरों को नहीं होता, पर जिसका प्रवेश संसार की सभी चीज़ों में है और अपना काम इस प्रकार से करता है कि क्रम भी न टूटे और प्राकृतिक नियम भी चलते रहें। वास्तव में देखा जाय तो काल नाम की शक्ति के अंदर ही सारा प्रपंच समाया हुआ है। यदि काल की कली आज विकसित होती है तो वह भी काल के प्रताप से। आज का फूल यदि कल फलता है तो वह भी काल के ही प्रताप से। संहार-शक्ति के रूप में रहनेवाले कालदेव के एक ही स्वरूप से समस्त संसार भली-भांति परिचित है। लेकिन लोगों को इस बात का ठीक-ठीक पता नहीं हो पाता कि यह प्रपंच भी उसी काल-देव का रचा हुआ है। सृष्टि, स्थिति और संहार—ये तीनों ही काम अकेला काल-देव करता है। ये तीनों काम उस त्रिकालज्ञ के अनन्त खेल हैं।

वह कालदेव जो इस खेल को अनादि काल से खेल रहा है, उसमें न किसी प्रकार आलस है और न लापरवाही। ऐसा कर्तव्य में रत रहनेवाला कर्मवीर ढूंढ़े भी नहीं मिलता। मनुष्य को सोता देखकर सूरज कभी अपना निकलना स्थगित करता है? गायक का ताल-क्रम टूटते देखकर अपना क्रम छोड़कर कहीं रुक जाता है? काल एक अनूठी शक्ति है, जो जीवन-प्रवाह को नदी के प्रवाह की तरह आगे बढ़ाती रहती है और इस प्रकार जीवन में निरंतर विकास और उन्नति होती रहती है।

लेकिन उस काल को भी, जो आदि और अंत से रहित है और एक पल भी रुके बिना निरंतर अग्रसर होता रहता है, मनुष्य अपने काबू में करने

की चेष्टा करता है। इसे ताल कहते हैं। कलाकार असीम काल और श्रोतेन्द्रिय से परे नाद—दोनों को अपने नियंत्रण में करके उनके संयोग से कुछ पैदा करने का प्रयास करता है, इसे संगीत कहते हैं। काल-नाद-मय ब्रह्म जिस खेल को खेलता है, उसीसे यह प्रपंच बना है। अतः काल नाम की एक महान शक्ति ही ब्रह्म-स्वरूप में गोचर होती है, जो जीवन, प्रपंच, संगीत आदि, सभी में सम्मिश्रित है।

सभी को परिवर्तित करने की अनुपम शक्ति रखनेवाले काल ने नीलांबाल् के जीवन में भी परिवर्तन ला दिया। वह कुमारी से युवती हो गई। नीलांबाल्, जो अबतक एक अबोध बालिका थी, अविकसित कली थी, अब नवविकसित पुष्प-वल्लरी बनकर लहलहाने लगी। इसी प्रकार किट्टु भी जो अबतक किशोर था, युवा पुरुष होकर उस लता को आश्रय देने के लिए तत्पर वृक्ष की तरह खड़ा हो गया।

नीलांबाल् के सयानी हो जाने से धर्माम्बाल् उसे किट्टु के हाथ में सौंपने का प्रयत्न करने लगीं। गौना करने के लिए उन्होंने एक शुभ दिन दिखवाया और यथाशक्ति गृहस्थी के सामान देकर नीला को किट्टु के घर पहुंचा दिया।

अबतक किट्टु का एकमात्र लक्ष्य विद्यार्जन था। अतः उसका मन किसी दूसरी चीज़ की ओर आकृष्ट ही नहीं हुआ था। जब वह संगीत सागर में डूबा रहता और नाद-लहरियों के साथ अठखेलियां करता रहता था। तब दूसरे विचार कहां से उठ सकते थे। लेकिन काल जब शरीर में परिवर्तन लाता है, तब चित्र-वृत्ति में भी परिवर्तन आ ही जाता है। बालक किट्टु के किशोरावस्था पार कर यौवन में पदार्पण करते ही कालदेव ने उसकी दृष्टि में न जाने कौन-सा मायामय अंजन लगा दिया। उस दिन उसने जिस नीलांबाल को देखा था अब वह उसके पहले की देखी हुई नीलांबाल् न रही थी, वह तो उसके दिल में घर कर उस पर शासन जमानेवाली नीलांबाल् हो गई थी।

पहले कभी-कभी किट्टु के मन में एक टीस-सी उठा करती थी। वह दिल में कहा करता था—"मुझे इतनी सारी विद्या प्राप्त करके मिला क्या? भगवान की कृपा से यश-लाभ किया तो भी क्या हुआ, जब कि मेरे

सुख-दुःख में भाग लेनेवाला कोई जीव ही नहीं है ? आखिर मैं अनाथ-का-अनाथ ही बना रहा !" उसके दिल में अभी यह बात ही नहीं आई थी कि जो नीला उसकी जीवन-संगिनी बनी है, वही उसके सुख-दुःख की भी साथिन है।

लेकिन जिस दिन कालदेव ने नीला को उसके सामने लाकर खड़ा किया, उसका वह भ्रम टूट गया। उसे लगा, मानो कालदेव ने यह कहा हो कि तुम अनाथ कहां हो, तुम्हारे हृदय-सिंहासन पर विराजने और राज करने के लिए तो देखो नीला आई हुई है !"

चाहे कोई इस बात की चिन्ता करे या न करे कि वह भी किसी दूसरे के हृदय में रहता है, परन्तु वह अपने दिल में संजोकर रखने के लिए किसी चीज़ की खोज अवश्य करता है। वह चीज़ नर के लिए नारी, भक्त के लिए भगवान और वैज्ञानिक के लिए शाश्वत सत्य होती है। लेकिन कब और कैसे मिलती है, यह कोई नहीं जानता। किट्टु ने जब जवानी की उमंगों से भरी नीला का प्रथम दर्शन प्रेम-सने नेत्रों से किया, तो उसे ऐसा लगा मानो उसका हृदय कह रहा हो 'जानती हो, कितने दिनों से तुम्हारी राह पर आंखें बिछाये बैठा हूं।' इतना ही नहीं, उसके और नीला के बीच जो समय का व्यवधान आ पड़ा था, वह उसे चुभता हुआ-सा लगा।

वियोग के इन दिनों का अर्थ कितने ही युगों से भी लिया जा सकता है, क्योंकि कालदेव की सृष्टि में इस बात का ठीक जोड़-तोड़ नहीं हो पाता कि कोई मनुष्य कितनी बार जन्म लेता है, कितनी बार शादी-ब्याह करता है और कितनी बार मरता है। जीवन के सारे सुख-दुःखों को झेल कर ही जीव मरता है, फिर पैदा होता है। अतः किट्टु के दिल में बिछोह की जो भावना उठी, वह संभव है कि उसके जन्म-जन्मांतरों की विरह-वेदना हो। मनुष्य, जिसकी स्मरण-शक्ति कमजोर है और ज्ञान नगण्य है, जन्म-जन्मांतरों से परे के सत्य को कैसे समझ सकता है ? लेकिन कालदेव, जो अपनी इच्छा से सबकी सृष्टि कर अपनी केलि-क्रीड़ा कर रहा है, उसको भली-भांति जानता और समझता है। कालदेव को तो इस बात का भी पता है कि मनुष्य अपने नित्य के जीवन में जिन-जिन अनुभवों से गुजरता है, वे सब उन अनुभवों की ही साक्षी-भूत मुद्रायें है, जो काल और समय से परे हैं, जिनका काल-निर्णय मनुष्य आसानी से नहीं कर सकता।

१६

लेकिन नीला के साथ जीवन-नैया चलाने लगने के बाद भी किट्टु ने जीवन को न तो सुख-स्वप्न के रूप में देखा और न कल्पना-लोक के रूप में ही जाना। विवाह एक ऐसा इन्द्रजाल है, जो मनुष्य को स्वप्नलोक का प्राणी बना देता है और जीवन के गहनतम वातावरण को बदलकर हल्का कर देता है। पर यह विद्या आसानी से हर किसी के हाथ नहीं लगती। अधिकांश व्यक्ति इस अद्भुत विद्या के बारे में जान भी नहीं पाते हैं। जीवन के विभिन्न अनुभवों ने किट्टु को इस इन्द्रजाल-विद्या को सिखाना शुरू किया। जीवन में जिसके साथ उसका अविच्छिन्न सम्बन्ध हुआ था, उस नीला का स्वभाव बिलकुल दूसरे ही ढंग का था। अपने और अपनी पत्नी के रूप में आई हुई नीला के बीच विभिन्नता की कितनी बड़ी खाई है, इस बात को दिन-पर-दिन, नये-नये रूप में, किट्टु अनुभव करने लगा।

किट्टु गरीबी में पैदा हुआ था और गरीबी में ही पला था। उसके जीवन में अपना कहने के लिए कुछ भी न था। किसी भी प्रकार की सुख-सुविधा उसे देखने को नहीं मिली थी। दारिद्रय के अनेक रूपों को उसने देखा था और भोगा था। अहंकार के पंजे से अपने को बचाकर वह चला था। स्वभाव से भी वह बड़ा सुशील और संयमी था। उसने ऐसा दिल पाया था, जिसमें स्वार्थ-परता की गंध ही नहीं आई थी।

नीला भी एक साधारण नारी थी, जिसके दिल में आशा-अभिलाषाओं की, इच्छा-कामनाओं की, तरंगें उथल-पुथल मचा रही थीं। वह भी गरीबी ही में पली थी। दारिद्रय प्रदत्त अनुभवों ने उसके मन में इस एक अभिलाषा का बीज बो दिया था कि धन-धान्य प्राप्त करना चाहिए और सुख-

समृद्धि से रहना चाहिए। उसके मन में यह इच्छा घर कर गई थी कि लौकिक जीवन में ही सभी सुखों का भोग कर लेना चाहिए। ये सब इसी जीवन में प्राप्त हो सकते हैं।

किट्टु का मन भरने के लिए यदि नाद-विद्या थी तो नीला के दिल में जीवन को सुखमय बनाने के स्वप्न भरे थे। नाद-योग तो परमार्थ का साधन होता है। किट्टु नाद-साधना में लगा था, अतः उसके मन में एक प्रकार की वैराग्य-भावना की नींव पड़ चुकी थी। नीला को लौकिक माया ने बांध रक्खा था। उसके दिल में एक ऐसी ग्रंथि पड़ गई थी, जो उसे सांसारिक सुख-भोग रूपी मोहक स्वप्न दिखा-दिखाकर बांधे हुई थी। दोनों के ही मन की ये विपरीत भावनायें मौका पाकर किसी-न-किसी रूप में सिर उठा कर और उपयुक्त वातावरण के जल से सींचकर शाखा-प्रशाखाओं में बढ़ने और फैलने लगीं।

सबसे पहले एक छोटी-सी बात से दोनों में मनोमालिन्य हो गया। नीला का ममेरा भाई उनके घर आया था। नई-नई गृहस्थी अभी-अभी शुरू हुई थी। नीला अपने नैहर से आये हुए अतिथि की खातिरदारी में कोई कसर रखना नहीं चाहती थी। वह उसे बढ़िया दावत देना चाहती थी। उसने खीर, बड़े आदि अनेकों रुचिकर व्यंजन बनाये। जिस समय ममेरा भाई नहाने के लिए पिछवाड़े के स्नानागार में गया, नीला को याद आया कि खाना परोसने के लिए केले के पत्ते नहीं हैं। किट्टु और नीला फूल-पीपल के पत्ते सीकर उसपर खाना खाया करते थे। उनके बाग में फूल-पीपल का एक बड़ा पेड़ था। किट्टु रोज उससे पत्ते तोड़ लाता था और सीकर पत्तल बना देता था। उन्हीं का उस घर में उपयोग होता था। लेकिन उस दिन नीला ने सोचा कि केले के पत्ते के बिना भोजन का सारा मजा जाता रहेगा। अतः उसने किट्टु को जो घर के अन्दर बैठा था, इशारे से बुलाया। किट्टु उठकर उसके निकट गया।

नीला ने कहा, "घर में पत्ते नहीं हैं।"

"लो, अभी पत्तलें सीए देता हूं!" कहकर किट्टु फूल-पीपल के पत्ते तोड़ लाने के लिए बढ़ा।

"नहीं, आज ये पत्ते नहीं चाहिए। केले के पत्ते खरीद लाइए!" नीला

ने टोका।

सिर पर हाथ फेरते हुए किट्टु ने थोड़ी देर सोचा, फिर पूछा, "क्यों सिए हुए पत्ते काफी नहीं हैं क्या ?"

"यह भी कोई बात है। भाई पहली बार आये हैं। मैंने बड़ी मेहनत से खीर, बड़े आदि चीजें बनाई हैं। अब केले के पत्ते की कंजूसी क्यों करें ? उसका न होना क्या उन्हें नहीं खटकेगा ?"

"पर हम तो सिए पत्ते पर ही खाया करते हैं।"

"वह बात अलग है। हम खा सकते हैं। मेहमान रोज थोड़े ही आते हैं। हम उनका आदर-सत्कार उचित ढंग से करें, तो वे भी हमारा मान करेंगे।"

"तो यह कहो कि हमसे बढ़कर अधिक मान केले के पत्ते का है।"

"हमारा भी मान है। लेकिन दूसरों की खातिर करने का यह ढंग नहीं है। क्या आनेवाले मेहमान अपने यहां जाकर यह नहीं कहेंगे कि एक बार खाना परोसने को उनके घर में केले का पत्ता भी नहीं था ?"

"जो ऐसा कहें उनका आदर-सत्कार ही नहीं करना चाहिए।"

"मैं इस झगड़े में नहीं पड़ना चाहती। बस, इतना कहती हूं कि मुझे केले का पत्ता चाहिए।" कहकर नीला रसोई में चली गई।

किट्टु का यह तनिक भी विचार न था कि आगन्तुक अतिथि की अवहेलना करनी चाहिए, लेकिन उसे बाह्याडम्बर और ऊपरी दिखावे पसन्द नहीं थे। उनके द्वारा वह मिथ्या गौरव लूटना नहीं चाहता था। वह कदली पत्र देकर गौरव मोल लेने को तैयार नहीं था। अतः वह केले के पत्ते खरीदने नहीं गया। ममेरा भाई स्नानादि से छुट्टी पाकर आया। किट्टु भी नहाने के लिए चला गया। जब स्नान और, अनुष्ठानादि पूरा कर वह लौटा ता भोजन का समय हो गया था। वह नीला को पत्तल बिछाने का आदेश देकर, ममेरे भाई को बुलाने के लिए बाहर बैठक में गया। जब लौटकर भोजनालय में आया तो उसने देखा कि पत्तल बिछी हैं और खाना परोस यदि गया है। उसे यह देखकर आश्चर्य के साथ अत्यन्त क्रोध भी हो आया कि नीला ने केले के दो सुन्दर पत्ते बिछाये थे और चमाचम चमकते दो लोटों में पानी भी भर रक्खा था। इसके साथ ही उसके मुख पर एक कुटिल

हास्य खेल रहा था, मानो वह अपनी विजय का ढिंढोरा पीट रहा हो।

किट्टु के चेहरे पर असन्तोष की रेखा खिंच गई। वह मौन होकर खाने बैठ गया। उसकी बगल में मेहमान भी बैठ गये। दोनों चुपचाप खा रहे थे। किट्टु को आज का खाना रुचा नहीं। वह बिना कुछ रुचि दिखाये बेमन खा रहा था। उसे इस बात पर बड़ा क्रोध आ रहा था कि नीला ने जो हठ किया था, उसे पूरा करके मानी। लेकिन अतिथि के सामने वह अपना गुस्सा उसपर नहीं उतार सका। किसी तरह खाना खतम हुआ और दोनों उठे। फिर भी, उसका दिल इस बात के लिए व्याकुल हो रहा था कि नीला से जितनी जल्दी हो सके मिले और उसे आड़े हाथों ले।

मेहमान पान खाने के बाद द्वार पर चबूतरे पर जा बैठे और आराम करने लगे। अच्छा मौका जानकर किट्टु अन्दर आया। उसने क्रोध भरे, परन्तु धीमे स्वर में, नीला का नाम लेकर पुकारा, "नीला, जरा यहां तो आओ।" उसे इस बात का ध्यान था कि कहीं उसकी आवाज मेहमान के कानों में न पड़ जाय। इसलिए उसने उसे धीमे स्वर से बुलाया था, परन्तु शब्दों के उच्चारण में क्रोध स्पष्ट रूप से प्रकट हो रहा था। नीला भी पूरी तैयारी करके बाहर आई।

किट्टु ने पूछा, "केले के पत्ते कहां से मिले?"

"सामनेवाले घर से उधार लाई थी।"

"उधार क्यों लाई?"

"इसलिए कि आप खरीदने नहीं गये।"

"अच्छा! मैंने तुम्हें कितनी बार मना किया है कि घर में कोई चीज हो या न हो, तुम्हें किसी भी हालत में उधार नहीं लाना चाहिए। फिर तुम क्यों लाई?"

"रोज के कामों में तो यह नियम चल सकता है। लेकिन विशेष अवसरों में इन नियमों का पालन करने लगें तो काम कैसे चलेगा? सामाजिक रीति-रिवाजों की ओर भी तो देखना पड़ता है। चार लोग जैसा करते हैं, वैसा करना ही पड़ता है।"

"तो क्या तुम यह बताना चाहती हो कि कुटुम्ब के गौरव की रक्षा का भार मुझसे अधिक तुम पर है?"

"आपसे थोड़े ही कोई कहेगा। लोग तो मुझसे कहेंगे और उलहना भी देंगे।" नीला ने बड़ी हिम्मत से उत्तर दिया।

किट्टु हैरान हो गया। आखिर अब क्या किया जाय! उसे इस बात का पता चल गया था कि उसके सामने खड़ी स्त्री कोई साधारण स्त्री नहीं है, दिल की बड़ी पक्की है। जरा विचार करने पर उसे यह भी लगा कि उसकी बातों में कुछ तथ्य अवश्य है। लेकिन साथ ही उसके दिल में यह भी विचार आया कि उसके जिद्दी स्वभाव और हठधर्मी को बढ़ावा नहीं देना चाहिए।

अतः वह क्रोधपूर्ण स्वर में बोला, "देखो, नीला, आगे से तुम्हें ऐसे काम बिना मुझसे पूछे नहीं करने चाहिए। अगर करोगी तो..."

कहते-कहते वह रुक गया। उसकी समझ में नहीं आया कि ऐसे अपराधों के लिए उसके दण्ड-विधान में कौन-सा दण्ड है। थोड़ी देर बाद डराने-धमकाने के स्वर में बोला, "आगे ऐसा करोगी तो जानती हो, मैं क्या दण्ड दूंगा?" और फिर इसी दण्ड के बारे में सोचता हुआ वह बाहर चला गया।

१७

इस दुनिया में देखा जाय तो मनुष्य की कद्र उसके पास संचित धन के आधार पर ही होती है। जिस प्रकार नक्कारखाने में तूती की आवाज़ को कोई नहीं सुनता, उसी प्रकार गरीब की बात की पूछ भी नहीं होती। जब गरीब की बात की ही पूछ नहीं होती तो उसको भला कौन पूछेगा? समूची दुनिया में एक ही चीज चलती है, जिसका बड़ा आदर होता है, वह है धन। धन के बिना आदमी आदमी नहीं रहता।

जबसे किट्टु ने शपथ ली थी तबसे वह ऐसी जगहों में गाने नहीं जाता था, जहां से चार पैसों की आमदनी की गुंजाइश थी। नाद और धन को जबसे उसने व्यापार या सौदे की चीज नहीं माना, तबसे नाद उसके जीवन में बस गया था। पर धन उसके पास नहीं फटकता था। अन्त में धन और धन से प्राप्त हो सकनेवाली सभी तरह की सुख-सुविधाओं का उसे त्याग ही करना पड़ा। जवानी के सैलाब और गृहस्थी के प्रथम सोपान में पग धरनेवाले किट्टु और उसकी पत्नी को इस निर्णय के फलस्वरूप अनेक प्रकार की कठिन परीक्षाओं में से गुजरना पड़ा। एक नीला थी, जो आशा की लहलहाती लता-सी फैलनेवाली थी और एक किट्टु था, धुन का पक्का और आशाओं को दबाकर उनपर कठोर शासन करनेवाला। पति-पत्नी दोनों विपरीत ध्रुवों पर थे। गरीबी उनकी परीक्षा ले रही थी। उसमें उत्तीर्ण होना, पार पाना, बड़ा ही कठिन कार्य था।

रोज-रोज इनकी परीक्षाओं के कारण दोनों में किसी-न-किसी बात को लेकर झगड़ा हो जाता था। होते-होते यह एक दिनचर्या-सी हो गई। न तो दोनों एक-दूसरे को समझने का प्रयत्न करते थे और न एक-दूसरे की बात

मानकर चलना पसन्द करते थे। अपनी-अपनी बात पर अड़े रहते थे। विपरीत प्रकृति होने के कारण दोनों को मिलकर समझौता करने का मौका ही नहीं मिलता था और अगर मिलता भी था तो समझौते पर आना बड़ा ही मुश्किल होता था।

किट्टु के तानपूरे का तूंबा टूट गया था। नया तूंबा डलवाने और तानपूरे की छोटी-मोटी मरम्मत के लिए उसने दस रुपये जमा कर रक्खे थे। यह बात नीला जानती थी। लेकिन उन दस रुपयों के लिए उसने एक दूसरा ही खर्च निकाल रक्खा था।

उसकी नाक का फूल नीचे गिरने से टूट गया था। उसे ठीक करवाने के लिए रुपये चाहिए थे। इसके अतिरिक्त उसे उसके मायके से भी बुलावा आया था और वहां जाना जरूरी था। उसके लिए भी उसे रुपये की जरूरत थी। वह चाहती कि यदि दोनों काम जल्दी हो जायं तो अच्छा हो, लेकिन उसके सामने समस्या उठ खड़ी हुई कि उन दस रुपयों को पति के तानपूरे के लिए तूंबा खरीदने में लगाया जाय या अपने नाक के फूल को ठीक कराने में खर्च किया जाय !

किट्टु ने उन दस रुपयों को लेकर अपनी अंटी में खोंस लिया। नीला ने यह देखा तो उसके पास बड़ी फुर्ती से आई। किट्टु उसकी ओर मुड़कर खड़ा हुआ और प्रश्नसूचक दृष्टि से देखने लगा।

नीला ने पूछा, "सुनार के पास जाने का कब इरादा है ?"

"सुनार के पास ? किसलिए ?" किट्टु ने विस्मय से पूछा।

"किसलिए ! अब यह भी याद नहीं रहा ! मैं पन्द्रह दिनों से कहती आ रही हूं कि मेरे नाक के फूल को ठीक कराकर नग जड़वाना है।"

"लेकिन उसके लिए ऐसी कौन-सी जल्दी आ पड़ी है ?"

"जल्दी क्यों नहीं है ? मुझे शादी में जाना है। बिना फूल लगायें सूनी नाक लेकर कैसे जाऊंगी ?"

"इस समय पैसे की बड़ी तंगी है। इसलिए नहीं जा सकोगी।"

"रुपया तो आज है, कल नहीं रहेगा, लेकिन इसके लिए हम अपने काम तो नहीं छोड़ सकते। आपने जो दस रुपये बचा रक्खे हैं, वे मेरे खर्च के लिए काफी हैं।"

"पर मैंने तो वे रुपये एक दूसरे ही जरूरी काम के लिए बचाये हैं। वह भी बड़ी मुश्किल से।"

"वह ऐसा कौन-सा जरूरी काम है? जरा मैं भी तो सुनूं!"

"मुझे तानपूरे की खूंटियां बनवानी हैं, खूंटियां बदलनी हैं। इन्हीं कामों के लिए मैंने ये रुपये उधार लिये हैं। अगर इसे जल्दी ठीक न करा लिया तो यह बेकार हो जायगा।"

"मैं तो यहां फूल के बिना सूनी नाक लिये खड़ी हूं। आप उसे ठीक करवाते नहीं! उल्टे तानपूरे का तूंबा लगवाने की सोच रहे हैं। मैं पूछती हूं कि वह कोई बहुत जरूरी काम है क्या?"

"हां, यह जरूरी काम है। जब मैं टूटा तानपूरा देखता हूं तो मुझे ऐसा लगता है कि कलाओं की अधिष्ठात्री सरस्वती देवी स्वयं बीमार होकर रोग-शय्या पर पड़ी है। मैं तो गायक हूं, सरस्वती देवी का उपासक हूं। क्या तुम यह चाहती हो कि इस देवी-स्वरूप वीणा को फेंककर तुम्हारे साज-सिंगार की सामग्री जुटाता फिरूं? यह सब मुझसे नहीं हो सकेगा।"

"हां, आपसे क्यों हो सकेगा! सुहागिन स्त्रियों के मांगलिक आभूषणों में नाक का फूल भी एक है, यह जानते हुए भी आप अपनी पत्नी को सूनी नाक लिये ही रक्खेंगे, फूल खरीदकर नहीं पहनायंगे। लेकिन काठ से बने बाजे की दुरुस्ती दिल लगाकर करायेंगे! जरा चार जनों से पूछिये तो मालूम होगा कि ठीक क्या है।"

"किससे पूछूं और क्यों पूछूं? तुम फूल के लिए मरती हो और मैं तानपूरे पर जीता हूं। मेरे लिए तानपूरा प्राण है और सांस है।"

"बेकार बातें क्यों करते हैं? सुनिये, आपने मेरे लिए ढेर सारे गहने तो बनवाये नहीं हैं। और न नाक, कान या कंठ में हीरे-जड़े आभूषण पहना दिये हैं। जब मेरे भाग्य में सूनी नाक रहना ही बदा है तो उसे कौन मेट सकता है? मैं तो सब्र कर लूंगी। अब आप अपने मन में जो आये, सो कीजिये। आपका हाथ पकड़कर रोकनेवाला कोई नहीं है। इस घर में मुझे जो मान मिला है, नाक में फूल के न होने से उसमें कोई बट्टा नहीं लग जायगा और न मेरी खूबसूरती बदसूरती में बदल जायगी। मैं जो हूं, वही रहूंगी।" यह कहकर अत्यन्त दुःखी मन से नीला वहां से तेज कदमों से चली गई।

किट्टू बड़े धर्म-संकट में पड़ गया। उसे अपना पक्ष अधिक सही लगा, लेकिन नीला को दुःखी होते देखकर उसके दिल में एक ओर दया पैदा हुई तो दूसरी ओर क्रोध चढ़ आया कि वह उसकी बातों में अड़ंगा क्यों लगाती है, उससे व्यर्थ का झगड़ा क्यों मोल लेती है ? "वह क्या कोई बड़ी-बूढ़ी हो गई है ? या उसने उससे अधिक दुनिया देखली है ? उनके दाम्पत्य-जीवन को आरम्भ हुए भी तो अधिक दिन नहीं हुए हैं। फिर वह क्यों उसे ठीक तरह से समझने की कोशिश नहीं करती ? वह उससे ईंट का जवाब पत्थर से देकर क्यों तकरार बढ़ाती है ?" किट्टु यह सोचते-सोचते बड़े असमंजस में पड़ गया। उससे पार पाना उसे बड़ा कठिन-सा लगा।

इधर नीला ने भी सोचा, "मैं भी तो एक जरूरी काम के लिए ही उनसे रुपये मांग रही थी। वे देने से इन्कार क्यों करते हैं ? उन्हें तो अपना ही खर्च अच्छा लगता है। दूसरों की बातों पर वे कान कहां देते हैं ? अगर वे मेरा जरा ख्याल करते और मेरी जरूरतें पूरा करते तो मैं क्यों उनसे रार मोल लेने जाती ? न जाने क्यों हर बात में अड़ियल टट्टू बने फिरते हैं ? मैं क्या कोई उनसे बेकार में हठ ठानती हूं ? जरा-सी उदार बुद्धि से पेश आते तो उनका क्या बिगड़ जाता ?" वह मन-ही-मन इस प्रकार से कुढ़ रही थी।

इसी बीच किट्टु अन्दर आया और उसने यह कहते हुए रुपये बढ़ाये, "यह लो, रुपये। इनसे जो चाहो, कर लेना। मुझसे पूछने की कोई जरूरत नहीं।"

उसकी इन बातों से नीला को ऐसा लगा, मानो उसने उन रुपयों को उसके मुंह पर दे मारा हो और कह रहा हो कि इन तुच्छ रुपयों के लिए तुमने कितना तूफान खड़ा किया था। लो मरो।

बेमन दिये जानेवाले रुपयों को वह लेने के लिए तैयार नहीं थी। बोली, "आप ही को ये रुपये मुबारक हों। तानपूरा जो ठीक करवाना है। मैं तो घर के अन्दर पड़ी रहनेवाली हूं। मैं चाहे जैसी भी रहूं, उससे दूसरों का क्या आता-जाता है ? आप अपने रुपये अपने ही पास रखिये। मुझे इनकी कोई जरूरत नहीं है।"

किट्टु पश्चात्ताप करके, अपनी जरूरत को त्यागकर, जब उसके मन

की पूरी करने जा रहा था, वह इस प्रकार अड़ गई और बड़ी तेज भाषा बोलने लगी तो इससे उसका पौरुष और उग्र रूप धारण कर उठा। एक स्त्री चांटे का जवाब घूंसे से दे इसको एक मर्द कैसे गवारा कर सकता था? वह बोला, "देखो नीला, मैं तुमसे झगड़ा करने नहीं आया हूं। मन में सोच-विचार किया तो लगा कि तुम्हारी बातें ठीक हैं। इसलिए रुपये देने आया, लेकिन तुम बड़े गुमान से बातें कर रही हो और तेज बोल रही हो, यह क्या बात है? मैं न दूं तो भी बुरा, दूं तो भी बुरा! ऐसी बातें मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं। चाहो तो ये रुपये रख लो, नहीं तो जहां चाहो, झोंक दो।" इतना कहकर उसने रुपये उसके सामने पटक दिये। सिक्के चारों ओर बिखरकर फैल गये। रुपये फैंककर किट्टु ने अंगोछा कंधे पर डाला और तीर की तरह घर से बाहर चला गया।

नीला ने नीचे बिखरे पड़े रुपयों को इकट्ठा किया। उसे ऐसा लगा, मानो अपने दिल की टूटी भावनाओं के टुकड़े एकत्र कर रही हो।

१८

एक दिन दोपहर को भोजनादि से छुट्टी पाकर नीला बैठी विश्राम कर रही थी। किट्टु भी मधुर धीमे स्वर में गुनगुनाता न जाने क्या सोच रहा था। उस दिन शाम को कृष्ण मन्दिर में वह गानेवाला था बिना पैसे। अगर कुछ मिलता भी तो नारियल का आधा टुकड़ा मिलता। ऐसे गायन तमिल प्रदेश में 'तेंगाय् मूडिक्कच्चेरी' याने नारियली गायकी के नाम से मशहूर हैं।

यह बात चारों ओर फैल गई थी कि किट्टु रुपयों के लिए नहीं गाता है। इसलिए यह प्रचलन-सा हो गया कि किट्टु को उनके मित्र, रसिक गोष्ठी, देवालयों में उत्सवादि का प्रबंध करनेवाले लोग गाने के लिए बुलाते थे। दक्षिणा मिलने के कारण किट्टु 'नाहीं' नहीं कर पाता था और स्वीकार कर लेता था। हां, जब किट्टु का मन होता, तभी गाने जाता था। इसलिए रसिकवृन्द दुगने उत्साह के साथ उसे गौरव प्रदान किया करते थे। किट्टु को भी इस बात का बड़ा गर्व था कि वह धन के लोभ में नहीं गाता। उसका गायन अमूल्य है। पैसों से उसे खरीदा नहीं जा सकता।

लेकिन नीला बेचारी न तो किट्टु के इन ऊँचे लक्ष्यों को समझ पाई और न उसके कला-लालित्य की महिमा को ही पहचान पाई। दैनिक जीवन से जिन लक्ष्यों का कोई सम्बन्ध नहीं, उनसे क्या लाभ हो सकता है, यह वह न समझ सकी। उस दिन की गायन-गोष्ठी के सम्बन्ध में भी वह यही सोच रही थी।

उसके मन में जो प्रश्न उठा था, वह उस दिन की संगीत-सभा से निकटतम सम्बन्ध रखनेवाला था। वह देखने लगी कि आज शाम की सभा में पहनकर जाने के लिए किट्टु के पास अच्छी धोती और दुपट्टा हैं या नहीं।

किट्टु के पास जरीदार कपड़े अधिक नहीं थे, जिन्हें वह बारी-बारी से पहनकर वह संगीत-सभाओं में जा सकता। उसके पास केवल दो ही जोड़े थे। उनमें से एक, किसी महाराज के द्वारा उसके सम्मान में दी हुई खिलअत थी, जो रेशमी थी। दूसरा जोड़ा वह था, जिसे पहनकर वह जलसों में जाया करता था।

नीला उसीको उठाकर देख रही थी। किट्टु की कई धोतियां पुरानी और जीर्ण-शीर्ण हो गई थीं। किट्टु जरा भी परवा किये बिना उन्हें पहनकर चला जाता था। नीला ने सोचा, "आज तो उन्हें सभा में जाना है। कहीं जल्दी में फटी धोती पहनकर चल पड़े तो क्या होगा? सो उसके उस दुपट्टे को उठाकर देखा, जिसे किट्टु प्रायः पहनकर जाता था। उसका सोचना सही निकला। ठीक बीच में सीधी धारी-सा वह फट गया था। वह उसे किट्टु के पास ले गई। बोली, "यह देखिये, आपका यह दुपट्टा भी फट गया है!"

"फट गया है तो फट जाने दो!" किट्टु ने बड़ी बेरुखी से कहा।

"अब महाराज का दिया हुआ रेशमी दुपट्टा ही बाकी रह गया है। उसे निकाल दूं?" नीला ने पूछा।

"नहीं-नहीं! उसकी कोई जरूरत नहीं है। यह तो अपने ही गांव का जलसा है। उसे रहने दो। और किसी समय उसका उपयोग होगा।"

"फिर और कौन-सा कपड़ा है, जिसे आप पहनकर जायंगे?"

"और कोई साधारण-सा अंगोछा हो तो पहनकर चला जाऊंगा।"

"वाह, बहुत खूब! क्या वह सभा में शोभा देगा? जब सभा में गाने जाते हैं, तब उसके अनुरूप पोशाक में जाना ही अच्छा होता है। साधारण अंगोछा पहनकर आप मंच पर जा बैठेंगे?"

"ठीक है, लेकिन दूसरा कोई दुपट्टा हो, तब न?"

"मैं कुछ कहती हूं तो आपको बड़ा गुस्सा आता है। कितने ही ऐसे गायक हैं, जो धन पर लोटते हैं। और आप...? पहनने तक के कपड़े के लिए तरसते हैं! आखिर क्यों? मैं तो यही कहूंगी कि आप अपने हाथों अपनी यह दशा कर रहे हैं। अगर आप आती लक्ष्मी को नहीं ठुकराते तो आज यह हालत ही क्यों होती?"

"नीला, मेरी बातें तुम्हारी समझ में नहीं आ सकतीं। समझने का प्रयत्न करो तो भी तुम समझ नहीं सकतीं, क्योंकि हम-तुम दोनों में बड़ा अन्तर है, जो बुनियादी है। मैं संगीत को जीविका का साधन नहीं बनाना चाहता। मैं उसे एक प्रकार का योग मानता हूं और जीवन के मार्ग-दर्शक के रूप में उसकी उपासना करता हूं। तुम उसे एक व्यापार की वस्तु के रूप में देखती हो। अगर रुपया कमाना ही जीवन का लक्ष्य है तो संगीत की उपासना करने की कोई जरूरत नहीं है। संसार में धनोपार्जन के कितने ही साधन हैं, कितने ही रास्ते हैं। उनमें जाना ठीक है। बहुत-से लोग चाहें तो धन कमा सकते हैं, पर बहुत कम लोग हैं, जो विद्या कमा सकते हैं। कमाई हुई विद्या का ठीक उपयोग करने का ढंग बिरलों को ही आता है।" किट्टु ने कहा।

पर किट्टु की ये तात्विक बातें नीला की समझ में नहीं आईं। उसने सोचा, "विद्या से जो कुछ पाना चाहें, सहर्ष पायें। उसको तो कोई नहीं रोकता। पर यह कहां कहा गया है कि जीवन के लिए जो आवश्यक चीज़ें चाहिए, उन्हें भी त्याग दो?"

फटे दुपट्टे को उठाकर उसने अन्दर रख दिया और महाराज ने जो रेशमी दुपट्टा दिया था उसे निकालकर बाहर रख दिया।

इसके थोड़ी देर बाद द्वार पर कुछ आहट-सी हुई। एक मुसलमान फकीर हाथ में एक बाजे के साथ अन्दर दाखिल हुआ। उसके पीछे-पीछे आदमियों का एक छोटा-सा समूह भी अन्दर आया। किट्टु ने पूछा, "क्या बात है?"

"उत्तर भारत का यह फकीर सारंगी बहुत अच्छी बजाता है। आपको इसका बाजा अवश्य सुनना चाहिए!" समूह में से किसीने कहा।

"अच्छा, सुनाइये।" कहकर किट्टु बाजा सुनने को तैयार होकर बैठ गया। सारंगीवाले के साथ जो लोग आये थे, वे भी एक ओर चुपचाप बैठ गये। उत्तर भारत के उस फकीर ने किट्टु को बड़े आदर से नमस्कार किया और बाजा बजाना शुरू कर दिया। जैसे ही उसने सारंगी पर कमान चलाई, तार झंकृत हो उठे। कमान के साथ उंगलियां भी बाजे पर खेलने लगीं और मधुर स्वर-लहरियां उठ-उठकर गिरने लगीं। फकीर ने बाजे पर कमाल

कर दिखाया ! सुननेवाले दांतों तले उंगली दबा गये। उंगलियां सारंगी पर इतनी तेज़ी से तैर रही थीं कि यह दिखाई ही नहीं देता था कि वे कहां, कैसे श्रौर कब पड़ रही हैं। सारंगी से भाव श्रौर ज्ञान भरा राग इस प्रकार उठ रहा था, मानो वह मूर्त रूप धारण करके सामने श्रा गया हो। उस फकीर ने एक श्रनूठा ध्रुपद-गीत बजाकर दिखाया।

जबसे उसने सारंगी बजानी शुरू की, तभी से किट्टु श्रांखें बंदकर के मौन होकर उस नादानन्द में लीन हो गया था। उस गरीब फकीर की सारंगी से जो मधुरगीत निकला था, उसमें किट्टु सुध-बुध खो बैठा था। उस वाद्य से उठे नाद, उस कलाकार की श्रलौकिक कल्पना, श्रपार साधना श्रौर श्रनुपम लय-ज्ञान, सबने मिलकर किट्टु को श्रानन्द-सागर में ऐसा डुबो दिया था कि श्रब वह उसमें से निकलना ही नहीं चाहता था। उस नाद-प्रवाह में बहता ही रहना चाहता था। जब फकीर ने बाजा बंद किया तो किट्टु की प्रज्ञा लौटी श्रौर इस संसार का भान हुश्रा। श्रांखें खोलीं तो उसकी श्रांखों से श्रांसू बहने लगे। उसने उस फकीर के मैले-कुचैले हाथों को उठाकर उसने श्रपनी श्रांखों से लगा लिया श्रौर गदगद कंठ से बोला, "यही देवी का मन्दिर है।"

यह फकीर तमिल नहीं जानता था। फिर भी उसने इशारे से बताया, "मुझे एक कुर्ता चाहिए।" किट्टु उठा श्रौर श्रन्दर गया। उस दिन की संगीत-सभा में जाने के लिए नीला ने महाराज का दिया हुश्रा जो दुपट्टा निकाल रक्खा था, उसे ले श्राया श्रौर सारंगीवादक को बड़े प्रेम से श्रोढ़ा दिया।

"महाराज हो तुम ! शत-शत वर्ष जियो श्रौर फूलो-फूलो !" बड़ी श्रात्मीयता से फकीर ने किट्टु को श्राशीर्वाद दिया श्रौर प्रसन्न होकर वहां से विदा हुश्रा।

"वाह, न जाने कहां-कहां ऐसी श्रपूर्व विभूतियां छिपी पड़ी हैं !" किट्टु मन-ही-मन श्राश्चर्य-चकित हो रहा था।

नीला यह सारा दृश्य देख रही थी। उसे उस फकीर का गायन पसंद नहीं श्राया था। उसे इस बात पर बड़ा क्रोध श्रा रहा था कि श्राखिर एक ही दुपट्टा बचा था, उसे भी किट्टु ने उस फकीर को दे डाला ! वह मन-ही-

मन जल-भुनकर राख हो रही थी कि यह कहां की उदारता है! स्वयं पहनने के लिए तो कोई अच्छा कपड़ा नहीं और भिखारी को दान दिया जाता है!

वह उठकर नाद-ब्रह्म में लीन किट्टु के पास गई और उसपर बरस पड़ी, "क्योंजी, यह कौन-सी दयालुता है कि एक जो दुपट्टा बचा था, उसे भी उठाकर एक अनजान भिखारी को दान कर डाला! आपके विचार से यह क्या कोई बड़ी बुद्धिमानी का काम है?"

अलौकिक आनन्द में डूबे किट्टु के कानों में उसकी ये बातें बाण-सी लगीं। "आहा, कितना उत्तम वादन था वह! ऐसी कौन-सी चीज़ है, जो उसपर वारी न जा सके? उसके सम्मान में एक दुपट्टा देना तो कुछ भी नहीं है।" ऐसा विचार कर उसने एक सूखी हँसी हँसते हुए कहा, "वह दुपट्टा किसीने मुझे दिया था और मैंने उसे किसी दूसरे को दे दिया। इससे हमारा कौनसा बड़ा नुकसान हो गया?"

"आप और वह, दोनों एक हैं न!" नीला ने चुटकी ली।

"नहीं-नहीं, वह कलाकार मुझसे कई गुना बड़ा है। उसकी कला सर्वोत्तम है।" किट्टु ने कहा।

"तो महाराज आपको बुलाकर सम्मानित करने के बदले उस भिखारी को बुलाकर सम्मानित कर सकते थे!" नीला ने कहा।

"हां-हां, कर सकते थे। पर वह सौभाग्य महाराज को नहीं मिला। मेरे भाग्य से मुझे मिला।" किट्टु ने कहा।

नीला चुप। उसको सूझा नहीं कि क्या जवाब दे। वह झल्लाकर उस भिखारी पर अपना गुस्सा उतारने लगी, "दरिद्री कहीं का! भिखारी के रूप में आकर दुपट्टा हड़प ले गया! सत्यानाश हो उसका! हाय, जलसे का दुपट्टा ले गया!"

किट्टु उसके आवेश को सहन न कर सका। बोला, "देखो, नीला, उसके लिए कुछ न कहो। जहां जाना चाहिए था, वहां वह दुपट्टा पहुंच गया। इससे मेरे मन को शांति मिली है। मैं कुछ-न-कुछ पहनकर जाऊंगा। तुम उसकी चिन्ता न करो।"

लेकिन नीला को यह बात मान्य न थी कि वह कुछ-का-कुछ पहनकर

जाय। अतः फटे दुपट्टे को निकालकर उसने सिया और ऐसा कर दिया कि फटी जगह और सिलाई मालूम न हो। अपने पति को फटा-पुराना दुपट्टा पहनने को वाध्य करके स्वयं बढ़िया दुपट्टा हड़पकर ले जानेवाले उस भिखारी कलावंत और लौकिक ज्ञान से शून्य अपने पति पर उसे बेहद क्रोध आ रहा था।

१६

सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक मनुष्य के हृदय में न जाने कितने संग्राम होते हैं और नीला और किट्टु के लिए तो सुबह इसलिए होती थी कि दोनों में कोई-न-कोई झगड़ा हो।

एक दिन सबेरे किट्टु हाथ में थैला लेकर बाजार जाने लगा तो उसके मुख पर प्रसन्नता विराज रही थी। नीला ने उसे देखा, पर समझ न पाई कि क्या बात हो सकती है। इतने में किट्टु ने कहा "नीला, जरा बाजार की ओर जा रहा हूं, सामान खरीदने। आज हमारे एक बड़े मेहमान आनेवाले हैं।"

"कौन हैं वह मेहमान!" नीला ने उत्सुकता से पूछा।

"कौन हैं, जानती हो? केशवनल्लूर सुब्बैय्या भागवतर!" किट्टु ने बड़े गर्व से उत्तर दिया।

यह सुनकर नीला को जरा भी विस्मय नहीं हुआ। आगे उसने अधिक उत्सुकता नहीं दिखाई। बोली, "आपको क्या, जिसे चाहें बुला लाते हैं और खाना खिलाते हैं! काम-काज तो मुझे ही करना पड़ता है। बोझ तो मेरे ही सिर पर पड़ता है न!"

"बोझ! अरे, तुमने उन्हें क्या समझ रखा है? वे संगीत-संसार के एक चक्रवर्ती महाराज हैं!"

"हां, आपकी निगाह में तो सभी साधु-संत और रंक-भिखारी चक्रवर्ती ही होते हैं!" नीला ने व्यंग्य में कहा।

"छिः-छिः, बंद करो अपनी जबान को। उनके जैसे महान लोग हम अभागों के घर आयंगे, यह सपने में भी न सोचना। वे तो मेरे मित्र होने के

जाते यहां आ रहे हैं । आखिर तुमने उन्हें समझ क्या रखा है ?" किट्टु ने पूछा ।

"लेकिन इस दरिद्र घर में इन मेहमान के लिए कौन रो रहा था ?" नीला ने अपने दिल का गुबार निकालते हुए कहा ।

"नीला, ऐसी बात क्यों कहती हो ! यह हमारी रामकहानी तो हमेशा की है । वे इसलिए यहां थोड़े ही आ रहे हैं कि उनके लिए शहर में ठहरने की कोई व्यवस्था नहीं हो सकती है । बड़े-बड़े लोग उन्हें अपने घर बुलाकर ठहरा लेंगे । पर वे हमारी खातिर यहां आ रहे हैं। देखना उन्हें अपने घर बुलाने के लिए कितने बड़े-बड़े लोगों का यहां तांता लग जायगा । उनकी हैसियत के अनुरूप ही हमें उनका सम्मान करना चाहिए। खूब बढ़िया भोजन का प्रबन्ध करो ।" यह कहकर किट्टु बाहर चला गया ।

लेकिन नीला ने सोच लिया कि चाहे वे कितने ही बड़े क्यों न हों, इससे हमें क्या ! इसलिए कोई-न-कोई बहाना कर इन्हें टाल देना चाहिए । यह भी एक अच्छा झंझट सिर आया है ।

केशवनल्लूर सुब्बैय्या भागवतर का नाम सब जगह फैला था। वह मैसूर रियासत के प्रधान राज-गायक थे । संगीत के अच्छे साहित्य-सृष्टा भी थे । लक्षण-ग्रन्थों का उन्होंने अच्छा अध्ययन किया था। अनेकानेक प्रमुख संगीतज्ञों को बुलाकर महाराज से परिचय कराते थे और महाराज के हाथों उनका सम्मान भी कराते थे । उन्होंने किट्टु का भी महाराज से परिचय कराया और महाराज के हाथों उसे सम्मानित भी करवाया था । किट्टु की योग्यता और ज्ञान से वह बहुत प्रभावित थे। उससे बड़ा प्रेम भी रखते थे। इसी कारण उन्होंने किट्टु के घर आकर ठहरने का निश्चय किया था ।

किट्टु बाजार से सामान खरीदकर लौटा। नीला सोने के कमरे में लेटी हुई थी । उसे इस तरह लेटे देखकर किट्टु को बड़ा क्रोध आया । झल्लाकर बोला, "क्यों इस तरह लेट जाने से कैसे काम चलेगा ? अभी थोड़ी देर में वे आनेवाले हैं !"

"मेरी तबीयत ठीक नहीं है । मैं क्या करूं ? लगता है, मैं आज रसोई नहीं बना सकती!" नीला ने कहा ।

"तुम्हारी तबीयत को क्या हो गया है ? बहाना कर रही हो। देखूं, आज रसोई कैसे तैयार नहीं होती ?"

इतना कहकर किट्टु घर से चला गया। जाते-जाते उसके मनमें एक विचार आया—"संभव है नीला ने जान-बूझकर हठ ठान रक्खी हो। इसलिए रसोई का काम नहीं रुकना चाहिए। मठ में जो रसोइया है, उसे बुलाकर खाना बनवा लें तो नीला मुंह ताकती रह जायगी।" यह सोचकर वह मठ की ओर चल पड़ा।

किट्टु अभी लौट भी नहीं पाया था कि द्वार पर एक कमानीदार बग्घी आकर खड़ी हो गई। उसमें से एक शिष्य हाथ में चांदी की सुराही लेकर उतरा। दूसरा चांदी का पानदान लिये उतरा, तीसरा संदूक, बिस्तर इत्यादि उतारने लगा। सबके अंत में उतरे भागवतर। वह बहुत ही बढ़िया जरीदार धोती पहने हुए थे। उनके कंधे पर जो दुपट्टा था, उसकी नक्काशी भी देखने योग्य थी। माथे पर एक बड़ा जव्वाजी का सुगंधिपूर्ण तिलक था उनके शिष्य ने आकर बड़ी विनम्रता से पूछा, "कृष्ण भागवतर घर में हैं ?"

नीला ने कहा, "वह बाहर गये हुए हैं। अभी आ जायंगे। अन्दर आकर बैठिये !" और स्वागत के रूप में जल्दी-जल्दी उसने फर्श पर दरी बिछा दी।

सुब्बैय्या भागवतर घर के अन्दर आये। पेटी-बिस्तर के अलावा उनके साथ कुछ टोकरियां भी आई थीं। एक टोकरी में नारियल के आकार के मलगोआ के बड़े आम थे, दूसरी में काबुल के अनार, तीसरी में पान, चौथी में केले। शिष्य ने उन सबको ले जाकर नीला के सामने रक्खा।

भागवतर की आकृति, वेष-भूषा और गंभीरता ने नीला के मन पर यह प्रभाव डाला कि वह एक बड़े आदमी हैं। उसने एक सुराही में पानी ले जाकर रक्खा। पान-सुपारी की थाली संजोकर रक्खी। एक पंखा उठाकर रक्खा। यद्यपि उसने मुंह खोलकर उनसे बातें नहीं कीं, फिर भी उनके स्वागत-सत्कार और उपचार में कोई कसर नहीं रक्खी। फिर रसोईघर में जाकर तन-मन से भोजन की तैयारी में लग गई।

किटट निराश होकर घर लौटा, क्योंकि मठ का रसोइया किसी शादी

में काम करने के लिए जानेवाला था। वह पहले ही वचन-बद्ध हो चुका था। अतः नहीं आ सका। निराशा से मन-ही-मन कुढ़ता वह आ रहा था। उसने सोचा, "अगर नीला आज रसोई नहीं बनाती तो उससे कसकर बदला लूंगा।"

घर में आकर देखा तो एकदम चहल-पहल हो रही थी। भागवतर आ गये थे। उनके शिष्य इधर-उधर आ-जा रहे थे। किट्टु ने घर के अन्दर कदम रक्खा ही था कि भागवतर ने बड़े तपाक से उसका स्वागत किया, "आओ, कृष्णैय्या ! कहां गये थे !"

आश्चर्य और आनन्द में भरकर किट्टु ने भी उनका स्वागत किया। बोला, "मैं अभी-अभी गया था। आप कब आये ?" कहते-कहते वह उनके पास जा बैठा।

"तुम न रहे तो क्या, तुम्हारी पत्नी ने हमारा बड़ा सत्कार किया है !" भागवतर के मुंह से यह सुनकर किट्टु चौंक पड़ा। उसके दिल में संदेह हुआ कि कहीं भागवतर उसे ताना तो नहीं मार रहे हैं ! कहीं उसकी पत्नी ने उनका अपमान तो नहीं कर दिया ! लेकिन उनके बात करने के ढंग से उसकी आशंका दूर हो गई।

"अच्छी बात है, अब मैं आपके लिए स्नानादि का प्रबंध करूं ?" किट्टु ने कहा।

"अभी कोई जल्दी नहीं है, बैठो।" भागवतर ने जवाब दिया।

लेकिन किट्टु के मन पर यह चिन्ता सवार थी कि नीला भोजन की व्यवस्था कर रही है या नहीं ! अतः "अभी आया !" कहकर वह अन्दर गया।

पर ज्योंही वह रसोई में पहुंचा, आश्चर्य-चकित रह गया। नीला तन्मय होकर काम में जुटी थी और आगन्तुक अतिथियों के लिए बढ़िया-बढ़िया चीजें तैयार कर रही थी। किट्टु को देखते ही बोली, "केले के पत्ते नहीं हैं। खरीद लाइये।"

किट्टु भौचक्का-सा खड़ा रह गया। थोड़ी देर पहले जिस नीला ने कहा था कि मेरी तबीयत ठीक नहीं है, मैं खाना नहीं बनाऊंगी, वही अब बड़ी फुर्ती से रसोई में जुटी थी ! उसे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो

रहा था। बोला, "तुमने तो कहा था कि तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है।"

"हां, जी तो अब भी ठीक नहीं है, लेकिन जब अतिथि आये हैं तो मैं लेटी रहूं, यह क्या अच्छा रहेगा !" नीला ने कहा।

"जब तबीयत ठीक नहीं है तो व्यर्थ की मेहनत क्यों करती हो ? मामूली-सा खाना बना लो। वही काफी होगा।"

"ओह, आप भी कैसी बातें करते हैं ! इतने बड़े आदमी हमारे घर आये हैं ! अगर उनकी हैसियत के हिसाब से हम उनका सत्कार नहीं कर सकते तो भी हमें चाहिए कि अपनी शक्ति-भर उनकी खातिर करें, उन्हें खिलायें-पिलायें।"

"लेकिन यह बताओ कि उनके बड़प्पन का तुम्हें अचानक कैसे पता चला ? जब मैंने कहा था, तब तो तुमने मेरी बात पर ध्यान ही नहीं दिया था। अब तुम्हारे मन में यह विचार कैसे उठा कि उनकी खातिरदारी करनी चाहिए ?"

"वे हमारे साथ जैसा व्यवहार करते हैं, वैसा ही हमें भी उनके साथ करना चाहिए ? वाह, दिल के वह कितने उदार हैं और उनके विचार कितने ऊंचे हैं। भलमनसाइत तो उनमें कूट-कूटकर भरी है। इतने ऊंचे विचार वाला आदमी मैंने पहले नहीं देखा।" इतना कहकर उसने फल की उन टोकरियों की ओर इशारा किया, जिन्हें अतिथि लाये थे। फिर बोली, "ये सब आपकी खातिर लाये हैं। कम-से-कम इसके लिए ही सही, हमें उनका आदर करना चाहिए।"

अब सारी बात किट्टु की समझ में आ गई। बोला, "ओहो ! उनके लाई हुई सौगात की वजह से दावत का यह प्रबन्ध हो रहा है ! वाहरे तुम्हारी बुद्धि ! यह कहो कि उनकी विद्वत्ता और मित्रता का कोई भान नहीं है !"

"मैं वह सब नहीं जानती, पर यह समझ सकती हूं।"

"उनपर सरस्वती की जो कृपा है, उसका तुम सम्मान नहीं करतीं, लक्ष्मी का आदर कर रही हो !"

"ऐसा ही मान लीजिए। हमारे घर के लिए जो चाहिए, वह लक्ष्मी की कृपा है। उसीके लिए ये सारे उपक्रम कर रही हूं।" नीला ने

स्पष्ट शब्दों में अपने दिल की बात कह दी।

किट्टु चुपचाप बैठक की ओर चला गया। यह बात नहीं थी कि आज ही उसने यह समझा हो कि उसके और उसकी पत्नी के बीच गहरी खाई है, जो एक-दूसरे को मिलने ही नहीं देती, लेकिन आज यह बात और भी स्पष्ट हो गई। पर उसे इस बात से बड़ा संतोष हुआ कि वह जैसी भी हो, आगन्तुक का सत्कार करने के लिए तैयार हो गई। वह अपने मन को समझाकर भागवतर से बातें करने लगा।

२०

यह और किसी दूसरे दिन की घटना है। शाम का समय था। नीला घर में बैठी कुछ सोच रही थी। उसकी चिन्ता का विषय था कि रात की रसोई के लिए चावल की व्यवस्था कहां से करे? किट्टु का उस दिन कहीं गाने का कार्यक्रम था। वह वहां चला गया था। आखिर सोच-विचार के बाद नीला पड़ोस के घर से चावल उधार लाने के लिए उठी। पड़ोस की मामी नीला पर विशेष प्रेम रखती थीं और सहानुभूति से पेश आती थीं।

"मामी, मैं फिर उधार लेने आ गई हूं।" नीला ने किसी प्रकार बात प्रारम्भ की। ओह, उधार मांगने पर मनुष्य को कितना छोटा हो जाना पड़ता है और अपने को कैसा बना लेना पड़ता है, यह तो भुक्तभोगी ही जान सकते हैं।

"तुम्हें क्या चाहिए, नीला?" पड़ोसिन ने प्रेम से पूछा।

"चावल चाहिए। रात की रसोई के लिए चावल का एक दाना भी घर में नहीं है और वे मठ के जलसे में गाने को गये हुए हैं।"

"ऐसी गृहस्थी भी कोई गृहस्थी है कि चावल तक की कमी रहे! वाह री! बहुत खूब!" पड़ोसिन ने कहा।

"चावल की कमी नहीं, मामी! रुपये की कमी है।" नीला ने हँसी में टालने का प्रयत्न किया।

"बुरा न मानो, बिटिया! तुम्हारे पति में न तो योग्यता की कमी है, न विद्या की, न गौरव की। लेकिन इस सबसे क्या लाभ? अगर वे चाहते तो बड़े ठाठ से रह सकते थे। मैं तो यही कहूंगी कि तुमको ही उनको ठीक रास्ते पर लाना चाहिए।" पड़ोसिन ने नीला को नसीहत देते हुए कहा।

"मैं क्या करूं, मामी ! उन्हें तो घर की कोई चिन्ता ही नहीं । उन्हें तो अपने काम-से-काम है । जब देखो, गाना-बजाना ! वह अपने संगीत से बाहर आवें, तब न ! संगीत के अतिरिक्त उन्हें किसी और चीज की चिन्ता ही नहीं सताती । उन्हें इस बात का ध्यान ही कहां आता है कि हम जिस स्त्री का हाथ पकड़कर लाये हैं, वह जिन्दा है या मर गई ! घर में आज खाना पकेगा कि नहीं ! ऐसे निर्लिप्त आदमी को मैं कैसे समझाऊं ?" नीला ने कहा ।

"नीला, हो सकता है कि सुदामा की तरह वे अपनी जिम्मेदारी से बचते हों । फिर भी तुम्हें चाहिए कि किसी तरह उनके सिर उनकी जिम्मे-दारी को मढ़ दो । तभी गृहस्थी की नाव ठीक तरह से चल सकती है ।" पड़ोसिन ने अपनी बातों पर जोर दिया ।

उधार चावल लेकर नीला घर लौटी तो मन बड़ा भारी था । काश, उसकी गृहस्थी-रूपी गाड़ी आसानी से लीक पर चलती होती ! ओह, चढ़ती जवानी में गरीबी की खाई में गिरकर कितना दुख भोगना पड़ रहा है उसे ! इतनी सारी विद्या है, ढेरों यश है । यह सबकुछ होने पर भी लाभ क्या है ? एक समय का खाना भी मयस्सर नहीं होता है ! नीला अपने मन में सोचती आ रही थी कि उसका पति, जो कीर्ति की सीढ़ियों पर चढ़ता चला जा रहा है, अब किस तरह सही रास्ते पर आये और उसे अपने साथ लेकर सुख की ओर अग्रसर हो, ठीक उसी समय द्वार पर से आवाज आई, "ओ मां !"

"कौन है ?" नीला ने पूछा ।

फूल खरीदेंगी, मां ?" बेले की माला लिये एक फूलवाली खड़ी थी। नीला के आंसू छलछला आये । खाना पकाने को जब घर में चावल ही नहीं है तो फूलों को भला यहां कौन खरीदेगा ? जैसे ही उसके मन में यह विचार आया कि फूलवाली को "नहीं चाहिए," कहकर विदा कर दिया । फिर भी उसके दिल में यह बात शूल की तरह चुभती रही कि देखो, बेले की एक माला तक खरीदने को हमारे पास पैसा नहीं है !

रसोई के काम से निवृत्त होकर वह अपने पति के आने की राह देखने लगी । किट्टु गाना समाप्त कर घर लौटा तो उसके साथ रसिकों का एक

झुण्ड भी आया। किट्टु के हाथ में मठ से प्राप्त नारियल और पान-सुपारी थे। वही उसके मधुर गान के बदले में मिला अमूल्य पुरस्कार था। एक लड़का गुलाब का हार हाथ में लिये बड़ी विनम्रता से शिष्य की तरह खड़ा था। वह हार किट्टु को गाते समय मठ में पहनाया गया था। आगन्तुक लोग किट्टु के उस दिन के संगीत की बड़ी प्रशंसा कर रहे थे और अपना अनुभव बता रहे थे।

"बारह साल पहले पेरिय वैत्ति का (जो तमिल प्रदेश के प्रमुख कर्नाटक संगीतज्ञों में से एक थे) ऐसा ही गाना मैंने सुना था। उसके बाद आज वैसा ही श्रेष्ठ संगीत सुना।" एक वृद्ध पुरुष ने किट्टु की प्रशंसा में कहा।

"यह तो गन्धर्व-गान है। मनुष्य का गान नहीं है।" दूसरे ने कहा।

"अगर मठ के खम्भों पर कान लगाकर सुनें तो अब भी उनमें स्वर-संगीतियां गूंज रही होंगी।" तीसरे ने अपनी कवि-कल्पना दर्शाई।

"कृष्ण भागवतर ने आज ऐसा गाया है कि अब भविष्य में हमारे कान किसी दूसरे का संगीत सुनना ही नहीं चाहेंगे।" चौथे ने किट्टु को 'भागवतर' की उपाधि से विभूषित कर अपने वाक्चातुर्य को प्रमाणित करने का प्रयत्न किया।

किट्टु ने अपने अमृत-संगीत से उन्हें जो आनन्द प्रदान किया था, उसके लिए सच्चे हृदय से कृतज्ञता प्रकाशन करना ही लोगों का ध्येय था। कृतज्ञता-प्रकाशन की पराकाष्ठा हो गई तो वह चापलूसी-सी लगने लगी। लेकिन चापलूसी के उन शब्दों में सचाई थी। लोगों ने सचमुच गायन का आनन्द लूटा था।

किट्टु का मन हवा में पतंग की तरह ऊंचा उड़ता जा रहा था, क्योंकि वह स्वयं अपने उस दिन के संगीत से संतृप्त हो गया था।

उसने हाथ जोड़कर सबसे विदा ली। फिर घर के अन्दर प्रविष्ट हुआ और सीधा अपनी अर्धांगिनि की ओर बढ़ा, जिसे उसके गौरव और सम्मान में भाग लेने का पूरा अधिकार था। बड़े प्रेम और उत्साह से गुलाब का वह हार उसने नीला के सामने बढ़ाया, जो उसके गर्व में गर्व अनुभव करता उसके हाथ में झूल रहा था। लेकिन नीला ने उसे हाथ बढ़ाकर लिया नहीं। नीला, जो थोड़ी देर पहले इस बात का दुःख का अनुभव कर रही

थी कि फूल खरीदने को हमारे हाथ में पैसे नहीं हैं, अब इस हार को देखकर ऐसे चौंक पड़ी, मानो किसी सांप को देख रही हो। उसके चेहरे पर घृणा के भाव फूट आए।

नीला ने द्वार पर किट्टु और उसके रसिकों को आते देखा था और लोगों के मुंह से 'इन्द्र-चन्द्र' कहकर किट्टु की प्रशंसा में जो शब्द निकले थे, उन्हें भी सुना था। उन लोगों पर उसे बड़ा क्रोध आ रहा था। वह झल्ला उठी। वाह-वाह करनेवाले ये लोग इनकी इतनी प्रशंसा कर देते हैं कि ये आसमान पर चढ़ जाते हैं और उनकी बातों को सच्चा मानकर उनके इशारे पर नाचने लगते हैं! इन सारी प्रशंसाओं के बिना यहां कौन मरा जा रहा है? क्या ये पहाड़-जैसी चापलूसियां एक समय का भी खाना दिलाने की ताकत रखती हैं?

किट्टु ने गर्व से गुलाब का जो हार नीला की ओर बढ़ाया था, उसे हाथ में लिये बिना ही वह विष उगलने लगी, "आप ही को यह हार मुबारक हो! आपको इस बात का बड़ा गुमान हो रहा है कि आप बिना पैसे नारियली-जलसा करके लौटे हैं! मैं तो यही कहूंगी कि गुलाब के इस हार के बदले गले में कोई बरतन लटकाये गली में गीत गाते निकल पड़ो तो कम-से-कम दोनों जून भरपेट खाने को अन्न तो मिल जाय।"

नीला के ये वचन सुनकर किट्टु ठिठककर भौंचक्का-सा रह गया। उसे भ्रम हुआ कि यह सत्य है अथवा सपना! इस मूर्खा को उसके बड़प्पन का पता कहां है कि लोगों ने उसे मनुष्यों में श्रेष्ठ मानकर माला पहनाई है और गौरवान्वित किया है! लोगों को ही नहीं, समूचे संसार को भी आत्म-विभोर कर देने की उसमें क्षमता है। इस मंत्र-शक्ति की खातिर उसे वह हार पहनाया गया था। नीला को यह काम बड़ा या श्रेष्ठ नहीं लगा, यह सोचकर किट्टु मन में कुढ़ने लगा, "मैं अन्तरात्मा की भूख मिटानेवाले मधुर गीतों से लोगों को रिझाकर लौटा हूं और यह मुझसे पेट की भूख मिटानेवाले चावल की मांग कर रही है! इतने लोगों का दिल मुझसे हिल-मिल गया है। पर जिसके दिल को मुझसे मेल खाना चाहिए था, वही नहीं मिल पाया है! हाय री विधि की विडम्बना! क्या इसी अल्प-बुद्धिवाली को मेरी जीवन-संगिनी बनना था! मेरे भाग्य में क्या यही बदा था कि यह मेरे

गले पड़े और मुझे सताए ?"

"घर में चावल का एक दाना भी नहीं है। दूल्हे की तरह गले में हार पहनकर आ जाने मात्र से खाना अपने-आप पत्तल पर नहीं गिर पड़ेगा।" नीला ने व्यंग्यबाण छोड़ते हुए कहा। "घर के बर्तनों में चावल और नमक पहले भरिये, बाद में अपने मित्रों के कानों में अपना मधुर-संगीत भरिये। वहां किसीको किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होगी।"

किट्टु से उसकी ये तीखी बातें नहीं सही गईं। वह तिलमिला उठा। उसके होंठ क्रोध से फड़क उठे। वह तेज होकर बोला, "तुम्हारा जन्म एक संगीतज्ञ की पत्नी बनने के लिए नहीं हुआ है। मोटी अक्ल के विधाता ने भूल से तुम्हें मेरे गले पत्नी के रूप में मढ़ दिया है! तुम किसी किराने की दूकान की घूस होतीं तो चावल, नमक, इमली आदि किसी भी चीज की कमी तुम्हें नहीं रहती। जितना चाहतीं, उतना उड़ातीं।"

इतना कहकर वह बड़ी फुर्ती से द्वार की ओर चला गया और चबूतरे पर अपना अंगोछा बिछाकर लेट गया। लगातार तीन-चार घण्टे गाने से वह बहुत थक गया था और खाने का समय भी टल गया था। उसे बड़ी भूख लग रही थी। लेकिन उसने निश्चय किया कि आज खाने नहीं जाऊंगा, चाहे कोई जितना ही क्यों न बुलाये।

नीला जानती थी कि किट्टु गुस्से से भरकर बाहर जा लेटा है। लेकिन स्वयं जाकर वह उसे मनाना नहीं चाहती थी। ऐसा करने से उसके गौरव में बट्टा लग जाता। अतः वह चुप रही। सोचा कि दिनभर भूखे रहेंगे, तभी आटे-दाल का भाव मालूम होगा। उसे भी बड़ा गुस्सा आ रहा था। वह बिना खाये एक कोने में जाकर लेट गई। बड़ी देर तक दोनों सोये नहीं। सोने का उपक्रम-मात्र करते रहे।

उधार लाकर जो चावल पकाये गये थे, वे चूल्हे पर हांडी में पड़े रहे।

२१

इसके बाद किट्टु के दैनिक जीवन-नाटक में एक दिन एक नया खेल हुआ।

नीला अपने कक्ष में लेटी हुई थी। कन्दस्वामी भागवतर किट्टु से मिलने आये। बाहर से उन्होंने किट्टु को आवाज दी तो नीला जल्दी-जल्दी उठी और उनका स्वागत करती हुई बोली, "आइये मामाजी!" कन्दस्वामी भागवतर कुटुम्ब के अनन्य मित्रों में से थे। अतः नीला उनसे परदा नहीं करती थी, निस्संकोच भाव से उनसे बोलती थी।

"किट्टु घर में नहीं है क्या?" पूछते हुए भागवतर अन्दर आये।

"आज किसी शादीवाले घर में उनका खाना है।" नीला ने उत्तर दिया।

"अच्छा तो मैं चलूं।" कहकर कन्दस्वामी भागवतर जाने को मुड़े।

"बैठिये, उनके आने का समय हो गया है।"

"अभी से लेट क्यों गई हो? काम-धाम पूरा हो गया क्या?" पूछते हुए भागवतर बैठ गये।

"मुझे तो सदा फुरसत ही रहती है!" नीला ने उत्तर दिया।

"खाना बना लिया?" भागवतर ने पूछा।

"बना लिया ही नहीं, खा भी लिया।" नीला ने कहा।

लेकिन वहां खाना पकाये जाने का कोई निशान नहीं दीखा तो भागवतर को आश्चर्य हुआ। पर पूछते भी कैसे? बोले, "अच्छा जरा पंखा तो लाओ!"

नीला ने पंखा लाकर दे दिया।

द्वार पर किसीने नीला का नाम लेकर पुकारा तो नीला बाहर गई। पड़ोस की एक युवती हाथ में कटोरा लिये अन्दर आई और बोली, "नीला, बच्चा बहुत रो रहा है। घर में अभी चावल बना है, रसम नहीं बना पाई हूं। रसम तुमने बनाई हो तो थोड़ी-सी दे दो। भूख के मारे बच्चा खाना ही नहीं बनाने देता!"

नीला बड़े असमंजस में पड़ी। उसने उस दिन खाना बनाया ही कहां था! दूसरों के सामने यह कहना उसे उचित नहीं लगा। सो बोली, "आज उनका किसीके घर भोज है और सवेरे से मेरी तबीयत ठीक नहीं है। इस-लिए मैंने खाना नहीं बनाया। मुझे बड़ा दुःख है कि तुम बच्चे की खातिर कुछ मांगने आईं और मैं दे नहीं सकी।" ये बातें उसने इतने धीमे से कहीं कि कहीं कन्दस्वामी भागवतर के कानों में न पड़ जायं।

लेकिन पड़ोस की युवती को इतने धीमे स्वर में बोलने की भला क्या पड़ी थी? बोली, "कोई बात नहीं! जब तुमने खाना बनाया ही नहीं, तो क्या दोगी।" इतना कहकर वह चली गई। युवती ने उत्तर में जो कुछ कहा था, वह कन्दस्वामी भागवतर के कानों में पड़ गया और उन्होंने सारी स्थिति का स्वयं अनुमान कर लिया।

नीला के लौटने पर उन्होंने पूछा, "क्यों, बिटिया, तुमने खाना नहीं बनाया क्या? मुझे भी सच्ची बात नहीं बताना चाहती?"

"नहीं, मामाजी, आपसे दुराव-छिपाव क्या? उनका बाहर कहीं खाना है। अकेली के लिए क्या बनाऊं? यही विचारकर मैंने खाना नहीं बनाया। कुछ बासी भात बचा था, उसे खाकर लेट रही। बस इतनी-सी ही बात है।"

"बड़ी होशियार हो तुम, बेटी!"

"होशियार कुछ नहीं, मामाजी! अपना पेट काटकर जीना पड़ रहा है। उन्हें तो किसी बात की चिन्ता नहीं है। सारी मुसीबतें मेरे ही सिर पड़ती हैं।" कहते-कहते वह क्रोध और क्षोभ से इतना भर गई कि उसके मुंह से आगे बात ही नहीं निकली।

"बेटी, अपना दिल क्यों दुःखाती हो? सुख-दुख का अनुभव सबको जीवन में होता है। यही दुनिया का दस्तूर है।"

"नहीं, मामाजी, उन्हें इस बात का ध्यान ही नहीं है कि कुटुंब नाम की भी कोई चीज होती है। बड़े विद्वान या गायक हो जाने मात्र से क्या सबकुछ हो जाता है? उन्हें इस बात की जरा भी चिन्ता होती कि गृहस्थी की गाड़ी हमें ही चलानी है तो क्या वे इस तरह विरक्त और विमुक्त रहते या मन में ऐसा विचार रखते कि संगीत को छोड़कर संसार में कोई दूसरी चीज है ही नहीं?"

"ऐसा न कहो, बेटी, अगर किट्टु साधारण मनुष्य होता तो दूसरे लोगों की तरह सांसारिक जीवन में लिप्त रहता। वह तो नाद-योगी है और हमेशा नादोपासना में लगा रहता है। उसे दोष देने से कोई लाभ नहीं।" वे किट्टु के पक्ष में बोले।

"यह क्या बात है, मामाजी, आप भी उन्हींके बचाव में बोल रहे हैं! हमारा यह शरीर रक्त-मांस और अस्थि-चर्म से ही तो बना है। मैं पूछती हूँ, जीवन की आवश्यकताओं से विमुक्त रहकर नादोपासना की क्या दरकार क्या है? भित्ति पर ही तो सुन्दर चित्र बनाये जा सकते हैं!" नीला ने अपना तर्क प्रस्तुत किया।

यह बात नहीं थी कि कन्दस्वामी भागवतर यह न जानते हों कि नीला की बातों में तथ्य है। वह स्वयं कई बार इस प्रयत्न में रहे थे कि किट्टु को लोक-व्यवहार का बोध करा दें, परन्तु वे अपने प्रयत्न में सफल नहीं हो पाये।

उन्होंने कहा, "प्राचीन काल में हमारे बुजुर्गों ने कहा है कि संसार में हमें ऐसा निर्लिप्त जीवन बिताना चाहिए जैसेकि जल में कमल रहता है। किट्टु ऐसा ही जीवन बिताना चाहता है, इसलिए वह संसार से लगाव नहीं पैदा करना चाहता। उसने अपना अलग रास्ता बना लिया है और उसीपर दृढ़ता से बढ़ना चाहता है। उसे मोड़कर हम कैसे इस रास्ते पर ला सकते हैं?"

"मैं क्या जानूं, मामाजी! मैं तो इतना ही जानती हूं कि उनमें क्षमता, योग्यता और विद्या सबकुछ है, पर यही समझ में नहीं आता कि इतना सबकुछ होते हुए भी वह क्यों दुःखी जीवन बिता रहे हैं?" नीला ने पूछा।

"मैंने भी बार-बार उसे समझाया है। पर वह कान देकर सुने, तब न ? उत्तमपालयम् के जमींदार ने बुलावे-पर-बुलावे भेजे। उनके यहां चला जाता तो बड़े सुख-चैन से रह सकता था। पर किट्टु ने साफ इन्कार कर दिया। कहा कि क्या आप मुझे उस मूर्ख घमण्डी के पास भेजना चाहते हैं ? भले ही मैं भूखों मर जाऊंगा, पर उसकी खुशामद नहीं करूंगा।"

"कहने को तो कह दिया। पर वे भूखे कहां रहते हैं ? मरना तो मुझे पड़ता है। यहां कोने में पड़ी सड़ रही हूं।"

"इतना ही नहीं, अगर यह जरा भी जबान हिलाये तो सोने-चांदी के ढेर बरस जायं। पर यह तो सोने-चांदी को पास ही नहीं फटकने देता।"

"ये जबान क्यों हिलाने लगे ? इनके मुंह में ताला पड़ा हुआ है। तभी तो उन्हें मेरे पेट में भी ताला पड़ा लगता है ! आप इन्हें फटकारें, तभी···" नीला बात पूरी भी नहीं कर पाई थी कि किट्टु आ गया।

"क्यों, किट्टु, आज की दावत कैसी रही ?" कन्दस्वामी भागवतर ने पूछा।

"खूब बढ़िया।" किट्टु ने उत्तर दिया।

"तुम दावत का आनंद लूटकर आये हो, पर नीला बेचारी भूखी पड़ी है।" कन्दस्वामी भागवतर ने कहा।

"क्यों, यह भी तो बढ़िया खाना बनाकर खा सकती थी ! यहां कौन रोकता है उसे ?"

"हां, इस घर में मेरा जो मान है, उसके लिए मुझे षटरस ही नहीं, नवरस भोजन बनाकर खाना चाहिए था !" नीला क्षोभ से भरकर बोल पड़ी।

"देखो, किट्टु ! ..." कन्दस्वामी भागवतर ने कुछ कहने की कोशिश की।

किट्टु समझ गया कि नीला झगड़े पर उतारू हो गई है और कन्दस्वामी भागवतर को भी उसने अपनी ओर मिला लिया है। उसने पूछा, "क्यों मामा, यह आपके सामने कुछ मरसिया तो नहीं पढ़ रही थी ?"

"किट्टु, उसके कहने में क्या दोष है ? तुम विवेकशील हो। भले-बुरे का तुम्हें ज्ञान है। ऐसी कोई बात नहीं, जो तुम नहीं जानते हो। जरा सोच-

कर देखो तो मालूम होगा। संन्यासियों तक के लिए हमारे ऋषि-मुनियों ने नियम बनाया है कि किसी घर के द्वार पर जाकर भिक्षा मांगनी चाहिए। न मिलने पर ही भूखा रहना चाहिए। धन-लक्ष्मी स्वयं तुम्हारे पास आने को तैयार हैं, पर तुम्हीं उन्हें अपने पास नहीं आने देते।"

किट्टु ने बड़े गंभीर स्वरमें पूछा, "आप मुझसे क्या कराना चाहते हैं?"

"मैं तो इतना ही कहना चाहता हूं कि धन जब तुम्हें खोजता हुआ आये, तब उसे ठुकराना और घृणा की दृष्टि से देखना नहीं चाहिए!"

"मामा, आपको ऊंट की कहानी मालूम है न? उसने सिर घुमाने के लिए थोड़ी-सी जगह मांगी थी। थोड़ी जगह मिली तो बस, सारा-का-सारा डेरा ही हड़प लिया और डेरे में रहनेवालों को भगा दिया। धन की भी यही स्थिति है। हम अपने मन में उसे थोड़ी-सी जगह दे दें तो भी वह दूसरी सारी चीजों को निकालकर बाहर कर देगा और अपना एकाधिपत्य जमा लेगा। यही वजह है कि मैं अपने दिल में उसे स्थान देने से इन्कार कर रहा हूं। आप बड़े हैं, बुजुर्ग हैं। त्यागब्रह्म के बारे में अच्छी तरह जानते हैं। उन्हींकी परंपरा का मैं हूं। इस महापुरुष का नाम स्मरण करके मैं जीने का प्रयत्न कर रहा हूं। लेकिन आप मुझे लौकिक जीवन में बांध देना चाहते हैं। बताइये, मैं आपकी बात कैसे मान सकता हूं?" किट्टु ने पूछा।

"मैं मानता हूं कि तुम जो कहते हो, ठीक है। त्यागब्रह्म के पहले और बाद में भी, करोड़ों लोग हुए हैं, लेकिन एक त्याग-ब्रह्म ही दुनिया को जीत पाये। उस महापुरुष की तरह जीवन व्यतीत करना क्या सबके लिए संभव है?"

"मेरी बात पर जरा ध्यान दीजिये। मनुष्यों का यह समाज टिड्डी दल की भांति करोड़ों की संख्या में पैदा हुआ है, जिया है और मरा भी है। यह क्रम अब भी जारी है। लेकिन मनुष्य को टिड्डी-जैसे जीवन से अलग करके, उसमें मनुष्यता भरनेवाले कौन थे? संत त्यागराज जैसे महात्मा ही थे न? यद्यपि उनका अनुकरण कर उनके चरण-चिह्नों पर चलना, हो सकता है, कि व्यावहारिक लोक-जीवन में बहुत ही कष्टप्रद हो, या बिल्कुल असंभव भी हो, फिर भी वे लोग ऐसा जीवन-यापन करके मानव-समाज का महत्व बढ़ा सके।" किट्टु ने कहा।

"...लेकिन जनक महाराज ब्रह्मज्ञानी होते हुए भी चक्रवर्ती राजा थे न ? हमारा यह मन ही तो बंधन और मुक्ति का कारण बनता है ! उसे वश में रख लो तो धन-सम्पदा क्या कर सकती है ?"

"मामा, क्या मैं जनक महाराज हूं ? जनक महाराज का मन जिस परिपक्वावस्था को प्राप्त हुआ था, वैसी अवस्था मुझे भी मिली होती तो मैं ऐसे व्यवहारों और वाद-विवादों में ही क्यों पड़ता ? उस दशा को प्राप्त करने के लिए ही मैं अपनी सारी आवश्यकताओं को त्यागकर नादोपासना में लीन रहने का प्रयत्न कर रहा हूं।"

"किट्टु, मैं मानता हूं कि तुम जो कहते हो, वह बिल्कुल सही है। मैं किसीके जीवन में हस्तक्षेप नहीं करता। लेकिन मैं इतना कहना चाहता हूं कि मेरी बात पर तुम्हें भी कान देना चाहिए। भले ही हमारा दृष्टि और हमारा सिर आकाश की ओर रहें, फिर भी हमारे पांव तो भूमि पर ही पड़ते हैं। आत्मा की भूख मिटाने के पहले, पेट की भूख भी मिटानी ही होती है। मैं तो यही कहूंगा कि यदि तुम उत्तम पालम् जमींदार के यहां रहना स्वीकार कर लोगे तो तुम्हारे लक्ष्यों और व्रतों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा और जीवन-यापन भी निर्विघ्न हो सकेगा। अब भी वे सम्मानपूर्वक तुम्हें बुलाने को तैयार हैं।"

"मामा, इस सम्बन्ध में पहले भी मेरी आपकी बातें हो चुकी हैं। मैं मानता हूं, जमींदार साहब रसज्ञ हैं, लेकिन बड़े घमंडी हैं। मेरी प्रकृति से तो आप परिचित हैं। मैं अपनी विद्या के विषय में न तो किसीकी अधीनता स्वीकार करूंगा और न किसीसे दबूंगा। ऐसी स्थिति में हम दोनों की प्रकृति में सामंजस्य कैसे होगा ? एक म्यान में कहीं दो तलवारें समाती हैं ? भक्त हरिदास की कथा तो आप जानते ही होंगे। एक बार तानसेन बादशाह अकबर के दरबार में गा रहा था। उसका गाना इतना अद्भुत था कि अकबर की बांछें खिल गईं और तानसेन की प्रशंसा में कहा, "तानसेन, तुमसे बड़ा गायक दुनिया-भर में कोई नहीं है।" तानसेन ने विनम्र शब्दों में आपत्ति की, "नहीं, एक हैं। वे हैं मेरे गुरु महाराज स्वामी हरिदासजी।" इतना सुनकर अकबर के दिल में स्वामी हरिदास का गाना सुनने की इच्छा पैदा हुई। पर भक्त हरिदास अकबर के यहां क्यों आते ? इसलिए बादशाह अकबर ने

तानसेन के शिष्य का भेष धारण कर लिया और हरिदास का संगीत सुनने की उत्कंठा से वृन्दावन को चले। तानसेन ने गुरु के सामने कोई गीत गाना शुरू किया और जानबूझकर गलत गाया। गुरुदेव ने तानसेन की गलती सुधारने के लिए वही गीत दुहराया और जहां-जहां गलतियां हुई थीं, बताई। इस प्रकार उत्साह बढ़ा तो स्वयं गाने लगे। गाते-गाते वे इतने तन्मय हो गये कि सुध-बुध खोकर मूर्च्छित हो गये। तब बादशाह अकबर ने तानसेन से कहा, "वाह, यह कैसा देवगान है! इनके संगीत में यह दैवी शक्ति कहां से आई?" उसके उत्तर में तानसेन ने कहा, "वह मेरी तरह राजे-महाराजों के लिए नहीं गाते। अन्तर्यामी भगवान के लिए गाते हैं। यही कारण है कि इनके संगीत में इतनी शक्ति है।" बादशाह अकबर ने उनकी बात समझी और चुप रह गये। यह बात मैंने इसलिए कही कि संगीत की देव-विद्या उन लोगों के मनोरंजन के लिए नहीं है, जिनका समय काटे नहीं कटता। संगीत मनुष्य को इस बात की याद दिलाता है कि छोटे-से-छोटा आदमी भी आनन्दमय दैव का प्रतिनिधि है। मैं उसे सिंहासन से उतारकर पृथ्वी की मिट्टी में न तो लाने को तैयार हूं और न उसे अपने पैरों तले रौंदने को ही।" अपने पक्ष के समर्थन में किट्टु ने यह सब कह डाला।

तुम जो कुछ दलील देते हो, सो ठीक है। लेकिन मैं यह कैसे कह दूं कि नीला की बातों में सचाई नहीं है? इसलिए मैं तो यही कहूंगा कि तुम्हें उसकी भी बात सुननी चाहिए। यही तुम्हें शोभा देगा।" कन्दस्वामी भागवतर ने अपना निर्णय सुनाया।

"लेकिन यह भी कैसे संभव है, जबकि मैं पूर्व की ओर जा रहा हूं और नीला पश्चिम की ओर? पूर्व और पश्चिम का मिलन कैसे हो सकता है? सो हम दोनों में से, किसी एक को अपना रास्ता बदल लेना चाहिए। पर मैं अपना रास्ता किसी तरह भी नहीं बदलना चाहता।" किट्टु अपनी बात पर अड़ा रहा।

"तो मुझे भी कोई रास्ता नहीं सूझता कि तुम दोनों का मामला तय कर सकूं।" कहकर कन्दस्वामी भागवतर उठे। किट्टु भी उठा और सिर झुकाकर उन्हें विदा करने द्वार तक गया। नीला गंभीर मुख-मुद्रा से झुंझलाती भीतर चली गई।

२२

सभेशय्यर का नाती महादेवन् सहसा एक दिन किट्टु के घर आ धमका। यद्यपि इसके पहले वह किट्टु से दो-तीन बार मिला था, फिर भी उसके घर आकर रहा नहीं था। किट्टु के गार्हस्थ्य-जीवन और कुशल-क्षेम के सम्बन्ध में उसने अपनी नानी धर्माम्बाल् के मुख से कुछ बातें सुनी थीं। अतः वह अपनी आंखों से देखना चाहता था कि नीला और किट्टु की गृहस्थी की गाड़ी कैसे चल रही है।

महादेवन् ने किट्टु के साथ-साथ सभेशय्यर के यहां संगीत का अभ्यास किया था, परन्तु अब उसे बिल्कुल त्याग दिया था। वह पैसे के विषय में बड़ा सावधान रहता था। एक-एक पैसा पकड़कर चलता था, गांठ खोलता नहीं था। उसने एक पंसारी की दूकान में मुनीम का काम शुरू किया और धीरे-धीरे उसका साझीदार बन गया। अब तो सारा कारोबार वह स्वयं संभालने लग गया था और उसकी आर्थिक स्थिति काफी अच्छी हो गई थी। आरम्भ से ही किट्टु के प्रति उसका अच्छा विचार न था। इसके कई कारण थे। एक तो उसे संगीत नहीं आता था और किट्टु बहुत अच्छा गाता था। दूसरे कहीं से आये हुए अनाथ किट्टु ने उसके नाना के दिल में जगह पा ली थी। इन दोनों कारणों से किट्टु के प्रति उसे ईर्ष्या हो गई थी और अब तो किट्टु लोक-विख्यात संगीतज्ञ हो गया था। इस बात ने उसकी ईर्ष्या को और भी अधिक उकसा दिया था। फिर भी उसे इस बात का संतोष था कि वह पैसे को लेकर किट्टु से कहीं अच्छी स्थिति में है और चैन से खाता-पीता है।

महादेवन जब आया, किट्टु कहीं बाहर गया हुआ था। नीला ने महा-

देवन का स्वागत किया। महादेवन उसके घनिष्ठ बंधुओं में था। अतः उसके आगमन से वह मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुई। कुशल-क्षेम पूछने के बाद महादेवन् ने किट्टु के बारे में उत्सुकता दिखलाते हुए पूछा, "अब तो किट्टु बहुत बड़ा आदमी हो गया है, क्यों ?"

"बड़ा आदमी होने से क्या हुआ ?" नीला ने चिढ़कर कहा।

उसके कथन का तात्पर्य समझकर महादेवन ने पूछा, "क्यों नीला, तुम लोगों की गुजर-बसर बिना किसी कठिनाई के हो जाती है न ?"

"क्यों, घर देखने से पता नहीं चलता क्या ?" नीला के इस उत्तर ने घर की स्थिति का उसे कुछ-कुछ पता करा दिया।

अलगना पर फटी-पुरानी धोती टंगी थी, एक कोने में छेदों से भरा लोटा रखा था और एक ओर जीर्ण-शीर्ण चटाई पड़ी थी—ये सब मिलकर किट्टु की गृहस्थी की विपन्न दशा की घोषणा कर रहे थे। महादेवन् ने उनपर एक बार निगाह दौड़ाई और मुख पर अतृप्ति के भाव लाकर बोला, "आजकल के जमाने में विद्या प्राप्त करने मात्र से सबकुछ नहीं हो जाता। विद्या से पैसा बनाने की विद्या आवे तभी कुछ लाभ हो सकता है। यह कला आसानी से हर किसीके हाथ नहीं लगती। मैं तो यही कहूंगा कि जो यह कला नहीं जानता, वह जीना भी नहीं जानता !" महादेवन् ने अपना मन्तव्य उसे समझाने का प्रयत्न किया।

महादेवन की यह बात नीला के लिए बड़ी उत्साह-वर्धक सिद्ध हुई। उसे इस बात से बड़ा आश्वासन मिला कि वह जो सोच रही थी, वही महादेवन् भी सोच रहा है।

"महादेवन्, तुमने सौ बातों की एक बात कही है। मुझे तुम्हारे मुंह में घी-शक्कर डालना चाहिए। विद्या और योग्यता का ढोल पीटने से ही जीविका कहां चलती है !"

"मेरी बात ध्यान से सुनो, नीला। विद्या और योग्यता किसी काम की नहीं है। मैं तो व्यापार में लगा हूं और पैसे की महत्ता भलीभांति जानता हूं। कोई कितना ही बड़ा विद्वान और योग्य क्यों न हो, मैं उसे कानी कौड़ी का माल उधार नहीं देता। उधार देने के पहले यही देखता हूं कि जिसे उधार दे रहा हूं, उसमें लौटाने की सामर्थ्य और शक्ति है या

नहीं। अगर नहीं है तो वह आदमी मेरे किसी काम का नहीं!" महादेवन् ने कहा।

उसकी इन बातों से नीला की हिम्मत और बंधी। बोली, "महादेवन्, अब तो तुम आ ही गये हो। उन्हें सारी बातें समझाओ और सुधारकर ठीक रास्ते पर ले आओ। तुम्हें बड़ा पुण्य मिलेगा। मैं तो रोज-रोज के इन झंझटों से तंग आ गई हूं।"

"नीला, तुम भी कैसी बातें करती हो? मैं उससे कहूंगा जरूर, पर न जाने वह मेरी बात सुनेगा भी या नहीं?"

"तुम तो उनके भले की ही कहनेवाले हो। सुने तो ठीक, न सुनें तो कोई बात नहीं।" नीला ने कहा।

"मुझे कोई आपत्ति नहीं, मैं अवश्य कहूंगा। मुझे तो इस बात का बड़ा दुःख है कि तुम कष्ट उठा रही हो। मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि किट्टु मेरी बातें सुने और सुधरे!" महादेवन् ने उसे आश्वासन दिया।

नीला रसोई का काम संभालने चली गई। उसके थोड़ी ही देर बाद किट्टु घर लौटा। महादेवन् को देखकर किट्टु बहुत खुश हुआ और बड़े तपाक से उसका स्वागत करते हुए बोला, "कहो महादेवन्, तुम कब आये? कहीं रास्ता तो नहीं भूल गये?"

"रास्ता नहीं भूला, जान-बूझकर तुम्हें और नीला को देखने आया हूं!" महादेवन् ने उत्तर दिया।

"आजकल क्या कर रहे हो?"

"क्या कर रहा हूं? संगीत के नाम को डुबकी लगवा दी है और व्यापार में लग गया हूं। चार पैसे मिलते हैं, चैन की जिन्दगी बिताता हूं।" महादेवन् ने कहा।

"भगवान करे, तुम्हारे जीवन में चैन की बंसी बजे!" किट्टु ने अपनी कामना प्रकट की।

"तुम तो अब संगीत के सम्राट बन गये हो! आजकल, जहां देखो, तुम्हारा ही नाम लिया जा रहा है। तुम्हारी ऐसी धाक जमी है कि..."

महादेवन् अपनी बात पूरी नहीं कर पाया था कि नीला रसोई से बाहर आती हुई बोली, "इतने बड़े सम्राट के राज्य में किसका शासन हो

रहा है, जानते हो ? ... दारिद्रय-देवी का।"

किट्टु समझ गया कि नीला अब फिर महाभारत का सामान संजो रही है। इसलिए वह चुप ही रहा। वह चाहता था कि दिल खोलकर महादेवन् से बातें करनी चाहिए और बाल्यकाल की बातों को पुनः स्मरण करके आनन्द लेना चाहिए। पर उसकी इस इच्छा पर पानी फिर गया। उसके मन में उस समय एक विचार यह आया कि नीला के सामने कहीं दोषी न बनना पड़े और उसके विरोध में दलीलें पेश न करनी पड़ जायं। अगर ऐसी स्थिति आगई तब क्या होगा ?

महादेवन् के साथ किट्टु खाने बैठा। नीला दोनों को खाना परोस रही थी। बोली, "मुझसे जैसा बन पड़ा वैसा खाना मैंने बनाया है। तुम्हारी तो स्वादिष्ट भोजन करने की आदत है। लेकिन क्या करूं ? मुझपर नाराज न होना, भैया !"

"महादेवन् क्या कोई गैर आदमी है ? यह तो हमारा अपना ही है। कोई समधी-असमधी तो है नहीं !" किट्टु ने कहा।

"इनका कहना ठीक है। मैं कोई गैर तो हूं नहीं।" कहकर महादेवन् खाता रहा। थोड़ी देर बाद बोला, "अभी हाल में कहीं गाने-वाने का कोई कार्यक्रम है क्या तुम्हारा ?"

किट्टु के उत्तर देने से पहले ही नीला बोली, "कार्यक्रम का होना-न-होना दोनों ही बराबर हैं। इससे किसीका कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है। इनके साथ ऐसा नहीं है कि कहीं किसी कार्यक्रम में गये और जेब भरकर रुपये ले आये। यहां कौन इनके कार्यक्रम को बैठा रहे !"

"मैं कुछ कहूं तो संभव है कि किट्टु, तुम्हें गुस्सा आये। लेकिन तुम्हारी जितनी विद्या और योग्यता मुझमें हो तो मैं इस दुनिया को ही जीत डालूं।" महादेवन् ने कहा।

"बेशक तुम इस काम में सफल होगे। पर इस दुनिया को जीतकर मैं क्या पाऊंगा ? मेरे लिए तो यही काफी है कि मैं अपने पर विजय पा लूं।" किट्टु ने उत्तर दिया।

"तुम अपने को जीतकर कौनसा स्वर्ग प्राप्त करना चाहते हो ?"

"स्वर्ग प्राप्त हो या न हो, लेकिन बड़े बुजुर्गों ने जो पाया है, उसीको

मैं पाना चाहता हूं।"

"हम किसी दूसरे जन्म में सुख पाने की आशा में इस जन्म में नरक-यातना भोगें, यह मेरी समझ में बुद्धिमानी का काम नहीं।"

"बुद्धिमानी का काम हो, या न हो, चींटी तक बरसात के दिनों के लिए खुराक जमाकर लेती है। वर्तमान जीवन और क्षण को जो नित्य-शाश्वत समझता है, उसके लिए तो कोई कठिनाई नहीं है। कठिनाई तो उसकी है, जो अपने जन्म-जन्मान्तरों का भी भला चाहता है।"

"किट्टु, तुम्हारा यह वेदान्त यहां किसे चाहिए? तुम्हारा यह वेदांत क्या ग्रहीता पत्नी को खाना पकाने के लिए चावल लाकर दे देगा? धरती का चावल लाना छोड़ आसमान के लड्डू खाने का सपना देखना अच्छा नहीं है। समझे।" महादेव ने उसे आड़े हाथों लिया।

किट्टु के दिल में ये बातें बड़ी चुभीं। उसके मन को इस बात से बड़ी चोट लगी कि महादेवन् उसकी गरीबी पर इशारा करके उसको कांटा चुभो रहा है। नीला को ये बातें मिश्री-जैसी मीठी लगीं। वह मन-ही-मन खुश हो रही थी कि महादेवन् ने अपनी बातें इस प्रकार से कही हैं कि अब उसके पति के दिल पर अवश्य प्रभाव पड़ेगा। महादेवन् भी अपनी वाक्-चातुरी पर प्रसन्न हो रहा था। नीला ने विजय-गर्व से महादेवन् की ओर देखा।

महादेवन् के दिल में किट्टु को और नीचा दिखाने का विचार उठा तो बोला, "किट्टु, मैं मानता हूं कि तुम बहुत विद्वान् हो। लेकिन क्या तुम यह चाहते हो कि तुम्हारी पत्नी भूखों मरे? तुम्हारी विद्वत्ता का और तुमसे शादी करने का उसे क्या यही फल मिलना चाहिए?"

इन बातों को सुनकर नीला के दिल में ऐसा ज्वार-भाटा आया कि वह क्षुब्ध सागर-सी हो उठी। बोली, "मुझ अभागिनी को और क्या फल मिलेगा, महादेवन्! जब कभी ये कुछ कहते हैं तो ऐसा लगता है, मेरी मौत मनाते हैं! पर निर्दयी मौत मेरे पास फटकती ही नहीं। ये बेचारे क्या करें? इन्होंने अपने गानों से मुझे मार डालने में कोई कसर थोड़ी छोड़ी है!"

नीला की ताने-भरी बातों ने किट्टु के दिल पर बड़ी करारी चोट की। वह तिलमिला गया। उसका सिर चकरा गया। "यह कैसा व्यवहार

है ! ये दोनों क्या उसका अपमान करने पर तुले हैं ? साथ ही मेरे संगीत का भी अपमान कर रहे हैं। साक्षात् सरस्वती देवी के प्रति दुर्व्यवहार कर रहे हैं । मुझ-जैसे सरस्वती के अनन्य उपासक की अवहेलना कर रहे हैं ! यह इनका साफ दुर्व्यवहार है !" यह सोचकर उसका दिल तड़प उठा । हाथ का कौर फिसलकर पत्तल पर गिर पड़ा । भर्राये स्वर में बोला, "राम-राम, अब ऐसी बातें मुझसे नहीं सुनी जातीं । महादेवन्, तुम और यह—दोनों ही, बड़ी संगीत परंपरा के वंशज हो । मेरे गुरु महाराज से, उस महान् नादोपासक से, तुम दोनों का लहू का नाता है। इसलिए ऐसी ऊल-जलूल बातें मत कहो। उनकी आत्मा को ऐसी बातों से शांति प्राप्त नहीं होगी ।"

"हमारा तो केवल खून का नाता है, लेकिन तुम तो उस महान् संगीत की साक्षात्, सीधी परंपरा के प्रतीक हो । उनकी आत्मा के उत्तराधिकारी भी तुम्हीं हो । जब वह आत्मा यह बात जानेगी कि पाणिग्रहीता पत्नी को भूखों तड़पाकर तुम नादोपासना कर रहे हो तो उसे दुगुनी-तिगुनी नहीं, हजार गुनी शांति प्राप्त होगी न !" जले पर महादेवन् ने नमक छिड़का ।

उसकी ये बातें किट्टु के दिल में ऐसी लगीं, मानो उसपर किसीने गरमागरम खौलता तेल उंडेल दिया हो । नीला को देखा तो दिल मसोसकर रह गया ।

"मेरे किये सारे पाप-कर्मों को क्या तुम्हारे ही रूप में मेरे यहां आना था !" वह बड़बड़ाता हुआ, खाना बीच ही में छोड़कर उठा और हाथ-मुंह धोकर तेज कदमों से घर से बाहर चला गया ।

२३

किट्टु को इस बात का भान नहीं था कि वह कहां जा रहा है और क्यों जा रहा है ? उसे पैर जहां लिये जा रहे थे, चला जा रहा था। लेकिन उसके अभ्यस्त पैर अनायास ही उसे मठ की ओर ले गये। वह मठ के द्वार पर पहुंचा ही था कि उसी समय कन्दस्वामी भागवतर अन्दर से बाहर आ रहे थे। किट्टु की मुख-मुद्रा को देखते ही उन्होंने जान लिया कि अवश्य कुछ-न-कुछ हुआ है। उन्होंने किट्टु को नाम लेकर पुकारा। किट्टु का ध्यान कहीं और था। धुन में मस्त वह आगे बढ़ा जा रहा था। भागवतर तेज कदमों से उसके पीछे हो लिये और पास जाकर ऊंचे स्वर में पूछ बैठे, "किट्टु, कहां जा रहे हो ?"

किट्टु ठिठककर खड़ा हो गया और पीछे मुड़कर देखा। उसका मुंह क्रोध और क्षोभ के कारण गिरा हुआ था। दिल तेजी से धड़क रहा था। आंखों में खून उतर आया था। लगता था, दिल का ताप उनसे फूट रहा हो।

कन्दस्वामी भागवतर ने पूछा, "क्यों, क्या बात है, किट्टु ? तुम्हारा चेहरा क्यों, उतरा हुआ है ?"

किट्टु ने कोई उत्तर नहीं दिया।

उसकी मनःस्थिति देखकर कन्दस्वामी भागवतर ने कहा, "आओ, यहां बैठें !"

वे मंडप के एक कोने में जा बैठे। किट्टु भी यंत्रवत् उनके पास जा बैठा।

"आखिर, बात क्या है, किट्टु ?" कन्दस्वामी भागवतर ने अपना

प्रश्न दुहराया।

"कृपा कर मुझसे कुछ न पूछिये !" किट्टु तमककर बोला।

"गुस्सा क्यों होते हो ? नाराज होने से बिगड़ी थोड़े ही बन जायगी ! बताओ, क्या हुआ है ?" भागवतर ने शांत स्वर में उसे समझाया।

"अब या तो मैं ये प्राण छोड़ दूंगा या काषाय वस्त्र धारण करके संन्यासी हो जाऊंगा और नहीं तो कहीं दूर चला जाऊंगा, जिससे किसी की आंखों में न पड़ सकूं। अब इसके सिवा मुझे कोई दूसरा चारा नहीं दीखता।"

"लेकिन इन कामों को करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। आखिर किस कारण तुम्हें इतना विराग हो गया है ?"

"क्या कहूं, मामा ! सुबह होते ही गृहस्थी का जंजाल शुरू हो जाता है और शाम होने पर भी रुकने का नाम नहीं लेता। जब देखो, घर में कोई-न-कोई रोना रहता है ! कोई कबतक इसको बर्दाश्त करे ? हमारे दाम्पत्य-जीवन की कहानी एक ही रस्सी से बंधे चूहे-मेंढक की-सी हो गई है। न इधर जा सकते हैं, न उधर। अब यह सब मुझसे नहीं सहा जाता। मैं अपने सिद्धान्तों को नहीं बदल सकता, और न नीला ही अपने रास्ते को बदल सकती है। यही कारण है कि अब मैं ऐसी जगह चला जाना चाहता हूं, जहां किसी प्रकार का कोई झंझट न रहे।"

"लेकिन जाओगे कहां ?"

"जाने को क्या दुनिया में जगह नहीं है ? जिधर भी पैर ले जायं चला जाऊंगा। जब मैं बालक था, तब मां को छोड़कर भागा था। अब पत्नी को छोड़कर भागूंगा। छुटपन में मेरी मां ने मुझे नहीं समझा और अब जवानी में पत्नी नहीं समझती है। तब भी अकेला रहा, अब भी अकेला ही रहूंगा। लगता है, भगवान ने मेरे भाग्य में अपनी लौह लेखनी से लिख दिया है कि तुझे इस संसार में अकेला और अनाथ ही रहना पड़ेगा।"

"ऐसी बातें न करो, किट्टु। संसार में मनुष्य का नाता केवल खून का ही नहीं होता। तुम यह क्यों नहीं याद रखते कि तुम्हारे सुख-दुःख में भाग लेने और सहानुभूति दिखानेवाले इस दुनिया में हजारों लोग हैं !"

"लेकिन इससे क्या होता है ? मेरी विद्या और कला की दाद देने-

वालों की संख्या बहुत है, पर पत्नी तो ऐसी मिली है, जिसने मेरे गार्हस्थ्य जीवन को नरक बना दिया है। इस हालत में मैं सुख-शांति से पूर्ण जीवन कैसे बिता सकता हूं ! ग्राह, मेरा जीवन भी कैसा विचित्र जीवन है !"

"ग्रच्छा, किट्टु, मेरी इन बातों का जरा जवाब तो दो ?"

"क्या बात है ? कहिये।"

"तुम्हें ग्राखिर इतना क्रोध ग्रौर दुःख क्यों होता है ?"

"ग्रपनी पत्नी के कारण !"

"तुम्हारी पत्नी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?"

"वह विद्या ग्रौर कला को व्यापार की वस्तु बनाने के लिए मुझे मज-बूर करती है !"

"ठीक है, लेकिन इसपर तुम गुस्सा क्यों होते हो ?"

"इसलिए कि जो नाद-विद्या देवाराधना के काम ग्राती है, उसे वह पैसा कमाने का धन्धा बनाने पर जोर देती है।" किट्टु ने कहा।

"लेकिन, मैं तो यह पूछता हूं कि इसमें तुम्हारे क्रोधित होने की क्या बात है ?"

कन्दस्वामी भागवतर ने जब ग्रपने एक ही सवाल को बार-बार दुह-राया तो किट्टु की समझ में यह न ग्रा सका कि भागवतर ऐसा क्यों कर रहे हैं ? या तो वह उसकी बात नहीं समझ पा रहे हैं ग्रथवा उसका मखौल उड़ाने पर उतारू हैं। इसलिए उसने कुछ सन्देह-पूर्ण स्वर में पूछा, "ग्राप क्या..."

"नहीं, मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या वह तुम्हें नादोपासना करने से रोकती है ? मेरा तो ख्याल है कि वह तुम्हें नहीं रोकती। वह तो इतना ही कहती है कि ठीक तरह से गृहस्थी चलाते हुए ग्रपनी नादोपासना भी जारी रक्खो। इसमें बुराई क्या है ?"

"ग्रच्छा तो शायद ग्राप यह कहना चाहते हैं कि मैं जो कुछ सोच रहा हूं, या कर रहा हूं वह सब ठीक नहीं है, बुरा है !"

"नहीं, यह तो मैं नहीं कहता। लेकिन यह ग्रवश्य कहूंगा कि क्रोध, दुःख-दर्द—ये सब एक ही चीज से पैदा होते हैं ग्रौर वह चीज है ग्रहंकार। तुम नादोपासना करो या न करो, लेकिन जबतक तुम्हारे मन में नाममात्र

के लिए भी अहंकार है, तुम न्याय करो या अन्याय, गलत करो या सही, तुम्हें दुःख अवश्य मिलता रहेगा। यही कारण है कि भगवान ने कहा है, 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।' कर्म करना तुम्हारा कर्तव्य है, फल की आशा मत रक्खो। अनासक्त होकर अपना कर्म करोगे तो दुःख-सुख के साथ आंख-मिचौनी नहीं खेलनी पड़ेगी। स्वयं अपनी परख करने पर तुम्हें यह मालूम हो जायगा कि तुम्हारी जिम्मेदारी क्या है। अपने दिल के कोने में ढूंढ़ो और पता लगाओ कि तुम्हारे मन में अहंकार ने कितना प्रवेश किया हुआ है। तभी तुम्हें अपने दुःख का मूल कारण मालूम होगा।"

कन्दस्वामी भागवतर के मुख से ये बातें सुनकर किट्टु दंग रह गया। उनकी इन बातों से किट्टु के हृदय पर हथौड़े की-सी चोट लग रही थी। उसे लगा, जैसे वे उसकी अन्तरात्मा की तह में पहुंचकर हृदय-मंथन कर सारे रहस्यों का उद्घाटन कर रहे हों और उसके विरोध में खड़े होकर एक बहुत बड़ा आरोप उसपर लगा रहे हों। वह यह सोचकर तिलमिला गया। उनके सामने वह शरम से गड़ा जा रहा था। बोला, "आपका कहना एकदम ठीक है। मैं अपनी भूल स्वीकार करता हूं। मैं यह नहीं कह सकता कि मुझमें अहंकार की कोई भावना नहीं है। मुझे क्षमा कीजिये। आपके सामने न जाने कितना ऊल-जलूल बक गया।"

इतना कहकर किट्टु ने उनके सामने हाथ जोड़ दिये।

कन्दस्वामी भागवतर ने उसके हाथ पकड़ लिये और बोले, "किट्टु, दुःखी मत होओ। तुम्हारे पास विलक्षण प्रतिभा है। साथ ही अनूठे गुण भी कूट-कूटकर भरे हैं। जहां ये दोनों चीजें विद्यमान हैं, वहां रत्तीभर भी अहंभाव हो तो सारा आनन्द नष्ट हो जायगा। मीठे दूध में मक्खी पड़ जायगी। अहंकार की एक बूंद से ही दूध विष बन जायगा। ये सब बातें मैंने तुमसे केवल चेतावनी के लिए कही हैं।"

"आपका यह अनुग्रह मुझपर सदा रहे।" किट्टु ने उनसे प्रार्थना की।

"अच्छा, चलो चलें!" कहकर कन्दस्वामी भागवतर उठे तो किट्टु भी चुपचाप उनके पीछे हो लिया। कन्दस्वामी भागवतर उसे सीधे कामाक्षी

देवी के मन्दिर में ले गये। मन्दिर में बड़ी भीड़ लगी हुई थी। उस भीड़ को किसी तरह पार कर वे गर्भ-गृह के निकट पहुंच गये।

देवी का तेजोमय रूप चमक रहा था। उनके मुखारविन्द से कांति प्रस्फुटित हो रही थी। पुजारी मन्त्रों द्वारा अर्चना कर रहे थे। बाहर नाद-स्वर-वादक बाजा बजा रहा था। अर्चना पूरी होने पर पुजारी ने आरती की। एकत्र जन-समुदाय ने एक स्वर में "देवि, पराशक्ति अम्बिके" कहकर भक्तिपूर्वक सिर झुका दिये।

"हे माता, मुझे कर्म-मुक्त कर दो।" कोई बुढ़िया कह रही थी।

"हे जगदीश्वरी, मेरा भव-भय हरो!" यह किसी वृद्ध पुरुष की प्रार्थना थी।

वहां लोग अपने-अपने सम्प्रदाय के अनुसार स्तोत्र-पाठ कर रहे थे। लेकिन उस समय किट्टु उन सम्प्रदायों का भी नया तात्पर्य निकाल रहा था। पुजारी ने जो आरती उतारी थी, उसमें किट्टु ने देखा कि भगवती माता की दिव्य दीप्ति और उसके हृदय के अन्दर की ज्योति, दोनों एक-साथ प्रस्फुटित हो रही हैं। वह उस भक्ति-गंगा में ऐसा बह गया कि उसे अपनी सुध ही नहीं रही। वह भगवती देवी का स्तोत्र-पाठ करने लगा और श्लोक गुनगुनाने लगा। थोड़ी देर में वह भावावेश में ऐसा डूब गया, मानो भक्ति के तेज बहाव में वह बहता चला जा रहा हो। अनायास उसके कण्ठ से संगीत फूट पड़ा। धीरे-धीरे वह श्याम-शास्त्री[1] के पद गाने लगा। भक्ति की तीव्रता ने उसके संगीत में अद्भुत गम्भीरता भर दी। भगवती देवी के स्वरूप और किट्टु के गीतों में जो दैवी करुणा फूट रही थी, उससे मन्त्र-मुग्ध होकर उपस्थित लोग निश्चल खड़े रहे।

किट्टु बहुत देर तक गाता रहा। रुकने का नाम ही नहीं लेता था। कन्दस्वामी भागवतर ने जब देखा कि समय हो गया है तो किट्टु के कन्धे पर हाथ रखकर उन्होंने उसकी प्रज्ञा को लौटा लाने का प्रयत्न किया। किट्टु मानो स्वप्न से जागा। गर्भ-गृह की गर्मी के कारण उसके शरीर से पसीने का स्रोत-सा बह रहा था। जब होश में आया तो उसे बड़ी थकावट

---

१. संगीत-त्रिमूर्तियों में से एक प्रमुख साहित्य-स्रष्टा।

महसूस हुई। पसीना पोंछता हुआ मन्दिर से बाहर आया। कन्दस्वामी भागवतर भी उसके साथ बाहर आये। दोनों ने आपस में कोई बात नहीं की। लगा कि दोनों के दिल में एक ऐसी अनुभूति है, जो शब्द और वाणी से परे की चीज है। दोनों की स्थिति 'गूंगा गुड़ खाइके कहे कौन मुख स्वाद' की जैसी ही थी। आनन्द में डूबते-उतराते वे दोनों मठ तक पहुंच गये। मठ के द्वार पर पहुंचकर दोनों एक क्षण के लिए रुके। कन्दस्वामी भागवतर ने किट्टु की ओर ऐसी निगाह से देखा, मानो अब विदा लेना चाहते हों।

अबतक किट्टु जो मौन बुत बना खड़ा था, कन्दस्वामी भागवतर से बोला, "पारब्रह्म-रूपी तत्व कितना महान है..."

उनके अनुमोदन में कन्दस्वामी भागवतर ने अपना सिर हिलाया।

किट्टु ने अपनी बात जारी रक्खी, "और मनुष्य उसके सामने कितना क्षुद्र है!" उसके स्वर में विस्मय था। कन्दस्वामी भागवतर ने इसका भी कोई उत्तर नहीं दिया। केवल अनुमोदन के लिए सिर हिलाया।

उसके बाद किट्टु कुछ नहीं बोला। चुपचाप घर की ओर चल पड़ा।

× × ×

किट्टु जब घर पहुंचा तब रात का दूसरा पहर बीत रहा था। गली में लोगों का आवागमन भी बन्द हो गया था। घर की बाहरी बैठक में, मुंह पर हाथ रक्खे नीला चिन्तामग्न बैठी थी। किट्टु घर से जिस प्रकार से गया था, उससे उसके दिल में यह डर पैदा हो गया था कि कहीं कुछ उलटा-सीधा न कर बैठें। दिल में उसे इस बात का बड़ा पश्चात्ताप हो रहा था कि उसके मुंह से ऐसी कठोर बातें क्यों निकलीं? वह यह भी सोच रही थी कि उसे आखिर व्यर्थ का झगड़ा मोल लेने की क्या पड़ी थी! गृहस्थी का भार तो मुझसे ज्यादा उन्हीं पर है! वे जैसा जी चाहे, करें! मैं बेकार में ही बीच में टांग अड़ाती हूं! अपना जीवन-नीड़ बनाना-बिगाड़ना उनके हाथ है! आगे से अब कभी भी इन बातों में अपना सिर नहीं खपाऊंगी।

महादेवन ने जब सोचा कि इनके पारवारिक झगड़े में उसे पड़ने की क्या जरूरत है तो वह उसी दिन रात की गाड़ी से अपने गांव को चल दिया।

ज्यों-ज्यों देर हो रही थी, त्यों-त्यों नीला की घबराहट बढ़ रही थी। पल-पल पर उसका मन उसीको चाबुक मार रहा था। अन्त में जब रात के धुंधलके में किट्टु को आते देखा तो उसके दिल को बड़ी भारी राहत मिली। उसने लम्बी सांस ली और मन में कहा, "भला हुआ कि कोई बुरा काम नहीं हुआ!"

किट्टु एक क्षण के लिए द्वार की बैठक पर बैठा। मन्दिर से लौटने पर हाथ-पैर धोने के लिए द्वार पर बैठने का रिवाज है, उसीको निबाहने के लिए उसने वैसा किया। पैर धोने के लिए नीला पानी ले आई और किट्टु के पास रखकर एक ओर चुपचाप जा खड़ी हुई।

पैर धोने के बाद किट्टु ने नीला की ओर देखा। अंधेरा होते हुए भी उससे छिपा न रहा कि नीला का चेहरा शोक-संतप्त है। अपनी अंटी से एक पोटली निकाली और नीला की ओर बढ़ाता हुआ बोला, "यह लो, रोली-कुंकुम!" नीला ने हाथ बढ़ाकर उसे लिया और अपने माथे पर लगाया। किट्टु नीला को देखता ही रह गया। दोनों आपस में एक शब्द भी न बोले।

कुछ देर बाद किट्टु ने मौन तोड़ा। बोला, "देखो, नीला, मेरे विचार से हम दोनों के लिए विधि की विडंबना ही पर्याप्त है, फिर हम तुम दोनों एक-दूसरे को व्यर्थ ही क्यों परेशान करते फिरें।"

लेकिन नीला मौन रही।

"अपना जीवन तो पहले से ही दुखमय है। फिर उसे और दुखमय क्यों बनायें?" किट्टु ने फिर कहा।

नीला से चुप नहीं रहा गया। वह बरस पड़ी, "हां, आपको दुःख देनेवाली तो मैं ही हूं। है न यही बात? मुझे सब सुनते रहना चाहिए और आप चाहे जो कहते रहें।"

"इस समय हमारे सामने यह सवाल नहीं है कि कौन किसको क्या कष्ट देता है और कैसे देता है? मैं तो इतना कहना चाहता हूं कि अब इस परेशानी को दूर करना चाहिए। याद रक्खो, गृहस्थी का भार केवल तुम्हीं पर नहीं, मुझपर भी है। मैं जान-बूझकर अपनी इच्छा से गरीबी का स्वागत नहीं करता। गरीबी से छुटकारा पाने के लिए मैं अपने मनुष्यत्व को

तिलांजलि नहीं दे सकता। लेकिन एक बात निश्चय ही गांठ बांधकर रख लो। आगे से हमारे बीच ऐसी-वैसी बातें नहीं होनी चाहिए।" किट्टु की बातों में दृढ़ता थी, एक प्रकार का निश्चय था।

"दोपहर को आपने ठीक तरह से खाना नहीं खाया था। क्या अब भी खाना नहीं खाना है?" नीला ने पूछा।

"मुझे भूख नहीं है।" किट्टु ने उत्तर दिया।

"हां, भूख तो बस मुझे ही सताती है। आप बड़े भाग्यवान हैं, जो निराहार रहने का वरदान ले आये हैं!"

"तुम्हें तो केवल पेट की भूख सताती है, पर मुझे तो और भी बहुत-सी भूखें सताती हैं!"

नीला ने इन बातों पर ध्यान नहीं दिया और पूछा, "पीने को पानी चाहिए या वह भी नहीं?"

"अच्छा, लाओ।" किट्टु ने कहा।

नीला पानी लाई तो लेकर पी लिया। जैसे ही जीभ की प्यास बुझी, वैसे ही दिल का ताप बहुत हद तक कम हो गया।

किट्टु ने उठकर अपना बिछौना लगाया और लेट गया। उस दिन उसके हृदय में एक अभूतपूर्व शांति छा गई थी। अतः उस रात ऐसी गहरी नींद आई, जो उस समय तक दुर्लभ थी।

वह जैसा परिवर्तन चाहता था, वैसा ही परिवर्तन उन दोनों के व्यवहारों में हो गया। धीरे-धीरे उन दोनों के संबंधों में बड़ी दृढ़ता और परिपक्वता आ गई। कहते हैं, मनुष्य के हृदय को तपाकर खरा सोना बनाने की शक्ति अपरिमित मात्रा में दुख में होती है। किट्टु के जीवन में यह बात अनुभव-सिद्ध होती जा रही थी। मनुष्य जिन अनुभवों से गुजरता है, वे जाने या अनजाने उसके मन को मजबूत कर देते हैं। किट्टु को भी कई प्रकार के अनुभव हो रहे थे।

किट्टु की कीर्ति, उसकी विद्या, शील, स्वभाव आदि के कारण दिन-पर-दिन बढ़ रही थी। इस समय उसे ऐसी स्थिति प्राप्त हो गई थी। जो दूसरों के लिए दुर्लभ थी। किट्टु को नाम लेकर पुकारनेवाले कन्दस्वामी भागवतर जैसे एक-दो ही व्यक्ति थे। शेष सब दक्षिण की प्रथा के अनु-

सार उसे बड़े आदर से 'कृष्ण भागवतर' कहते थे।

संगीत-जगत में कृष्ण भागवतर का नाम उत्तम संगीतज्ञों में शीर्ष स्थान प्राप्त कर चुका था और संगीत की श्रेष्ठता का प्रतीक बन गया था। 'संगीत' कहते ही कृष्ण भागवतर का नाम आ जाता और कृष्ण भागवतर का नाम लेते ही उत्तम संगीत का स्मरण हो आता था। किट्टू और संगीत का ऐसा अटूट संबंध हो गया था कि लोग उन दोनों को अलग करके नहीं देख सकते थे। बाह्य संसार के लिए किट्टु यद्यपि कृष्ण भागवतर हो गया था, फिर भी, जहां तक उसका पारिवारिक संबंध था, वह अब भी किट्टू ही था।

२४

उस समय कुंभकोणम में बालांबाल् नाम की एक गणिका रहती थी। उसने बड़ा सुन्दर गला पाया था। उसकी कंठ-ध्वनि में चुम्बक-जैसी आकर्षण-शक्ति थी। रसिक वृन्द उसकी कंठ-माधुरी के पीछे पागल थे। जहां भी उसका कार्यक्रम होता वहां लोगों का मेला-सा लग जाता था। बच्चे से लेकर बूढ़े तक उसका सुरीला गान सुनने की लालसा में खिंचे आते थे। यद्यपि वह जन-सामान्य का दिल बहलानेवाले गाने ही गाती थी, फिर भी उनके कण्ठ में ऐसा माधुर्य था कि लोग घर में नहीं बैठे रह सकते थे।

उसका गला जितना मधुर था, उतना ही शरीर भी सुन्दर था। संगीत-कला से उसें अपार प्रेम था। साथ ही वह बड़ी धनाढ्य भी थी। इन सब चीजों ने मिलकर लोगों के मन में बालांबाल् के प्रति अपार मोह पैदा कर दिया था। लेकिन वह स्वयं कृष्ण भागवतर के गानों के पीछे पागल थी। उसे उनकी गान-पद्धति बहुत ही पसन्द थी। वह उनकी ही गान-पद्धति का अनुकरण करके गाती थी। कहीं-कहीं तो उन्हीं की नकल करती थी।

उसमें केवल एक बात की कमी थी। उसे किसी श्रेष्ठ गायक का शिष्यत्व ग्रहण करने और क्रमपूर्वक अभ्यास करने का अवसर नहीं मिला था। साधारण गानेवालों से ही कुछ सीखा था और कुछ उत्तम गाने सुन-सुनकर उनका अभ्यास किया था। इस प्रकार उसे संगीत की शिक्षा मिली थी। एक ओर उसके प्रकृति-प्रदत्त कंठ ने साथ दिया था तो दूसरी ओर संगीत के प्रति अटूट भक्ति और सूक्ष्म बुद्धि ने उसकी मदद की। इस प्रकार धीरे-धीरे उसने संगीत-जगत में अपनी जगह बना ली थी। इतना सबकुछ होते हुए भी उसके मन में यह बात घर कर गई थी कि अभी तक उसके संगीत-भवन की नींव ठीक तरह से नहीं पड़ी है। उसे किसी प्रकार मजबूत

बुनियाद पर खड़ा करना चाहिए। तभी उसका नाम उज्ज्वल हो सकता है। साथ ही वह यह भी चाहती थी कि उसे कृष्ण भागवतर से संगीत सीखने का सौभाग्य मिल जाय तो बड़ा अच्छा हो, क्योंकि कृष्ण भागवतर की योग्यता और विद्वत्ता का मुकाबला करने योग्य एक भी गायक उसे संगीत-जगत में नहीं मिला था। इसके अतिरिक्त उसकी मनपसन्द पद्धति पर गानेवाले या गवानेवाले अनुपम गायकों का भी अभाव था। सब तरह से कृष्ण भागवतर ही एक ऐसे व्यक्ति थे, जो संगीत-कला में उसके अभावों को पूरा कर सकते थे।

कृष्ण भागवतर की प्रकृति और गण-विशिष्टता के संबंध में वह बहुत कुछ सुन चुकी थी। वे यद्यपि योग्यता और गुणों में काफी श्रेष्ठ थे, फिर उसे जहां तक पता था, उन्होंने अभी तक किसीको अपना शिष्यत्व प्रदान नहीं किया था। लोग उनके पास जाने से डरते थे। कुछ लोगों ने उनसे कहा भी कि आप एक-दो को अपना शिष्य बना लीजिए तो उन्होंने उत्तर दिया था, "मैं स्वयं अभी सारी विद्या कहां सीख पाया हूं, जो दूसरों को सिखा पाऊंगा?"

सच पूछा जाय तो उसके मुंह से ये शब्द वचने के लिए नहीं निकले थे, उसने सच्चे दिल से कहे थे।

वह इतना ही चाहता था कि सदा नादयोग की साधना में लगा रहे और उस ब्रह्मानन्द में डूबा रहे। उसके दिल में भूलकर भी यह बात नहीं आई कि अपने नाम को जीवित करने के लिए किसीको अपनी गान-विद्या सिखाने की भी आवश्यकता है।

बालांबाल् ने सोचा कि ऐसे उत्तम पुरुष के सामने मुझ गणिका का क्या बस चल सकता है? गणिका को वे पता नहीं, अपनी विद्या सिखायेंगे भी या नहीं?

फिर भी आशा बड़ी बलवती होती है। उसके मन में विचार आया कि किसी प्रकार अगर उन्हें मना लिया जाय तो अपना काम बन सकता है। अगर उन्होंने मुझे अपने शिष्या के रूप में ग्रहण कर लिया तो मैं बहुत शीघ्र प्रसिद्ध हो जाऊंगी।

मारिमुत्ता पिल्लै ने उसकी इच्छा के बीज को खाद और पानी देकर

उगाने का प्रयत्न किया। वे उन व्यक्तियों में से थे, जो उसे सदैव प्रोत्साहन दिया करते थे। मृदंग-वादकों में उनको बेताज का बादशाह माना जाता था। एक तरह से उन्हें लय-ब्रह्म कहना ही ठीक था। संगीतज्ञों की गोष्ठी में उनका अपना विशिष्ट स्थान था। लोग बड़े आदर से उनका नाम लेते थे। उनके सामने बैठकर, हिम्मत करके गानेवाले गायक इने-गिने ही थे। बालांबाल् के अभिभावक पिता, मारिमुत्ता पिल्लै के घनिष्ठ मित्रों में से थे। इसलिए बालांबाल् को वे उसके बचपन से ही जानते थे। उन्हें इस बात का बड़ा दुःख था कि मधुर कंठ और गायन-कला के प्रति अभिरुचि होने पर भी, समुचित शिक्षा-दीक्षा के न होने से, उसकी विद्या पनप नहीं पा रही है, उल्टे नष्ट हो रही है। जैसे ही वह सयानी हुई और कला की सच्चे दिल से साधना करने लगी तो उन्होंने दिल में ठान लिया कि पूरी तरह से इसकी मदद करनी चाहिए। लेकिन उनके सामने एक कठिनाई यह उपस्थित हुई कि बालांबाल् इस बात पर अड़ गई थी कि अगर वह कुछ सीखेगी तो कृष्ण भागवतर से ही सीखेगी। वे बड़े संकट में पड़ गये। उनकी समझ में नहीं आया कि क्या करें, क्या न करें। और कोई दूसरा होता तो तुरन्त वे उसका उचित प्रबन्ध कर देते।

पर कृष्ण भागवतर तो दूसरी तरह के आदमी थे। अतः वे हिचक रहे थे कि वह उनके पास कैसे जायं! उनके दिल में बार-बार यह बात आती थी कि किसी तरह प्रयत्न करके एक बार देख तो लेना चाहिए। सफलता हाथ लगे या न लगे, इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

मारिमुत्ता पिल्लै जब कभी तंजाऊर जाते तो कृष्ण भागवतर के घर भी हो आते थे। कृष्ण भागवतर मारिमुत्ता पिल्लै को बड़े आदर और प्रेम की दृष्टि से देखते थे। दोनों को एक-दूसरे के गहरे ज्ञान का पता था और आपस में ऐसे हिल-मिल गये थे, जैसे एक-दूसरे के निकट संबंधी हों। उनका यह नाता घनिष्ठ और अटूट था।

मारिमुत्ता पिल्लै जब कहीं से किसी कार्यक्रम में मृदंगवादक के रूप में भाग लेकर लौटते तो कृष्ण भागवतर के घर ठहर कर कहते, "कल तो एक गायक ने मेरे कानों के परदे ही फाड़ डाले। इसका दवा अब आप ही के पास है। आपके गाने से मैं कान का यह दर्द भूल जाऊंगा। यही नहीं,

मेरे कानों का भी अच्छा इलाज हो जायगा।" यह कहकर वे मृदंग लेकर बैठ जाते।

तब कृष्ण भागवतर कहते, "जब आप मेरे सामने मृदंग लेकर बैठ जाते हैं तो मुझे अपने गायन का ध्यान ही नहीं रहता। अपनी सुध-बुध खोकर, आपकी उंगलियों की थिरकन देखने को ही जी करता है!"

इस प्रकार वे एक-दूसरे की सराहना करते थे। सच यह है कि वे एक दूसरे की कला और ज्ञान के बड़े प्रशंसक थे और एक-दूसरे का पूरी तरह से आदर करते थे। कृष्ण भागवतर 'निरवल' याने किसी पद के एक चरण को लेकर दुहराते और मोड़-माड़कर 'समन्वय' कर दिखाते या सरगम गाते तो मारिमुत्ता पिल्लै मृदंग बजाते-बजाते अपने-आपको भूलकर 'वाह, वाह!' कर उठते। इसी प्रकार कृष्ण भागवतर भी मृदंग के नाद और गान को अपने गायन के अनुकूल देखकर उसके सुन्दर मधुर बोलों पर अपना दिल वार देते। दोनों में एक प्रकार की अनन्यता पैदा हो गई थी।

एक बार मारिमुत्ता पिल्लै तंजाऊर आये हुए थे। हमेशा की तरह कृष्ण भागवतर का गायन उनके मृदंग के साथ हुआ। उस दिन की संगीत-सभा इतनी उत्तम हुई थी कि दोनों संगीत के मधुर प्रवाह में बह गये।

संगीत समाप्त होने पर दोनों घर आये। भोजन आदि से निवृत्त होकर बाहर चबूतरे पर पड़ी बेंच पर बैठ गए। सामने पानदान में पान-सुपारी, चूना-तमाखू आदि सब रक्खे थे।

मारिमुत्ता पिल्लै ने जो अभी तक पंखा झल रहे थे, पंखा नीचे रख दिया। पानदान से सुपारी लेकर मुंह में डाली और फिर पान लेने को हाथ बढ़ाया। इसपर कृष्ण भागवतर ने कहा, "पिल्लैजी, आप आराम से पंखा झलते रहिये! मैं आपको पान लगाकर देता हूं!"

पिल्लै चौंक पड़े और बोले, "वाह, आप भी कैसी बातें करते हैं!" उन्होंने अपने कानों पर हाथ रख लिये, मानो आगे कुछ सुनना नहीं चाहते हों।

"इसमें कौन-सी बुराई है! नंदिकेश्वर की सेवा करने का भाग्य तो बड़ी मुश्किल से मिलता है।" कृष्ण भागवतर ने हंसते हुए कहा।

"ओह, तो आप यह कहना चाहते हैं कि मैं अपने हाथों आपको पान

लगाकर दूं ?" कहते हुए मारिमुत्ता पिल्लै पान देने के लिए आगे बढ़े।

इस प्रकार जब दोनों दिल खोलकर आपस में बातें कर रहे थे, मारिमुत्ता पिल्लै के मन में आया कि बालांबाल् के सम्बन्ध में बात उठाने का यही ठीक मौका है। बोले, "आपकी सेवा में एक निवेदन है।"

"पिल्लैजी, आपको मुझसे निवेदन क्या करना! जो कहना हो, कहिए।"

"अगर आप नाराज न हों तो कहूं!"

"मैं नाराज क्यों होऊंगा? क्या आप मुझसे कभी नाराज करनेवाली बात कहेंगे? कभी नहीं।"

"नहीं, यह बात नहीं है। यदि मैं अपनी नासमझी प्रकट कर दूं तो भी आपको मुझे क्षमा कर देना चाहिए!"

"पिल्लैजी, कहिए, कौन-सी बात है, जिसके लिए आप इतनी लंबी-चौड़ी भूमिका बांध रहे हैं। बताइये, आप मुझे कौनसा काम सौंपना चाहते हैं।"

"नहीं, कोई विशेष बात नहीं है। कुंभकोणम् की बालांबाल् का नाम आपने सुना है न?"

"वाह, यह भी कोई पूछने की बात है, पिल्लैजी? मैंने उसकी बड़ी प्रशंसा सुनी है! सारी दुनिया में उसके नाम की धाक है। लोग उसके नाम के पीछे पागल हो गये हैं। ऐसी हालत में उसका नाम मेरे कानों में पड़े बिना कैसे रह सकता है? लेकिन हां, अभी तक उसका गाना सुनने का मौका मुझे नहीं मिला। कहिये, उसके संबन्ध में क्या कहना चाहते हैं?"

"उसकी हार्दिक इच्छा है कि आपकी सेवा में रहकर कुछ सीखे, संगीत-साधना करे! अतः वह चाहती है कि..."

मारिमुत्ता पिल्लै के मुंह से इतना सुनकर कृष्ण भागवतर को हँसी आ गई। बोले, "पिल्लैजी, कहीं आप मेरी हंसी तो नहीं उड़ा रहे हैं? उसकी हैसियत कितनी बड़ी है और मेरी हालत क्या है। क्या ऐसी परिस्थिति में भी वह मेरे यहां शिक्षा प्राप्त करने आयेगी?"

मारिमुत्ता पिल्लै को इस बात पर बड़ा संतोष हुआ कि कृष्ण भागवतर ने इन बातों को दूसरे ही रूप में ले लिया और उनपर अपना गस्सा नहीं

उतारा। अतः हिम्मत कर बोले, "नहीं जी, जैसा आप सोचते हैं, वैसी बात नहीं है। वह इस बात का दृढ़ निश्चय कर चुकी है कि अगर कुछ सीखेगी तो आप ही से। कई बार वह मुझसे यह बात कह भी चुकी है।"

"क्यों, क्या वह यह चाहती है कि उसके पास संगीत-सभाओं से कोई बुलावा नहीं आये? मेरी शिष्या बनते ही उसे गाने के लिए बुलानेवाले उसे बुलाना छोड़ देंगे। वह अपने चलते पेशे पर कुल्हाड़ी क्यों मारना चाहती है?"

"नहीं, यह बात नहीं। वह चाहती है कि संगीत की विधिवत शिक्षा पाये और अपने ज्ञान की अभिवृद्धि करे। उस लड़की की हार्दिक इच्छा मुझे भली-भांति मालूम है। वह आपकी संगीत-पद्धति के पीछे तन-मन से लगी हुई है, यह भी मैं जानता हूं। यही कारण है कि मैंने आपके सामने यह बात रखने की हिम्मत की।"

कृष्ण भागवतर की समझ में नहीं आया कि क्या उत्तर दिया जाय। उनके चेहरे पर गम्भीरता की बदली आ गई तो रंग कुछ पल के लिए फीका पड़ गया।

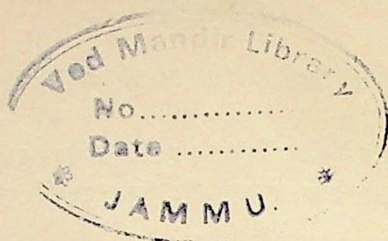
बोले, "पिल्लैजी, मेरे लिए इसी एक बात की कमी थी, जिसे आप पूरा करना चाहते हैं!"

उनकी यह बात पिल्लै के दिल में चुभ गई। कृष्ण भागवतर ने यह बात क्यों कही है, यह वह भली प्रकार से समझ गये। किसी तरह अपने को संभालकर बोले, "मेरी गुस्ताखी माफ़ करें। मैं मानता हूं कि वह कुल से गणिका है, लेकिन आजतक मैंने समझा था कि विद्या कुल, धन आदि सबसे परे है। उस लड़की के विद्या-व्यसन ने मुझे प्रोत्साहित कर बाध्य कर दिया कि आपसे ऐसी प्रार्थना करूं। विद्या की याचना करनेवाले और विद्या की सुबोध शिक्षा देनेवाले, अगर दोनों ही मन में यह विचार जमा लें कि विद्या ही बड़ी वस्तु है और उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है तो सारे भेद-भाव स्वयं ही मिट जायंगे?" इतना कहकर उन्होंने सिर झुका लिया और मौन धारण कर लिया।

पिल्लै की इन बातों ने कृष्ण भागवतर के दिल में एक प्रकार की उथल-पुथल मचा दी। थोड़ी देर वे मौन बैठे कुछ सोचते रहे। फिर बोले, "अच्छा,

अगर भगवान् की यही इच्छा है तो फिर कौन टाल सकता है ? इसपर फिर विचार करेंगे।"

मारिमुत्ता पिल्लै ने सोचा कि आज इतना ही पर्याप्त है। फिर कभी मौका हाथ लगने पर देखा जायगा। इसलिए उन्होंने बात आगे नहीं बढ़ाई।



२५

तिरुवैयारु में, जहां संत त्यागराज की समाधि है, वहां कुछ वर्षों से त्याग-ब्रह्म-उत्सव मनाया जाता था, लेकिन उत्सव मनाने के विषय में संगीतज्ञों के बीच मतभेद होने के कारण उनके दो गुट बन गये और वे दोनों अलग-अलग उत्सव मनाने लगे थे। कृष्ण भागवतर इस चीज को बिल्कुल पसन्द नहीं करते थे। त्याग-ब्रह्म का उत्सव मनाने में भी गायकों के बीच फूट हो, यह बात उनके दिल में खटकती थी। जहां लोगों को एकमत होकर काम करना चाहिए था, वहां भी मतैक्य न हो, यह कितने दुःख की बात है ? संगीत-शास्त्र के प्राण और उत्तम गुणों से संपन्न उस महान् आत्मा का उत्सव मनाने में भी गुट-बंदी ? वे इस आयोजन में भाग लेना ही नहीं चाहते थे, परन्तु बाद में कुछ सोचकर उन्होंने अपना विचार बदल दिया। गायकों की इस संकुचित मनोवृत्ति के कारण हमें अपने कर्तव्यों से विमुख नहीं होना चाहिए, यह सोचकर उन्होंने उत्सव में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया।

कृष्ण भागवतर के संगीत का जिस दल ने आयोजन किया था, उसके हर्ष का कोई ठिकाना न रहा। उन्हें अभिमान था कि उन्होंने संगीत-सम्राट् कृष्ण भागवतर को अपने दल की ओर से कार्यक्रम में भाग लेने को मना लिया है।

लेकिन जिस दिन कृष्ण भागवतर गानेवाले थे, उस दिन उन्हें जो समाचार मिला, उसने उनके उल्लास पर पानी फेर दिया। समाचार यह था कि जिस समय इनके यहां कृष्ण भागवतर गानेवाले थे, उसी समय विपक्षी दल की ओर से बालांबाल् गाने के लिए आनेवाली थी। उन्हें यह भय हुआ कि सारी जनता तो बालांबाल् का गायन सुनने चली जायगी और उनके यहां

नाममात्र के लिए ही कोई रह जायगा। इसमें जरा भी सन्देह नहीं था कि कृष्ण भागवतर का संगीत शास्त्र-सम्मत और विद्वत्ता-पूर्ण था, पर जनता बालांबाल् के गानों पर जान देती थी, पागल बनी फिरती थी। उसकी सुरीली आवाज इतनी मधुर थी कि जनता वहां खिंची चली जाती थी। अगर यहां कोई नहीं आया तो उनका बड़ा अपमान होगा और उससे भी अधिक अपमान कृष्ण भागवतर का होगा। इस आशंका ने उन्हें बड़े धर्म-संकट में डाल दिया। उनकी समझ में नहीं आया कि इस नाजुक स्थिति को कैसे संभाला जाय। किस प्रकार से कृष्ण भागवतर के सम्मान की रक्षा की जाय।

बड़े सोच-विचार के बाद उन्हें एक रास्ता सूझा। जिस समय उनका कार्यक्रम है, उस समय अपने यहां किसी तीसरे दर्जे के युवा गायक का गाना करावें तो सारी समस्या हल हो जायगी। उनका यह विचार तो अच्छा था, पर कृष्ण भागवतर से इस बात को कैसे कहा जाय, यह भी समस्या थी। बिल्ली के गले में घंटी बांधने का विचार तो ठीक था, पर उसे कौन और कैसे बांधे, यह सवाल बड़ा जटिल था। कहीं कृष्ण भागवतर बुरा न मान जायं, इस बात का भी उन्हें डर था।

आखिर उत्सव के मन्त्री बड़ी हिम्मत करके कृष्ण भागवतर के पास पहुंचे और अत्यन्त विनम्रता से बोले, "आपसे मेरी एक विनती है। क्या आपका कार्यक्रम कल के लिए स्थगित किया जा सकता है?"

कृष्ण भागवतर को सारी बात का कुछ-कुछ पता था। मंत्री की बात से उन्होंने जान लिया कि बालांबाल् के कारण ही ये लोग आज का कार्यक्रम कल के लिए बदलना चाहते हैं। एक तो उन्हें गुस्सा आया, परन्तु दूसरी ओर इस बात पर आश्चर्य भी हुआ।

जो स्त्री उनसे विद्या की याचना कर रही थी, वही आज उनकी प्रतिस्पर्द्धी होकर गानेवाली है, और ये लोग समझते हैं कि इससे मेरा बड़ा अपमान होगा! वे इस बात का निर्णय न कर सके कि क्या उत्तर दिया जाय। अतः उनकी इच्छा जानने के विचार से उन्होंने पूछा, "आज ऐसी कौन-सी बाधा आ पड़ी है, जिससे मेरा कार्यक्रम कल के लिए स्थगित करना चाहते हैं?"

"बाधा-वाधा तो कुछ नहीं। दूसरे दल में आज बड़ी चहल-पहल मची है। वहां बालांबाल् गानेवाली हैं। हमने सोचा कि इस हलचल में आपका कार्यक्रम क्यों रक्खा जाय ? कल बकुल पंचमी है। अतः कल इसे और भी अधिक महत्व से रक्खा जा सकता है।" मंत्री ने कहा।

"लेकिन यह भी तो सोचिये कि यह तो पहले ही निश्चय हो चुका है कि आज यहां मेरा कार्यक्रम होगा। मैं तैयार होकर आया हूं। ऐसी हालत में कार्यक्रम स्थगित करने की क्या आवश्यकता पड़ गई ? शायद आप डरते हैं कि लोग वहां चले गये और यहां सुननेवाला कोई न रहा तो क्या होगा ? मगर भीड़ न होने से हमारा क्या विगड़ जायगा ? कुछ भी तो नहीं। संगीत के पारखी एक-दो व्यक्ति ही रहें तो यही मेरे लिए काफी है। अतः आप इस बात की चिन्ता न कीजिये।" कृष्ण भागवतर ने कहा।

"सो तो ठीक है। पारखी लोग अवश्य यहीं आयेंगे। पर हम चाहते हैं कि आम जनता भी आपके गानामृत का पान करे।" मन्त्री ने अपने पक्ष में तर्क उपस्थित किया।

"महाशय, मैं यहां पर न तो रसिकों के लिए गा रहा हूं और न सामान्य जनता के लिए। मैंने यहां पर गाना केवल इसीलिए स्वीकार किया है कि अपने सद्गुरु त्याग-ब्रह्म के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित कर सकूं, जिस प्रकार गिलहरी ने श्री रामचन्द्र के प्रति अपना आदर प्रकट किया था। यह तो ईश्वर का संकल्प है। यदि कहीं कोई गायिका गा रही है और मेरी प्रतिस्पर्धा कर रही है तो केवल इसी कारण से मैं अपना कार्यक्रम स्थगित नहीं करना चाहता। मेरे लिए तो यही कितने अपमान का विषय है कि आप लोग आज का मेरा कार्यक्रम कल के लिए स्थगित करना चाहते हैं।" कृष्ण भागवतर ने अपनी बात पर जोर देकर कहा।

"मैंने तो आपसे अपने मन की बात कही थी, अब आगे आपकी इच्छा है।" यह कहकर मन्त्री विदा हो गये।

पूर्व-निर्णय के अनुसार उस दिन की संगीत-सभा की तैयारियां हो रही थीं। कृष्ण भागवतर के मन में उस दिन अप्रत्याशित उमंग थी।

नियत समय पर संगीत-गोष्ठी जमी। उत्सव के संचालकों ने जैसा सोचा था, वैसा नहीं हुआ। सभा-मण्डप में अच्छी खासी भीड़ इकट्ठी हुई।

संगीत के जानकार, पारखी, प्रेमी, रसिक आदि सभी कृष्ण भागवतर का संगीत सुनने आये। लेकिन ऐसे सामान्य जन, जो केवल सुरीली आवाज सुनना चाहते थे और शुद्ध शास्त्रीय संगीत से अनभिज्ञ थे, नहीं आये। वे सब बालांबाल् का गाना सुनने चले गये।

कृष्ण भागवतर सदा की तरह सिंह की भांति सभा के मध्य में मंच पर आ बैठे और गाने लगे। 'वातापि गणपति भजे' पूरा कर उन्होंने कोई राग लिया और विस्तार से आलाप आरम्भ किया। सारी सभा निस्तब्ध बैठी सुन रही थी। किसीको अपनी सुध न रही। इसी समय अचानक बाहर शोर-गुल-सा सुनाई दिया। एक बड़ी भीड़ आकर तेजी से सभा-मंडप में बैठने लगी। यह आम जनता थी, लेकिन ऐसा लगता था, मानो कोई बहुत बड़ी फौज आ गई हो। अचानक हुल्लड़ मच जाने से कृष्ण भागवतर ने बीच ही में गाना बन्द कर दिया और कोलाहल के थमने की राह देखने लगे। गीत-माधुरी में लीन रसिक-वृन्द की समझ में जब उस हलचल का कारण नहीं आया तो उन्होंने आगन्तुकों से फुसफुसाकर पूछा और वास्तविक स्थिति को समझने का प्रयत्न किया।

पूछ-ताछ करने पर जो बात मालूम हुई, वह यह थी कि प्रतिद्वन्द्वी-दल में बालांबाल् का गायन नहीं हुआ। जब इस बात का लोगों को पता लगा तो वहां जो लोग इकट्ठे हुए थे, वे सब यहां आ गये। भीड़ के आने से बाधा पड़ी, उसके थमने में थोड़ा समय लगा। इधर शोरगुल बन्द हुआ ही था कि भीड़ में फिर से सनसनी फैल गई। भीड़ को चीरते हुए मंत्री अपने साथ एक महिला को बड़े आदर से लिवा लाये। वह बालांबाल् थी।

बालांबाल् बड़ी विनम्रता से स्त्रियों के झुंड में जा बैठी। पार्श्ववादक, जो मंच पर बैठे थे, उससे अच्छी तरह परिचित थे। अतः उन्होंने उसके स्वागत में हाथ जोड़कर नमस्कार किया। बालांबाल् ही जब गाना सुनने के लिए आकर बैठ गई तो श्रोताओं के उत्साह का पार नहीं रहा।

कृष्ण भागवतर को इस बात का पता लग गया कि आगन्तुक बालांबाल् है, लेकिन यह बात उनकी समझ में नहीं आई कि वहां गायन का कार्यक्रम क्यों रुक गया और बालांबाल् गाना सुनने वहां क्यों आ गई?

वे तो पहले ही से अदम्य उत्साह और उमंग में डूबे हुए थे। अतः उस

दिन का उनका कार्यक्रम श्रेष्ठतम सिद्ध हुआ। लोग सुध-बुध भूलकर संगीत का आनन्द लूट रहे थे। कृष्ण भागवतर ने उस दिन इतना सुन्दर गाया कि समूचे उत्सव में उन्हीं का नाम शीर्ष-स्थान पर रहा। संगीत-समारोह संपन्न हुआ। मंच पर बैठे हुए रसिकों और मित्रों के मुख से कृष्ण भागवतर की प्रशंसा के झरने में बह रहे थे। इसी बीच एक गायक उनके बहुत ही निकट आकर बोले, "आपकी सेवा में एक निवेदन है।"

उनके पीछे बालांबाल् थी। गायक ने अपनी बात आगे कही, "इन्हें आप जानते हैं ? ये हैं बालांबाल् प्रसिद्ध गायिका। आपके गाने इन्हें प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं।" गायक-मित्र ने इस प्रकार बालांबाल् का परिचय कराया तो बालांबाल् ने बड़े विनय से कृष्ण भागवतर को प्रणाम किया और एक ओर को खड़ी हो गई।

"मैंने इनकी बड़ी प्रशंसा सुनी है। मारिमुत्ता पिल्लै ने मुझसे कहा था, पर आज वहां इनके गाने का कार्यक्रम था न ? उसका क्या हुआ ?" कृष्ण भागवतर ने पूछा।

बालांबाल् ने कोई उत्तर नहीं दिया। चुपचाप सिर झुकाये खड़ी रही गायक-मित्र ने उत्तर में कहा, "आप नहीं जानते, क्या बात हो गई ! असल में इन्हें इस बात का पता न था कि आज आपका यहां गायन होनेवाला है। जब इन्हें पता चला तो इन्होंने सोचा कि आपसे होड़ करके गाना इन्हें शोभा नहीं देगा। यह बात इन्हें गवारा नहीं थी, इसीलिए भरी सभा में बोलीं, "भागवतरजी वहां गा रहे हैं। मैं वहां उनका गाना सुनने जा रही हूं। आप भी सब लोग वहीं जाइये।" इतना कहकर ये मंच पर से उतरकर यहां चली आईं।"

कृष्ण भागवतर सोचने लगे—"यह स्त्री, जिसके नाम का चारों ओर बोलबाला है, इस प्रकार विनय से मेरी प्रशंसा क्यों करती है ? आखिर इस प्रशंसा के मूल में क्या बात हो सकती है ? यह उसकी प्रकृत विनय है या कोई षड़यंत्र ? अथवा यह उनसे शिक्षा-ग्रहण करने की अपनी इच्छा को कार्यान्वित करने के लिए किया जानेवाला अभिनय है ? जो हो, जब इतनी सुप्रसिद्ध गायिका भरी-सभा में इतना सब कह आई है तो इसका अर्थ यही समझना चाहिए कि विद्या के प्रति उसकी असीम आसक्ति है।" यह

सोचकर वह बोले, "लेकिन इससे बहुत से लोग निराश हो गये होंगे।"

बालांबाल् ने धीरे से उत्तर दिया, "जीहां, बहुत-से लोग निराश हुए होंगे, पर उसके लिए मैं क्या कर सकती हूं? मैं तो आपका गाना सुनने के सौभाग्य से अपने को वंचित नहीं रखना चाहती थी। उस समय मुझे दूसरों की चिन्ता ही नहीं हुई।"

"मैं क्या गाता हूं? बुजुर्गों का स्मरण कर भगवान का नाम ले लेता हूं, बस!" कृष्ण भागवतर ने कहा।

"जो हो, लेकिन मेरा विचार है कि आपका संगीत समझने तक की योग्यता मुझमें नहीं है। फिर भी मैं गाती हूं। मैं ऐसा ही गाती हूं, जैसे मोर की देखादेखी मुर्गा नाचे! आपके अनुग्रह से मेरे ज्ञान की बढ़ती हो, यही मेरी कामना है।" बालांबाल् ने कहा।

"विद्या पाने की तीव्र लालसा यदि किसी में हो तो यह उसके विद्या लाभ का द्योतक है, निशानी है। विद्या-अर्जन एक महान् तप है। उसे ठीक तरह से कोई करे तो सिद्धि स्वयं उसके पास चली आती है।" कृष्ण भागवतर ने सहज भाव से कहा।

बालांबाल् उनसे विदा लेकर चली गई और कृष्ण भागवतर उठकर अपने निवास पर चले आये।

२६

दूसरे दिन सबेरे कृष्ण भागवतर स्नान-सन्ध्या आदि से छुट्टी पाकर पूजा करने बैठे थे। दीपाराधना पूर्ण करके अपने नित्य के नियम के अनुसार कोई भजन गा रहे थे। उसी समय बालांबाल् और एक गायक वहां पर आये। कृष्ण भागवतर ने उन्हें इशारे से बैठने को कहा और अपना गायन जारी रक्खा। दोनों बैठ गये। भजन समाप्त कर कृष्ण भागवतर ने पूजा की थाली में भगवान् के प्रसाद में रक्खे हुए केलों में से निकालकर एक-एक उन दोनों को दिया।

"यह ईश्वर का प्रसाद है।" कहकर बालांबाल् ने बड़े भक्ति-भाव से लिया।

"इसलिए इसे सादर ग्रहण करना चाहिए।" कहकर उन्होंने बात आगे बढ़ाई, "पूजा के अन्त में मेरा भजन गाने का नियम है। मैंने उसे पूरा कर लिया है। अब तुम भी गा सकती हो। अभी तक तुम्हारा गाना सुनने को मुझे अवसर ही नहीं मिला है।"

"मुझे गाने में कोई आपत्ति नहीं है, बशर्ते कि मेरे बेसुरे गाने की त्रुटियों को आप क्षमा करें।" कहकर बालांबाल् ने गाना आरम्भ किया।

इधर उसने तान छेड़ी और उधर कृष्ण भागवतर विमुग्ध हो गए। उसके मधुर कण्ठ में जो अद्भुत आकर्षण था, उससे उन्हें रोमांच हो आया। "वाह, कैसा सुरीला कण्ठ है इसका! गन्धर्वों का कण्ठ भी इतना मधुर न रहा होगा।" यह सोचकर कृष्ण भागवतर चकित हो रहे थे। कहते हैं, जहां सौन्दर्य-सुषमा और माधुर्य-मधुरिमा का निवास होता है, वहां दैव का सान्निध्य होता है। अगर यह बात सच है तो उनके दिल में आया कि इसकी भी आवाज में देवी का नित्य निवास होगा। अब उन्हें इस गुर का

भी पता लगा कि लोग बहुत बड़ी संख्या में उसका गाना सुनने क्यों इकट्ठे होते हैं। इसके साथ ही उनके दिल में यह बात भी आई कि अगर इस कोकिला को संगीत का पूर्ण ज्ञान होता तो कितना अच्छा होता।

बालांबाल् ने अपना गाना पूरा कर कृष्ण भागवतर की ओर देखा। कृष्ण भागवतर मानो सोते-से जागे। बोले, "वाह, कितना अच्छा स्वर है! भगवान् का यह प्रसाद भगवान् ही को समर्पित है!"

"स्वर अच्छा हुआ तो क्या? लेकिन इसमें विद्वत्ता कहां है?" बालांबाल् ने पूछा।

"विद्वत्ता साधना से प्राप्त की जा सकती है। लेकिन शारीरिक सम्पदा (सुकण्ठ रूपी धन) तो पूर्व जन्म के कर्मों का फल है। वह आसानी से हाथ नहीं लगती।" कृष्ण भागवतर ने कहा।

"तो क्या विद्या आसानी से हाथ लग जाने वाली चीज है? संगीत भी तो अनुग्रह-विद्या है। वह भी पूर्वजन्मों के पुण्यों से हाथ लगती है!" बालांबाल् ने कहा।

"हां, यह सच है! जो हो, सबके लिए ईश्वर की कृपा होनी जरूरी है।" कृष्ण भागवतर ने कहा।

"ईश्वर ने तो अनुग्रह किया है, अब तो केवल गुरु महाराज की कृपा शेष रह गई है। वे आंखें खोल दें..."

"क्या कहा?" कृष्ण भागवतर ने विस्मित होकर पूछा।

"यही कि मैं बहुत दिनों से एकलव्य की तरह आप ही को अपना गुरु मानती आई हूं। ईश्वर की कृपा ने मुझे यहां तक पहुंचा दिया है। अब आप मुझपर कृपा करें और गान-विद्या सिखाएं। अपनी अनुकम्पा से मुझे ज्ञान प्रदान करें।" बालांबाल् ने विनम्र स्वर में प्रार्थना की।

कृष्ण भागवतर कुछ क्षण के लिए मौन रहे। उन्हें लगा, अगर इस समय मैं इसे इन्कार कर दूं और कह दूं कि यह काम मुझसे नहीं हो सकेगा तो यह उसे उस स्वत्व से वंचित करना हो जायगा, जो न्याय-पूर्वक उसे मिलना ही चाहिए। साथ ही यह विचार भी उनके मन में आया कि किसी में विद्योपार्जन की लगन और उसके योग्य क्षमता हो तो उसे इस अधिकार को देने से बचना नहीं चाहिए।

अतः अपना गला साफ करके वह बोले, "अच्छा, मान लो कि मैं तुम्हें सिखाने को तैयार हूं और तुम भी मुझसे सीखने को प्रस्तुत हो, लेकिन एक बड़ी दिक्कत है कि अबतक तुमने जो कुछ सीखा है, उसे तुम्हें भूल जाना होगा। अगर मुझसे कुछ सीखना चाहती हो तो ऐसा करना जरूरी होगा।"

बालांबाल् ने तत्काल उत्तर दिया, "मैं जानती ही क्या हूं, जिसे भूल जाऊं ? मैं तो संगीत आरम्भ से शुरू करना चाहती हूं। मेरी तो इतनी ही प्रार्थना है कि आप गुरु बनकर मुझे शुरू से सिखायें !"

"तुम प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी हो। लाखों लोगों के बीच तुमने गाना सुनाया है। तुम्हारी अपनी एक अलग पद्धति है। उसे छोड़कर मुझसे नये सिरे से शुरू करना चाहती हो, लेकिन इससे तुम न इधर की रहोगी, न उधर की। कहावत है—धोबी का कुत्ता, घर का न घाट का ! अतः पहले अच्छी तरह से सोच लो।" कृष्ण भागवतर ने कहा।

"आप सच कहते हैं। आखिर भगवान भी तो हैं ! इसलिए मेरा अटल विश्वास है कि आप जैसी आशंका कर रहे हैं, वैसा कुछ नहीं होगा। मुझे भगवान पर पूर्ण विश्वास है और आप पर उससे भी अधिक है। इसके अलावा सबसे ऊपर मुझमें आत्म-विश्वास है। अतः आप जैसा सोचते हैं वैसा नहीं होगा। आप निश्चिन्त होकर मुझे अपनी शिष्या के रूप में ग्रहण कर लीजिये।" बालांबाल् की इन बातों से उसका आत्म-विश्वास झलक रहा था।

उसके मुख से ऐसी बातें सुनकर कृष्ण भागवतर आनन्द-विभोर हो गये। वाह, संगीत के प्रति इसकी कैसी लगन है ! संगीत सीखने की कितनी उत्कट लालसा है और कैसी श्रद्धा-भक्ति है ! उसके लिए कितना महान त्याग करने को तत्पर हो गई है। धन्य हो संगीत-सरस्वती !

कृष्ण भागवतर ने सोचा कि संगीत की उत्तम विद्या पाने के लिए इससे अधिक उपयुक्त पात्र शायद ही कोई मिलेगा।

वह बोले, "भगवान की जो इच्छा है, वही होगा। लो, यह पुष्प लो। भगवान की प्रार्थना कर भगवान को चढ़ाओ और यहां आकर बैठो !"

बालांबाल् के नेत्रों में आनन्द का सागर उमड़ रहा था। उसके हृदय से भक्ति का प्रवाह फूट निकला। उसने फूल हाथ में लेकर बड़ी श्रद्धा से

भगवान के चरणों में अर्पित किया। फिर भगवान के प्रतिनिधि-स्वरूप जो कृष्ण भागवतर बैठे हुए थे, उनके चरणों में सिर नवाया।

कृष्ण भागवतर ने पहली स्वरावली गाई। बालांबाल् ने उसे दुहराया। उस समय अन्तर्यामी भगवान प्रतिमा के अन्दर से ब्रह्मानन्द स्वरूपी संगीत का आनन्द ले रहे थे।

२७

बालांबाल् कुम्भकोणम् छोड़कर तंजाऊर ही में एक घर लेकर रहने लगी। कभी कृष्ण भागवतर के यहां आकर गाना सीख जाती थी और कभी अपनी कमानीदार गाड़ी भेजकर उन्हें अपने घर बुला लेती थी। बालांबाल् कभी कृष्ण भागवतर के घर देर तक ठहरती तो कृष्ण भागवतर भी कभी अधिक समय तक उसके यहां ठहर जाते। इस बात ने शहर में बड़ा तहलका मचा दिया और भली-बुरी बातें फैलने लगीं!

ऐसे भी कुछ गायक थे, जो कृष्ण भागवतर से बुरी तरह से जलते थे। उनकी संगीत-विद्या उन्हें फूटी आंख भी नहीं सुहाती थी। उनसे कृष्ण भागवतर में योग्यता अधिक थी, श्रेष्ठ गुण थे और धन के प्रति तो तनिक भी उनकी आसक्ति नहीं थी। इन कारणों से वे लोग उनके पास तक नहीं फटकने पाते थे। दूर-ही-दूर रहते थे। उन लोगों के मन में यह विचार अच्छी तरह से घर कर गया था कि हममें और कृष्ण भागवतर में आकाश-पाताल का अन्तर है और सिर चोटी का पसीना बहाकर भी हम उनके पास नहीं पहुंच सकते। सूरज के सामने जुगनू की चमक कहीं दिखाई देती है। उन लोगों की भी ऐसी ही स्थिति थी। बेचारे न तो अपनी डींग ही मार सकते थे और न अपना गौरव ही बढ़ा सकते थे। कृष्ण भागवतर उनके रास्ते के रोड़े बने थे। उनकी ईर्ष्या का यही कारण था। कृष्ण भागवतर पर कीचड़ उछालने और उन्हें नीचा दिखाने का एक अच्छा मौका उस समय उनके हाथ लग गया था।

इस काम में इन लोगों का हाथ बंटाने के लिए कुछ नौसिखिए गायक भी उनसे आ मिले। उनमें से कुछ ऐसे थे, जिन्होंने किसी समय कृष्ण भागवतर से संगीत की शिक्षा पाने का प्रयत्न किया था, लेकिन अपने

प्रयत्न में सफल नहीं हो सके थे। इसी निराशा ने उन्हें अब उभार दिया था। बालांबाल् को कृष्ण भागवतर पर अपनी मोहिनी चलाकर उनकी शिष्या बनने के प्रयत्न में सफल होते देखकर उनके क्रोध की सीमा नहीं रही थी।

यह बात उनके दिल में पैठ गई थी कि कृष्ण भागवतर के सम्बन्ध में हमने जो धारणा बना रक्खी थी वह गलत थी। उनके चरित्र का जो काल्पनिक महल हमने खड़ा किया था, वह बालू का था। उसमें कोई भी सार नहीं था।

साधारणतया जगत की रीति भी तो यही है कि जहां किसी स्त्री-पुरुष को आपस में मिलते या व्यवहार करते देखा तो फौरन ही वहां पर विषय-वासना के सम्बन्धों की कल्पना कर ली जाती है। अतः ये दोनों भी उस प्रलाप से न बच सके। ऐसे लोग स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध में कोई अच्छा ऊंचा विचार ही नहीं रख सकते। अतः कृष्ण भागवतर के सम्बन्ध में ऐसी बुरी खबरें फैलाई गईं, जो उनके चरित्र और उनकी कीर्ति पर बट्टा लगाने के लिए काफी थीं।

कृष्ण भागवतर इन सारी बातों को न जानते हों, ऐसी बात नहीं थी। लेकिन उन्होंने इन बातों पर अधिक ध्यान नहीं दिया। कन्दस्वामी भागवतर को जब ये बातें मालूम हुईं तो उनके हृदय को बड़ी चोट लगी। उनके दिल में इस बात का बड़ा सदमा पहुंचा कि वे कृष्ण भागवतर, जो संसार की दृष्टि में गुणों की खान थे, बहुत ऊंचे उठे थे, अब इस तरह से बदनामी के गड्ढे में जा पड़े हैं। अपने नाम पर क्यों अपने-आप बट्टा लगा रहे हैं!

उन्होंने सोचा कि वह व्यर्थ की बला मोल ले रहे हैं। अगर इस काम से अपने को मुक्त कर लें तो कौन-सा बड़ा नुकसान हो जायगा। अपने दिल की यह बात उन्होंने कृष्ण भागवतर से कही—"किट्टु, तुमने बहुत-से अच्छे लड़कों को गाना सिखाने से इन्कार कर दिया था, पर देखो, तुम्हारे भाग्य में क्या लिखा था? आज तुम्हें एक गणिका को सिखाना पड़ गया है!" यह कहते हुए वह दिल में बहुत दुःखी हो रहे थे।

"मामा, मैं मानता हूं कि वह जाति से वेश्या है। आप पूछते हैं कि मैंने बहुतों को क्यों इन्कार कर दिया और इसे सिखाना क्यों स्वीकार कर

लिया ? इसमें जो भक्ति, लगन और त्याग-बुद्धि है, वही यदि दूसरों में मुझे मिल जाती तो मैं क्यों इन्कार कर देता ? इसके अतिरिक्त ये सभी बातें भाग्य से प्राप्त होती हैं। अब किसे क्या दोष दिया जाय ? मारिमुत्तु पिल्लै ने मुझसे जब ये बातें कहीं तो मैंने भी यही सोचा था, जैसा आपने सोचा है। मैंने उनसे इन्कार कर दिया था। लेकिन वही काम आज कर रहा हूं। इसके लिए मेरी अन्तरात्मा मुझे दोष नहीं देती। दुनिया जो चाहे कहे, उससे मेरा कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है। परमात्मा और अन्तरात्मा की आज्ञा की जबतक अवहेलना नहीं होती तबतक मन की शान्ति भी भंग नहीं होती है।" कृष्ण भागवतर ने दृढ़तापूर्वक कहा।

कन्दस्वामी भागवतर ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। ऐसी बातों में कोई क्या जोर दे सकता था ?

एक दिन कन्दस्वामी भागवतर अपने घर से कृष्ण भागवतर के घर की ओर जा रहे थे। अय्यास्वामी शास्त्री अपने घर की बाहरी बैठक में बैठे पान खा रहे थे। उन्हें मालूम था कि कन्दस्वामी भागवतर किट्टु ही के घर जाते होंगे। उन्होंने उनको बुलाया।

अय्यास्वामी शास्त्री की जीविका पुरोहिताई से चलती थी। बड़े बात बनानेवाले थे। बड़े कंजूस थे। पैसे को दांतों से पकड़ते थे। रुपये कमाने के विषय में वे कृत्याकृत्य कुछ न देखते थे। वेदांत बघारने और दूसरों के गुण-दोषों की चर्चा करने में भी वह जरा नहीं हिचकते थे। उनके घर का बाहरी चबूतरा तो एकदम गपोड़ों का ही अड्डा था। वहीं पर कृष्ण भागवतर के चरित्र पर आलोचना-प्रत्यालोचना खूब जोर-शोर से होती थी।

कन्दस्वामी भागवतर शास्त्री का बुलावा नहीं टाल सके। पर साथ ही वह उनसे अधिक बात करना भी नहीं चाहते थे। अतः बोले, "मैं कुछ जल्दी में हूं। कोई खास बात है क्या ?"

"खास बात तो कुछ नहीं है, पर ऐसी जल्दी आपको क्या है ? आप अपने मित्र से ही तो मिलने जा रहे हैं। लेकिन वे तो इस समय घर पर नहीं हैं। आजकल घर पर कैसे मिल सकते हैं ? पहले तो गान-लोलुप थे, अब कामिनी-लोलुप हो गये हैं। गाने के पीछे मरनेवाले अब कामिनी के पीछे मरते हैं !" अय्यास्वामी शास्त्री ने चुटकी ली।

उनकी यह बात सुनकर सामने खड़े अन्य मित्र हंस पड़े। कन्दस्वामी भागवतर की देह में आग लग गई। जिसमें नाममात्र को भी मनुष्यता नहीं है, उसे कृष्ण भागवतर के चरित्र पर कीचड़ उछालने का क्या अधिकार है? कृष्ण भागवतर पर उनकी अपनी राय जो भी हो, इस मनुष्य के मुख से उनका अपमान होना उन्हें तनिक भी नहीं सुहाया। अतः बड़ी तेजी से अय्यास्वामी शास्त्री के सामने आ बैठे और बोले, "महाशय, आप अपने अनुभवों के माप-दंड से कृष्ण भागवतर को मापने का प्रयत्न करते हैं। लेकिन जैसा आप समझते हैं, कृष्ण भागवतर चरित्र से नहीं गिरे हैं, गिरेंगे भी नहीं। पीलिया के रोगी को जहां देखो, वहां पीला ही रंग दिखाई देता है। आप दिल के काले हैं, इसलिए दूसरों पर कालिख पोतने की कोशिश करते हैं।"

यह सुनकर अय्यास्वामी शास्त्री सकपका गये। उन्हें इस बात की आशा नहीं थी कि कन्दस्वामी भागवतर उनपर इस प्रकार सीधा आक्रमण कर देंगे। अपने को संभालकर जरा रोष से ऊंचे स्वर में बोले, "हम अपने को तो बड़ा नादयोगी नहीं कहते फिरते। साधारण मनुष्यों में जो-जो गुण-दोष हो सकते हैं, वे सब हममें भी मौजूद हैं। लेकिन हमें यही बात गवारा नहीं है कि संगीत के लिए अपना जीवन होमने वाले कृष्ण भागवतर इस तरह पाप के गड्ढे में गिरें। वह संगीत की बड़ी परंपरा में आये हैं, संत त्यागराज के संगीत के वारिस हैं। अब जाकर एक वेश्या का आंचल पकड़ते फिरें तो यह उस परंपरा का बड़ा अपमान है, इससे गांव शहर और देश का बड़ा अपमान होता है। यह आप क्यों नहीं समझते हैं?"

उसी समय कृष्ण भागवतर अपने घर को लौट रहे थे। उनके कानों में ये बातें पड़ीं। मुड़कर देखा तो कन्दस्वामी भागवतर काठ मारे-से खड़े थे। उनके चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं। कृष्ण भागवतर उलटे पैरों उन लोगों के निकट आये। उन्हें सामने देखकर उन लोगों ने बोलना बन्द कर दिया और गुमसुम खड़े रहे। हरएक बड़े धर्म-संकट में पड़ गया। किसी की जबान खोलने की हिम्मत नहीं हुई।

कृष्ण भागवतर ने उन्हें मौन देखकर कहा, "आप लोगों की बातों का

केन्द्र मैं ही था न ?"

कन्दस्वामी भागवतर का मन बहुत घायल हो गया था। वह तड़प उठे और बोले, "बस, किट्टु, बस, हद हो गई। मेरी बात सुनो ! अब उसे संगीत सिखाना बंद कर दो। ये अधम लोग जबान की ऐसी कैंची चलाते हैं कि मेरा दिल टूक-टूक हो जाता है।"

कृष्ण भागवतर ने अय्यास्वामी शास्त्री की ओर देखकर पूछा, "शास्त्री-जी, आप बताइये, इसमें क्या बुराई है ?"

अय्यास्वामी शास्त्री ने कहा, "ऐसी कोई बात नहीं, जो आप जानते नहीं हैं। आपकी परंपरा क्या है और आपकी योग्यता क्या है, यह भी आपको मालूम है, लेकिन इन दिनों जो कृपा कर रहे हैं, वह आपको ही नहीं, आपकी परंपरा, आपकी विद्या, आपके नाम-धाम, सबको अपयश के गर्त में ढकेल देगी और इतना बदनाम करेगी कि..."

"शास्त्रीजी, आप हमारी परंपरा, हमारी विद्या और हमारे कुल को घसीटना छोड़कर अब अपनी ही बात कीजिए। वही काफी है। आपको इसी बात की आपत्ति है न कि वह कुल से वेश्या है, पर गुण से नहीं। वह संगीत पर अपनी जान देती है। पैसे या गहने-कपड़े पर नहीं। आजकल सच पूछिये तो कुलीन स्त्रियां ही वेश्याओं की तरह गहने-कपड़े और रुपये-पैसे के लिए मरती हैं, उनपर प्राण देती हैं। वह दिल से जितनी पक्की है, उतनी पक्की अगर कुलीन स्त्रियां हों तो समाज का गौरव उच्च शिखर पर पहुंच जाय। अच्छा, जाने दीजिये यह बात। अभी दो महीने पहले श्रीशंकर-जयंती मनाने के लिए आप उससे सौ रुपये मांग कर लाये थे न ? यह किस शास्त्र में लिखा है कि वेश्या की कमाई से श्री शंकरभगवद् पाद की आराधना करो ? ऐसी पूजा से क्या वे प्रसन्न होंगे ? उन्हें भी दोषी बनाने के पाप में आप क्यों पड़े हैं ?" कृष्ण भागवतर ने एक साथ इतने प्रश्न कर डाले।

अय्यास्वामी शास्त्री के मन में इस बात का विचार ही नहीं आया था कि स्वयं उनको भी शिकार होना पड़ेगा। वे चकित खड़े रहे।

"शास्त्रीजी, आप तो हम जैसों के लिए मोक्ष-द्वार की कुंजी हाथ में लिए फिरते हैं। लेकिन एक पैसे की सुंघनी के लिए आप बड़े-से-बड़े पाप

करने में जरा भी नहीं हिचकते। जो सच्चा ब्राह्मण है, उसको दो-तीन दिन का भोजन एक साथ इकट्ठा करने का कोई अधिकार नहीं है। सच पूछिये तो कल की चिन्ता ही उसे नहीं होनी चाहिए। पर आप तो पैसे के पीछे मारे-मारे फिरते हैं। इस तरह द्वार पर बैठकर आने-जानेवालों से वेदांत मत झाड़िये। अपने काम-से-काम रखिये!"

इतना कहकर कृष्ण भागवतर वहां से बड़ी फुर्ती से चल पड़े। आज-तक किसीने कृष्ण भागवतर को इतनी जोर से गरजते नहीं सुना था। अतः सब चकित रह गये। हिलने-डुलने की किसी को सुध नहीं रही।

कन्दस्वामी भागवतर भी वहां से नहीं हटे। उन्हें इस बात का बड़ा हर्ष हो रहा था कि कृष्ण भागवतर ने इन लोगों को आड़े हाथों लिया। बोले, "शास्त्रीजी, मेरी भी एक बात सुनिये। भगवान शंकर ने हलाहल विष-पान किया था। लेकिन वह विष उनका क्या बिगाड़ पाया था? कुछ भी नहीं। उसी प्रकार अगर दुनिया में आप जैसे लोग, दूसरों को परेशान करने के लिए पैदा हो जायं तो दूसरे क्या अपना काम छोड़ देंगे? अपनी हिम्मत तोड़ देंगे? सच मानिये, कृष्ण भागवतर हम-आप जैसे साधारण मनुष्य नहीं हैं। इस सब बातों से उनपर जरा भी आंच नहीं आयगी। बुराइयों से बचकर चलने की उनमें बड़ी सामर्थ्य है। अतः आप उसकी चिन्ता न करें और अपनी जबान को उन्मुक्त करके अपने मुख से ऐसी अश्लील बातें न कहें तो अच्छा होगा। वही उनके प्रति आपकी सद्भावना भी होगी!"

इतना कहकर वह भी वहां से चल पड़े। इस प्रसंग के बाद से कोई कृष्ण भागवतर पर प्रकट रूप से कीचड़ उछालने की हिम्मत नहीं कर पाता था।

२८

इस नये रिश्ते को देखकर नीलांबाल के दिल में विपरीत भावनायें काम कर रही थीं, इसलिए अबतक वह किसी निर्णय पर नहीं पहुंच पाई थी और बड़ी द्विविधा में पड़ी थी। नीलांबाल् के मिलनसार स्वभाव, गुण और विनय ने बालांबाल के दिल पर अपना असर छोड़ रक्खा था। वास्तव में बालांबाल् में आकर्षण-शक्ति थी, वह स्वभाव से केवल दुनियादार ही नहीं थी, बल्कि मनुष्यों के मन का अध्ययन कर उन्हें अपना बनाना भी जानती थी और अपने अनुकूल आचरण से उनका दिल बहलाने की अपार सामर्थ्य रखती थी।

वह जब कभी नीलांबाल् से मिलती, बड़े प्रेम से मिलती थी और आदरपूर्ण व्यवहार करती थी। अनुमान से उसको उसकी जरूरत की चीजों का पता लगाकर ला देती थी। बालांबाल् के इस स्नेह-व्यवहार ने नीला को मोहित कर लिया था। नीला को अबतक किसीका भी ऐसा प्रेम प्राप्त नहीं हुआ था। इस प्रेम और स्नेह के कारण वह भी उससे प्रेम करने लगी थी। इस प्रकार दोनों में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया था। वह बार-बार कृष्ण भागवतर से कहती, "उसका कुल चाहे कुछ भी हो, वह तो खरा सोना है। ऐसी गुणवती स्त्री ढूंढ़े नहीं मिलती।" इस बात से कृष्ण भागवतर को बड़ा आश्चर्य होता कि इस बालांबाल ने आखिर उसपर क्या जादू कर दिया है, जो नीलांबाल् भी उसकी इतनी प्रशंसा करती है।

लेकिन यह सारी सद्भावना उस समय बदल जाती जब कोई आकर नीला से यह पूछ बैठता कि यह क्या बात है, जो तुम्हारा पति एक वेश्या के पीछे फिर रहा है। उस समय बालांबाल् के प्रति उसका सारा प्रम काफूर हो जाता। वह उस समय घृणा से मुंह सिकोड़कर सोचती, "मेरे पति के गौरव

पर धब्बा लगाने के लिए यह वेश्या की बच्ची कहां से आ टपकी है !"

यद्यपि उसे अपने पति की बातों और सिद्धांतों पर विश्वास नहीं था, फिर भी वह जानती थी कि वे सुयोग्य हैं, विद्वान् हैं और लोगों के विशेष आदर के पात्र हैं। दूसरों के मुंह से जब बालांबाल् और उनके प्रति अपशब्द सुनती तो वह दिल में तड़प उठती थी। उसे आशंका होती कि इस घर को बरबाद करके ही अब यह दम लेगी।

इस प्रकार उसके मन की दशा सांप-छछूंदर की-सी हो गई थी। कृष्ण भागवतर उसकी इस मनोदशा से भलीभांति परिचित थे। पर उससे कुछ कहते नहीं थे। सारी बातें अपने दिल में ही रखते थे।

उस दिन सुबह के कोई नौ बजे होंगे। कृष्ण भागवतर घर में लेटे हुए थे। उनके दिल में दर्द हो रहा था। इधर कुछ दिनों से वह पहले की तरह नहीं गा सकते थे। अधिक देर गाते या ऊंचा स्वर उठाते तो उनके दिल में दर्द होने लगता था। कभी किसी संगीत-सभा के कार्यक्रम में भाग लेकर लौटते तो अगले दिन उनके हृदय में बड़ी पीड़ा होती। गाने से ही यह कष्ट होता हो, ऐसी बात नहीं थी, बिना गाये भी कभी-कभी दर्द हो जाता था। न जाने उन्हें यह हृदय-रोग कैसे हो गया था। अतः चिकित्सकों का कहना था कि अब उन्हें अधिक गाना नहीं चाहिए, आराम करना चाहिए।

पर कृष्ण भागवतर इन बातों की कोई परवा नहीं करते थे। अपनी आदत के अनुसार जब कभी मन होता, गाते ही रहते थे। हृदय का यह रोग भी अपना काम करता रहा। जब कभी हृदय-पीड़ा होने लगती तब तेल की मालिश करके सेंकने से उन्हें आराम मिल जाता था और पीड़ा भी कुछ कम हो जाती थी।

एक दिन कृष्ण भागवतर खाट पर लेटे थे। नीला कुछ दूर हटकर एक-दूसरे कोने में बैठी चक्की पर आटा पीस रही थी। इसी समय बालांबाल् आई। कृष्ण भागवतर ने 'आओ' कहकर उसका स्वागत किया। नीला ने भी बड़े आदर से, "आओ, बहन," कहकर बुलाया। उस समय उसके मन में बालांबाल् के प्रति प्रेम-भाव ही भरा था।

"क्यों फिर से दर्द होने लग गया क्या ?" बालांबाल् ने पूछा। कृष्ण भागवतर के खाट पर लेटे रहने का इसके सिवा और कोई कारण नहीं हो

सकता—यह वह अच्छी तरह से जानती थी।

"यों ही हल्का-सा दर्द हो रहा है। कोई बात नहीं है।" कृष्ण भागवतर ने उत्तर दिया।

"दवा खाने को कहो तो आप खाते नहीं। न गाने को कहो तो मानते नहीं। अब दर्द न होगा तो और क्या होगा? स्वयं सावधानी नहीं रखते। दूसरों की बात मानते नहीं, तब कोई क्या कर सकता है? कष्ट ही भोगना है तो भोगिए।" नीला ने कहा।

कृष्ण भागवतर ने उसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया।

"आप नियमित रूप से दवा का सेवन क्यों नहीं करते?" बालांबाल् ने पूछा।

"सेवन करता रहा हूं।" कृष्ण भागवतर ने उत्तर दिया।

"दवा का सेवन करनेमात्र से क्या होता है? जब गाने से अपने को रोकें तभी फायदा हो सकता है। पर ये सुनते कहां हैं? गाने बैठ गए तो बस, ऐसा गाते हैं, मानो कोई नौसिखिया जीतोड़ अभ्यास कर रहा हो। इसीसे स्वास्थ्य खराब होता है!" नीलांबाल् ने कहा।

बालांबाल् बड़े सोच में पड़ गई। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि ऐसे महान् संगीतज्ञ को ऐसी बीमारी क्यों लग गई? क्या संगीत-देवी उसे यही वरदान देना चाहती हैं?

वह बोली, "यह भी कितनी विचित्र बात है! संगीत न जाने क्या-क्या मांगता है! पहले अभ्यास और साधना, पीछे योग्यता, उसके बाद भक्ति, फिर अनुग्रह—इन सबको सीढ़ी-दर-सीढ़ी तय करके कोई विद्वान् या उस्ताद बन जाय और सुन्दर गाने लगे तो यह संगीत उसकी देह ही को खाने लग जाता है। लाखों लोग उसकी गान-माधुरी का आनन्द लूटते हैं तब भी यह उसका पीछा नहीं छोड़ता। संगीतज्ञ को तो तब सफलता हाथ लगती है, जब वह अपनी काया का सार निचोड़कर लोगों को अर्पित कर देता है।"

बालांबाल् के मुख से ऐसी बातें सुनकर कृष्ण भागवतर प्रफुल्लित हो गये। बोले, "वाह, धन्य है तुम्हारी यह कल्पना! संगीत इस सृष्टि की एक कला है। सृष्टि का वैचित्र्य भी देखो, चाहे वह कोई भी रचना क्यों न

हो, वेदनाजन्य ही होती है। पर वही वेदना कला की सृष्टि में आनन्द का रूप धारण कर लेती है...ओहो, मैं भूल ही गया! कहो, कल उनका गाना कैसा रहा?"

पिछली शाम को एक प्रसिद्ध गायक का कहीं कार्यक्रम था। उसमें कृष्ण भागवतर नहीं जा पाये थे। पर बालांबाल् गई थी। कृष्ण भागवतर ने सोचा था कि उसके आने पर उनके गायन के बारे में पूछेंगे कि उन्होंने क्या-क्या गाया था और कैसा गाया था। पर बात का रुख बदल गया तो वह यह पूछना ही भूल गये। संगीत पर बातें होने लगीं तो वह बात उन्हें याद आ गई।

"छिः, वह भी कोई गाना था। स्वर कहीं इस तरह तोड़े-मरोड़े जाते हैं? गमक अर्थहीन थे। जहां चाहें रुक जायं और जो जी में आये, गाने लगें तो गाना कैसा रहेगा? स्वर गाते हुए भी कोई इस प्रकार से काटता-छांटता है?" बालांबाल् ने अपनी बातों द्वारा अतृप्ति प्रकट की।

"बेचारे क्या करें? संगीत तो एक महान सागर है। उसमें अच्छी-बुरी सभी चीजें आकर मिलेंगी ही। अच्छा, यह बताओ कि विशेष रूप से उसने क्या-क्या गाया था?" कृष्ण भागवतर ने पूछा।

"राग नाट्टै।"

"'नाट्टै' गाया था?" कृष्ण भागवतर ने उत्साह से पूछा। वह उनके विशेष प्रिय रागों में से एक था। सच पूछा जाय तो उन्हींके हाथों संवर कर नाट्टै राग का नाम और महत्व बढ़-चढ़कर शिखर पर पहुंच गया था। नाट्टै उनके लिए प्यार से पले लाड़ले बेटे के समान था। उस राग के प्रति उन्हें अपार मोह था। इस राग के सम्बन्ध में इतना उत्साह दिखाने का यही कारण था। वह यह जानना चाहते थे कि उक्त गायक ने उस राग को कैसे गाया था?

बालांबालू बोली, "आप भी क्या पूछते हैं? उनके दिल में तो यही विचार था कि वह नाट्टै गा रहे हैं! पर वह नाट्टै था कहां? राग न जाने कहां छिप गया था! नाट्टै का स्वरूप तो कहीं भी गोचर नहीं हुआ। शायद उनसे वह कोसों दूर भागता था। नाट्टै तो असल में हमारा ही राग है!"

उसका 'हमारा' कहने का मतलब था कि वह कृष्ण भागवतर द्वारा

गाये जानेवाले नाट्टै की ओर इशारा कर रही थी। इसलिए उससे उसका भी कुछ अपनत्व हो चला था।

"वाह, नाट्टै का ऋषभ कैसा गंभीर और कितना उन्नत है! हाथी जैसे स्वर को भीगी बिल्ली बना दें तो राग कहां से प्रकट होगा? 'प प नि प प म री' इस प्रकार ऋषभ में आकर रुकता है तो कितना सुन्दर लगता है!" कहते हुए कृष्ण भागवतर ने गाना शुरू कर दिया।

"बस-बस, बातों तक ही सीमित रहिये, गाने मत लग जाइये!" नीलांबाल् ने उन्हें सावधान किया। लेकिन कृष्ण भागवतर ने उसकी बातों पर ध्यान नहीं दिया और नाट्टै राग के उतार-चढ़ावों को दिखाते हुए दो-तीन बार स्वर-लहरियां बिखेर कर बोले, "नाट्टै तो यही है।"

बालांबाल् निश्चल होकर मन्त्र-मुग्ध-सी सुनती रही। फिर बोली, "नाट्टै राग को बार-बार सुनने पर भी दिल ऊबता नहीं, अघाता नहीं है। न जाने, इसमें कौनसी सम्मोहन-शक्ति भरी हुई है।"

"हां, यह बड़ा उत्तम राग है। यह राग भगवान् शंकर को बहुत ही प्रिय है। नाट्टै राग की खूबियां कोई समझने लग गया तो समझना चाहिए कि वह अथाह संगीत-सागर का पार पा गया है।" कहकर कृष्ण भागवतर बोले, "तानपूरा ले आओ।"

बालांबाल् ने तानपूरा लाकर उनके सामने रक्खा तो नीलांबाल् समझ गई, अब पूरी तरह से संगीत आरम्भ होने का क्रम बंध रहा है। उसने टोका, "नहीं-नहीं, भगवान के लिए बंद कीजिये अपना गाना!"

"सुनो, अपना आंटा पीसना बंद करो। मेरे तानपूरे के ही स्वर काफी हैं। स्वर भरने के लिए चक्की की कोई जरूरत नहीं है!" कृष्ण भागवतर ने उत्तर में उसे टोका।

नीला के मुख पर अतृप्ति की रेखा खिंच आई। लेकिन उसने चक्की चलाना बंद नहीं किया वरन् और जोर से चलाना शुरू कर दिया।

"अगर आपको तकलीफ हो तो मत गाइये।" बालांबाल् ने भी कहा।

"जुकाम होने पर भी तो हम सांस लेते ही हैं। वह अपना काम करता रहे और हम अपना काम करें। संसार में दुःख-तकलीफ से कोई काम थोड़े ही रुक जाता है?" कहकर उन्होंने नाट्टै राग का आलाप शुरू कर दिया।

उनके कंठ से जो निर्झर फूट रहा था, उसे संगीत कहा जाय या राग-मात्र ? लेकिन नहीं, वह तो साक्षात् परमेश्वर के दिव्य रूप को राग-बद्ध कर चित्रित करनेवाला नाद-चित्र था ! स्वर प्रस्तार और नाद-विन्यास में वह डूब गये। उतार-चढ़ाव के ऐसे ताने-बाने बुन रहे थे कि मन-चक्षुओं के सामने सुन्दर चित्रपट ही तैयार हो गया था। रागालाप इस प्रकार बढ़ रहा था, मानो अनादि अनन्त परब्रह्म की याद दिला रहा हो। वाह, यह राग भी उस अनन्त का कितना सुन्दर वर्णन करता जा रहा था। आहा, इसके कैसे-कैसे अद्भुत मोड़ हैं, इस प्रकार मन-ही-मन आनन्द-विभोर होकर कृष्ण भागवतर गाये जा रहे थे।

बालांबाल् भी संगीत के उस प्रवाह में बह गई।

कृष्ण भागवतर ऊंचे पंचम में जाकर अद्भुत स्वर-संगतियां बैठाने के बाद नीचे उतर आये और नई लहरी पैदा करने के प्रयत्न में थे कि टूटे तार की तरह उनके दिल में न जाने क्या चुभा कि वे तड़प उठे और तीर लगे कबूतर की तरह खाट पर लोट गये। दिल का दर्द बहुत ही बढ़ गया था। उन्होंने छाती कसकर दबा ली और कराह उठे। दिल की वेदना चेहरे पर फूट पड़ी और खाट पर लेटकर इधर-उधर करवट लेने लगे।

सहसा गाना बंदकर उन्हें चारपाई पर लुढ़कते देखा तो बालांबाल् सकपका गई। तानपूरा नीचे रखकर व्यग्र स्वर में चीख उठी, "क्या हुआ, क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं ! दिल दुःख रहा है !" असह्य दर्द के मारे होंठ भींचते और छाती पकड़ते हुए कृष्ण भागवतर बोले। उन्हें दर्द से तड़पते देखकर बालांबाल् भी तड़प उठी। उसे इस दर्द का इलाज मालूम था और कैसे किया जाय, यह भी पता था। नीलांबाल को देखकर उसने कहा, "इनका दर्द बढ़ गया है। आग सुलगाकर अंगीठी लाइये तो जरा सेंक दें।

नीलांबाल् तो आरम्भ से ही नाराज थी। मुंह फुलाये हुए बैठी थी, क्योंकि कृष्ण भागवतर ने उसका कहना नहीं माना था और उसकी बातें हवा में उड़ा कर गाना शुरू कर दिया था। उन्होंने उसके साथ ऐसी लापरवाही बरती थी, जैसे उनका और उसका कोई वास्ता ही नहीं है। उनके इस व्यवहार से उसे ऐसा लगा था, जैसे उनके भले की बात कहने का उसे कोई

अधिकार ही नहीं है। अब क्यों वह उनकी सेवा करने जाय ? बालांबाल् की बातें सुनी-अनसुनी कर वह चक्की पर आटा पीसती रही। अपनी जगह से नहीं उठी।

नीलांबाल् की यह अश्रद्धा और हठ देखकर बालांबाल् से नहीं रहा गया। जरा ऊची आवाज में बोली, "अजी, मैं आप ही से कह रही हूं, वे तड़प रहे हैं। जरा जल्दी अंगीठी लाइए।"

नीला ने इसका भी कुछ उत्तर नहीं दिया और न अपनी जगह से हिली-डुली। उसने लाल आंखों से बालांबाल् को देखा, मानो कह रही हो कि मुझमें भी रोष नाम की कोई चीज मौजूद है। दूसरे क्षण बालांबाल् उसके सामने खड़ी नहीं रही। तेजी से अलमारी के पास गई और अलमारी खोलकर दवा की शीशी निकाल लाई। उसमें से कुछ तेल अपनी हथेली में उड़ेल कर कृष्ण भागवतर की छाती पर मलने लगी।

इस दृश्य को देखना था कि नीला का क्षुब्ध हृदय फूट पड़ा। क्रोध उमड़कर बहने लगा। वह तेजी से बालांबाल् के पास आई और उसे आग बरसाती हुई आंखों से ऐसे देखा, मानो उसे राख कर देगी।

"अरी, क्या तेरा दिल परिणीता पत्नी से भी बढ़कर तड़पता है ? ला, मुझे दे तेल की शीशी।" कहते हुए उसने तेल की शीशी उसके हाथ से ले ली।

बालांबाल् तड़पकर रह गई। फिर भी अपने को संभालकर बोली, "बहन, वह भाग्य तो तुम ले चुकी हो। लेकिन एक बात याद रखो। यहां जो प्राणी तड़प रहा है, वह केवल तुम्हारा ही नहीं है, किसी और का भी है।"

यह कहकर उसने सिर झुका लिया। यह बात कहने का उसका मौका था। उसकी आँखों में आंसू की बूंदें छलछला आईं। उसे इस बात का दुःख नहीं था कि उसका जन्म वेश्या के कुल में हुआ है और लोग उसे वेश्या कहते हैं, उसे नीची नजरों से देखते हैं। लेकिन आज न जाने क्यों, नीला मुख से निकले शब्द-बाणों ने उसके दिल को छलनी कर दिया।

बात बढ़े नहीं, यह सोचकर उस असहनीय पीड़ा में भी कृष्ण भागवतर ने अपनी पत्नी को देखकर कहा, "मैं जो यातना भोग रहा हूं, मेरे लिए वही काफी है। जाकर जल्दी आग ले आओ !"

नीला चुपचाप सेंकने के लिए अंगीठी लाने अन्दर चली गई।

२६

उक्त घटना के बाद बालांबाल् ने कृष्ण भागवतर के घर आना बंद कर दिया। न जाने क्यों, बालांबाल् और नीलांबाल् दोनों को एक-दूसरे से मिलने में अब संकोच-सा होने लगा था। दिल में सन्देह का धब्बा पड़ जाने पर दुराव-छिपाव ने स्थान ले लिया था। ऐसी स्थिति में कोई भला दिल खोलकर मिलता तो कैसे मिलता ! दोनों में अब वह मेल-मिलाप नहीं रहा गया था। परन्तु कृष्ण भागवतर के व्यवहार में किसी प्रकार कोई अन्तर नहीं पड़ा था। उनका व्यवहार दोनों के साथ पहले जैसा था। सच पूछा जाय तो इन सारी बातों का उनके मन पर कोई खास असर नहीं पड़ा था। बालांबाल् गान-विद्या में बड़ी तेजी से प्रगति कर रही थी। तीक्ष्ण बुद्धि, सूक्ष्म ज्ञान और अपार साधना के कारण वह किसी बात को एक बार पकड़ लेती तो फिर उस पर पूरी तरह परिश्रम करती और उसे पूरी तरह से समझने की कोशिश करती थी। अपने पहले ज्ञान को, जो उसमें विद्यमान था, सुधारने के लिए ही वह कठिन परिश्रम कर रही थी। इसलिए उसकी प्रगति बड़ी तेजी से हो रही थी। वह अपने मार्ग पर बहुत आगे बढ़ गई थी।

एक दिन शाम को बालांबाल् अपने घर पर बैठी गा रही थी। कृष्ण भागवतर सन्ध्या-वन्दनादि से निवृत्त होकर उसी के घर की ओर आ रहे थे। जब वह उसके घर के द्वार के निकट पहुंचे तो अन्दर से बालांबाल् के गाने की आवाज सुनाई दी। बड़ा ही सुमधुर और सुनादपूर्ण श्याम शास्त्री का कर्टानक संगीत में 'आनन्द भैरवी' राग में गाये जानेवाला वह 'मरिवे' नाम का कीर्तन था। उसी को बड़े सुन्दर ढंग से सविस्तर मन लगाकर गाये जा रही थी। उसके मधुर स्वरों में कृष्ण भागवतर ऐसे आवद्ध हो

गये, मानो नाद पर रीझा हुआ कोई हरिण हो। उन्हें घर के अन्दर जाने की सुध नहीं रही। द्वार पर खड़े-खड़े आनन्द से सुनते रहे। उनके मन में यह विचार नाम-मात्र के लिए भी नहीं आया कि वह उनकी शिष्या है, और उनसे सीखकर ही इस प्रकार आगे बढ़ रही है, बल्कि वे उसे एक कलाकार का संगीत समझकर सुन रहे थे। इस मनोहर संगीत में डूबकर आनन्द-वारिधि में गोता लगाने लगे।

गाना समाप्त होते ही बालांबाल् ने मुड़कर देखा तो बैठक में किसी की परछाई-सी दिखाई दी। देहली पर आई तो देखा कि कृष्ण भागवतर खड़े हैं।

"आप यहां क्यों खड़े हैं ?"

"तुम्हारा गाना सुन रहा था।"

"यह भी कोई ऐसा गाना था, जिसे आप खड़े-खड़े सुनते ?"

"स्वर और नाद से सम्पन्न शास्त्रोक्त संगीत-माधुरी को खड़े-खड़े ही नहीं, दोनों हाथ जोड़कर बड़ी श्रद्धा-भक्ति से सुनना चाहिए।" कृष्ण भागवतर ने उत्तर दिया।

"आपका मुझे प्रोत्साहित करना तो ठीक है, लेकिन अब थोड़े-से अच्छे को बहुत श्रेष्ठ कहकर मुझे कांटों में मत घसीटिये।"

"लेकिन मैंने तुम्हें प्रोत्साहित करने के लिए थोड़े ही ये शब्द कहे हैं और न मैंने किसी प्रकार की प्रशंसा की है। मैं तो जो सच बात है, उसीको बता रहा हूं। सचमुच आज तुम्हारी तपस्या सफल हुई। जरा गिनो तो ऐसी कितनी स्त्रियां हैं, जो तुम्हारी तरह अच्छे कण्ठ-ज्ञान से सम्पन्न हैं और तुमसे संगीत में होड़ लगा सकती हैं ?" इतना कहकर कृष्ण भागवतर ने उस पर अपनी आंखें फेरीं और फिर कुछ सोचकर बोले, "और पुरुषों में भी ऐसा कौन है, जो तुम्हारा मुकाबला कर सके ?"

बालांबाल् ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। उसकी समझ में नहीं आया कि इस बात का कैसे उत्तर दे। उसने आजतक ऐसे गुरु का नाम नहीं सुना था, जिन्होंने अपने विद्यार्थियों के मुख के सामने ऐसे प्रशंसा-पूर्ण शब्द कहे हों। गुरुजन अपने शिष्यों की योग्यता की दाद इसलिए नहीं देते हैं, क्योंकि उनका अभिमान बढ़ जाने से विद्यार्जन में बाधा पड़ जायगी।

आज कृष्ण भागवतर के मुख से प्रशंसा के ऐसे शब्द सुनकर बालांबाल् बड़ी द्विविधा में पड़ गई।

फिर भी अपने को संभालकर बोली, "आपने कहा कि मेरी तपस्या सफल हो गई। मैं मानती हूं कि वह सौ बातों में एक बात है। आजतक कितने ही लोगों के सामने कितनी ही बार मैंने गाया है। सबने मेरी बड़ी प्रशंसा की है, पर सच मानिये, मैं इस एक बात को सुनने के लिए एक अरसे से तरस रही थी कि आपके मुंह से यह एक वाक्य 'तुम गाती अच्छा हो', सौभाग्य से सुनने को मिल जाय। यह सौभाग्य आज मुझे मिल गया। सचमुच मेरी तपस्या आज पूरी हो गई। इसका मुझे अभिमान नहीं होगा। आप मेरी चाहे जितनी भी प्रशंसा करें, मैं तो यही कहूंगी कि आप अपने मुख से अपनी ही तारीफ कर रहे हैं, क्योंकि मैं आज जो भी गाती हूं, वह सब आपकी नाद-विद्या की हलकी-सी प्रतिध्वनि मात्र है। अतः इसका सारा श्रेय आप ही को है।"

उसकी विनय और बात करने के ढंग ने कृष्ण भागवतर का मन मोह लिया। बड़े प्रेम और वात्सल्य से बोले, "मालूम होता है कि बहुत देर से गा रही हो। थोड़ा आराम तो कर लो।"

बालांबाल् का हृदय प्रसन्नता से बल्लियों उछल रहा था। वह आनन्द-लहरियों पर तैर रही थी। बोली, "मेरे संगीत के लिए आपने प्राण दिये हैं और मुझपर करुणा की ऐसी धारा प्रवाहित की है कि क्या कहूं? मेरी समझ में नहीं आता कि आपके उपकारों का बदला कैसे चुकाऊं?"

"मेरे उपकारों का बदला? तुम्हें चुकाने की क्या आवश्यकता है? हमें भगवान् ने बहुत-सी चीजें दी हैं। यह सारा भूमण्डल उन्होंने मनुष्य के लिए ही बना छोड़ा है। क्या मनुष्य से बदला पाने की आशा में उन्होंने यह सब किया है? विद्या भी भगवान् की ही वस्तु है। विद्या सीखना और सिखाना दोनों एक ही बात है। एक प्रकार से दोनों ईश्वर की आराधना ही हैं। अतः इसमें एक-दूसरे के प्रति आभार या कृतज्ञता-प्रकाशन की बात ही नहीं उठती। मेरे गुरु महाराज ने मुझे विद्या प्रदान की और मुझे आदमी बनाया। लेकिन इसका बदला जानती हो मैंने कैसे चुकाया है? मैंने उनकी मृत-देह पर आग डालकर उसे राख बना डाला! इसके सिवा मैं उनकी

कुछ भी सेवा नहीं कर सका।" कृष्ण भागवतर ने कहा।

बालांबाल् मौन मूर्ति-सी बनी सुन रही थी। उसके मन में तरह-तरह के विचार आ-जा रहे थे। वह सोच रही थी, "अपने ही गुरु महाराज की तरह इन्होंने भी किसी प्रकार के प्रतिफल की आशा किये बिना ही मुझे अपनी विद्या प्रदान की है। उसके बदले में मैं उनका क्या उपकार कर सकती हूं? मेरे जीवन की धारा में ही इन्होंने आमूल परिवर्तन कर दिया है। मेरा स्वभाव ही एकदम बदल डाला है। इन्होंने मेरे संगीत को नई पद्धति दी है। मुझमें नव-जीवन फूंक दिया है। इतना सबकुछ किया है, पर अपने दिल में रंच-मात्र भी प्रतिफल की लालसा नहीं रक्खी है। समाज के विरोधों की जरा परवा नहीं की, अपने नाम और गौरव तक पर आंच सह ली, पर आगे बढ़ा कदम पीछे नहीं हटाया। मेरी शिक्षा पूरी करके ही छोड़ी। लेकिन यह सब उन्होंने क्यों किया? समाज से क्यों विरोध मोल लिया? मेरे या पैसे के लिए? नहीं, केवल संगीत के लिए। हां, यह सब उन्होंने केवल संगीत के लिए किया है। इन उपकारों का बदला मैं कैसे चुका पाऊंगी? जन्म-जन्मान्तर में भी नहीं उऋण हो सकूंगी।"

इस प्रकार सोचती हुई वह उठी और उनके पैरों में सिर नवाकर गद्-गद् कण्ठ से बोली, "मैं हीन कुल में जन्मी हूं, फिर भी मुझपर करुणा की वर्षा कर अपनी विद्या-निधि से आपने मुझे अनुग्रहीत किया है। मेरे कण्ठ से फूटनेवाली संगीत-प्रणाली ही में नहीं, मेरे हृदय में भी आप सदा विराजमान हैं।" उसकी आंखों की भाषा के सामने मुंह से निकलनेवाले ये सारे शब्द बिलकुल नीरस और फीके लगे।

लेकिन पता नहीं, कृष्ण भागवतर ने उसकी बातों का पूरा भाव समझा या नहीं, क्योंकि वह आंखें मूंदकर विचारों में ऐसे खो गये थे कि इस संसार का उन्हें ध्यान ही नहीं रहा।

३०

सुबह के कोई नौ बजे होंगे। कन्दस्वामी भागवतर किसी काम से कृष्ण भागवतर के घर आये हुए थे। बाहर बरामदे में बैठे दोनों बातें कर रहे थे। उस समय अय्यास्वामी शास्त्री उनके घर के सामने से कहीं जा रहे थे। उस दिन की गरमागरम बहस के बाद वे लोग न तो आपस में मिले थे और न बातचीत ही की थी। कन्दस्वामी भागवतर के मन में आया कि उन्हें बुलाकर कुछ बातें की जायं।

"शास्त्रीजी, इतनी तेजी से कहां जा रहे हो?" कन्दस्वामी भागवतर ने उन्हें आवाज दी।

अय्यास्वामी शास्त्री यह दिखलाने के लिए कि उनका दिल भी बड़ा साफ है, यह कहते हुए मुड़े, "आजकल तो अवकाश-ही-अवकाश है।"

"तो फिर आइये।" कहकर कृष्ण भागवतर ने भी उनका स्वागत किया। वह आकर चबूतरे पर बैठ गये।

"आजकल आपके गाने की आवाज अधिक सुनाई नहीं देती। बात क्या है?" कृष्ण भागवतर से अय्यास्वामी शास्त्री ने भी पूछा, यह भी इस ख्याल से कि चाहे औपचारिक ढंग से ही सही, उनसे कुछ तो बोलना ही चाहिए।

"आजकल मानसिक साधना ही अधिकतर चल रही है।" कृष्ण भागवतर ने उत्तर दिया। लेकिन पता नहीं, अय्यास्वामी शास्त्री ने इसका मतलब समझा या नहीं।

"अरे, क्या बात है! अय्यास्वामी शास्त्री का भी ध्यान संगीत की ओर आकृष्ट हो गया है क्या?" कन्दस्वामी भागवतर ने पूछा।

"योंही पूछा था, नहीं तो संगीत के सम्बन्ध में मुझे क्या जानकारी

है ?" अय्यास्वामी शास्त्री ने उत्तर दिया।

इसी समय दाढ़ी-मूंछ का जंगल उगाये एक आदमी उनके सामने आ खड़ा हुआ। उसकी आंखें लाल सुर्ख हो रही थीं, चेहरा उतरा सा, मुर्झाया हुआ था। देह पर मैली-कुचैली धोती थी। सिर के बाल रेशे जैसे बिखरे थे। लगता था, जैसे उसे नहाये बहुत दिन हो गये हों।

कन्दस्वामी भागवतर और कृष्ण भागवतर को देखकर उसने हाथ जोड़े। कन्दस्वामी भागवतर उसकी ओर ध्यान न देकर गुनगुनाने लगे। लेकिन फिर भी उसने ठान लिया कि उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किये बिना नहीं छोड़ेगा। अतः जब कभी वे मुड़ते, दोनों हाथ जोड़कर सिर झुका देता।

"अरे, तुम यहां भी आ गये? जाओ, फिर कभी मिलना।" कन्दस्वामी भागवतर ने कहा। पर उनके दिल को यह कहते हुए बड़ा कष्ट हो रहा था।

अय्यास्वामी शास्त्री उसे डांटने लगे, "जाओ-जाओ, यहां कुछ नहीं। मिलेगा!"

"दो दिन से भूखा हूं।" वह आदमी गिड़गिड़ाने और हाथ मलने लगा।

"मैं क्या करूं, चाहे जितना भी दूं, तुम्हारी गरीबी दूर होने की नहीं! और मैं भी कुबेर-सा धनी नहीं हूं जो हर वक्त देता रहूं। तुम दूसरी जगह जाकर क्यों नहीं मांगते और ठीक तरह से जीवन क्यों नहीं बिताते हो? बार-बार मेरी जान खाने क्यों आ जाते हो?" कन्दस्वामी भागवतर ने कहा। उस समय उनसे न तो डांटते बना और न प्यार से कहते बना।

"ऐसी बातें न कहिये। सचमुच मैं दो दिन से भूखा हूं।" उस आदमी ने कहा।

"हां-हां, तुम तो सत्य हरिश्चन्द्र के वारिस हो न, जो झूठ नहीं बोलोगे।" अय्यास्वामी शास्त्री ने उसका मखौल उड़ाते हुए कहा।

"तुम मुझसे क्या चाहते हो?" कन्दस्वामी भागवतर ने इस बार उसे कुछ डांटकर पूछा, क्योंकि वे दिल से चाहते थे कि वह वहां से किसी प्रकार टल जाय तो अच्छा हो।

"थोड़े से पैसे दे दीजिये।" करुणा-जनक स्वर में वह आदमी गिड़-गिड़ाया।

कन्दस्वामी भागवतर ने अपनी विभूति-भस्म का संपुट खोला। उसमें एक अठन्नी थी। उसे निकालकर देते हुए कहा, "यह लो। लेकिन इससे शराब पीकर अब कल मेरे सामने हाथ पसारते हुए न आना। समझे?"

उस आदमी ने दोनों हाथ फैलाकर वह अठन्नी ले ली और हाथ जोड़ कर प्रणाम करके चला गया।

कृष्ण भागवतर यह सारा दृश्य चुपचाप देख रहे थे। उन्होंने पूछा, "क्यों, बात क्या है?"

कन्दस्वामी भागवतर ऐसे मौन थे, मानो इसका उत्तर देना नहीं चाहते हों।

पर अय्यास्वामी शास्त्री से चुप नहीं रह गया। बोले, "आप इसे नहीं जानते हैं क्या? एक जमाने में इसके नाम की धूम मची हुई थी। नाटक-केसरी के नाम से मशहूर अघोरमूर्ति यही है।"

कृष्ण भागवतर सिर से पैर तक कांप उठे। सारे तमिल-प्रदेश में ऐसा कौन था, जिसने नाटक-केसरी अघोरमूर्ति का नाम न सुना हो? अभिनेता के रूप में रंगमंच पर आकर जब गहन-गम्भीर बुलन्द आवाज में वह गाने लगता तो पत्थर तक पिघलने लग जाता था। संगीत जाननेवाले और न जाननेवाले दोनों ऐसे अचल बैठ जाते थे, मानो उन्हें कोई मोहिनी छू गई हो। इतना सुन्दर गाता था वह। क्या वही अघोरमूर्ति भिखमंगों से भी बद-तर अवस्था में यहां भीख मांगने आया है! हरिश्चन्द्र और रामचन्द्र बनकर जिस अघोरमूर्ति ने लोगों का दिल लूटा, क्या वही इस तरह अपना मान-सम्मान लुटा रहा है? भीख के लिए हाथ फैलाकर गिड़गिड़ा रहा है? विधि की यह कैसी विडंबना है!

कृष्ण भागवतर के मन को इन विचारों ने व्याकुल कर सिया। द्रवित होकर बोले, "आखिर, यह ऐसी दीन-हीन अवस्था को कैसे पहुंच गया? मुझसे तो सुना नहीं जाता, सहा नहीं जाता!"

कन्दस्वामी भागवतर बड़े संकट में पड़ गये। उस समय उसकी दुःख-गाथा सुनाने को उनका जी न हुआ तो पहले की तरह चुप्पी साधे रहे।

अय्यास्वामी शास्त्री बोले, "ताड़ीखाने और वेश्याओं के अड्डे ने इसकी यह गत कर डाली है। अब भी इनके दिये आठ आने लेकर सीधा ताड़ीखाने की ही ओर गया होगा।"

"यह नई-नई लत है या प्रसिद्धि के उस जमाने से ही यह आदत चली आ रही है ?" कृष्ण भागवतर ने पूछा।

"अगर उस समय न होती तो अब कैसे लग जाती ! पहले तो आकण्ठ मदिरा पान करके रंगमंच पर आता था। तब खूब पीकर कमरे में घूमता था और अब गली-सड़कों पर झूमता ही नहीं, लोटता-पोटता भी है।" अय्यास्वामी ने कहा।

"सो तो ठीक है। इस समय अठन्नी के लिए हाथ फैलानेवाला ही एक जमाने में अपने सामने हाथ फैलानेवालों पर असंख्य रुपयों की बौछार-सी कर देता था, यह भी ध्यान देने की बात है।" कन्दस्वामी भागवतर ने कहा।

यह सुनकर कृष्ण भागवतर का दिल और पसीज उठा। बोले, "विद्या के होने से क्या हुआ ? प्रतिभा के होने से भी क्या लाभ हुआ ? अगर मनुष्य में शील-संयम नाम की चीज न हो तो वह कितने गहरे गड्ढे में गिर जाता है, देखा ?"

"वह तो होता ही है। अगर आप नाराज न हों तो मैं एक बात कहूं। यह संगीत ऐसी आफत करनेवाली विद्या है, जो शील-संयम पर भी कुठाराघात करती है। यही कारण है कि हमारे बुजुर्गों ने कहा है कि नट, विट और गायक, इनसे दूर रहना चाहिए। शील-संयम से तो इनका छत्तीस का सम्बन्ध है। संगीत को गन्धर्व-विद्या माना जाता है। अतः इस विद्या से सम्बन्ध रखनेवाले गन्धर्वों का-सा जीवन बिताना ही पसन्द करते हैं। इसी कारण वे बरबादी की ओर बढ़ते हैं। किसी राजा ने सच कहा है कि संगीत को गहरा गढ़ा खोदकर गाड़ देना चाहिए। यह बात हमारे लिए बिल्कुल मान्य होनी चाहिए।" अय्यास्वामी शास्त्री ने कहा।

इन बातों से कृष्ण भागवतर के दिल को बड़ी चोट लगी। वे मन-ही-मन क्षुब्ध हो उठे। "क्या यह संगीत शील-संयम को नष्ट करनेवाला विष-पान है ? लोगों ने आखिर क्यों इसके संबन्ध में ऐसी धारणा कर

रक्खी है ! जिन बुजुर्गों ने यह कहा है कि नट, विट और गायक से दूर रहना चाहिए, उनके भी दिल में यही विचार रहा होगा। स्वयं मेरी माता ने भी तो यही विचार बना रक्खा था। सम्भव है, मां के दिल में इस विचार के पैदा होने का कारण मेरे पिताजी रहे हों। पिताजी को चाहिए था कि वे अपनी विद्या के बूते पर चमकते, ख्याति पाकर उन्नत जीवन बिताते। उसके बजाय अपने बुरे आचरण द्वारा बुरा नाम पाकर वह मरे ! मेरी माता के मन में संगीत के प्रति घृणा पैदा होने का कारण अवश्य ही मेरे पिताजी थे और अपने दुराचरणों की वजह से उनकी अकाल मृत्यु हुई थी। क्या इस सबके मूल में संगीत का ही हाथ रहा है ? कला मनुष्य को ऊपर उठाती है या पाताल में गिरा देती है ? कला मनुष्य के शील-संयम को बिगाड़कर उसकी मिट्टी पलीद कर दे और खिल्ली उड़ाये तो वह कला कहां है ? उसके आगे 'दैवी' शब्द का जुड़ना बेकार है। ऐसी स्थिति में कोई उसे कला की अधिष्ठात्री देवी कैसे मान सकता है ? पता नहीं, लोग इस तरह क्यों बुद्धिहीन होकर बातें करते हैं ?"

इस प्रकार तरह-तरह के विचार उनके मन में आ रहे थे। वह बोले, "शास्त्रीजी, आपने अपनी दलील पेश करने में बड़ी उतावली दिखाई है। आपने इस समय जितनी बातें कही हैं, उनका पूरा-पूरा तात्पर्य समझ लिया होता तो ऐसी बातें नहीं कहते। अच्छे और बुरे सिर्फ संगीतज्ञों में ही नहीं हैं। हर क्षेत्र में आपको मिलेंगे। कोई मनुष्य बुरा हो तो केवल इसी कारण वह जो पेशा करता है, वह बुरा नहीं हो जाता। सीखी हुई विद्या बदनाम और दोषपूर्ण नहीं होती। बताइए वेद और उपनिषद् का अध्ययन करनेवालों में से कितनों की मनोदशा परिपक्वता को प्राप्त हुई है ? लेकिन इससे हम वेद और उपनिषद् पर दोष नहीं मढ़ सकते।"

अय्यास्वामी शास्त्री जरा हिचकिचाये, फिर बोले, "नहीं, मैं यह नहीं कहता। मैं तो यह कहता हूं कि संगीत भावना-प्रधान विद्या है। सम्भव है, मनुष्य भावावेश में बहकर अपना सन्तुलन खो दे। यही कारण है कि उसका अपने स्थान से गिरने का अंदेशा अधिक रहता है और शील-संयम से हाथ धोने का अवसर पग-पग पर दिखाई देता है।"

"सच पूछा जाय तो मनुष्य ही भावना के प्रवाह में बहनेवाला है।

अनेक अवसरों पर वह भावना के वशीभूत होकर ही काम करता है। अतः यह कोई जरूरी नहीं कि वह शील-संयम से गिर जाय या चूक जाय। जब कभी ऐसा होता है तो क्यों होता है, आप जानते हैं। संगीत को कोई मनोरंजन की वस्तु माने और उससे खिलवाड़ करे तो वही उसको सांसारिक सुख रूपी गड्ढे में लाकर ढकेल देगा। मैं पूछता हूं कि क्या संगीत केवल क्षणिक या नश्वर सुख ही प्रदान करता है? मेरी तो यह धारणा है कि संगीत नाद-ब्रह्म के स्वरूप को सामने लाकर खड़ा करनेवाला एक महान योग है। इसी कारण से त्यागब्रह्म ने कहा है कि संगीत का ज्ञान बिना भक्ति के हो तो सुफल नहीं देता!" कृष्ण भागवतर ने कहा।

"सो तो ठीक है। पर यह बताइये कि कितने लोग संगीत के इस वास्तविक महत्व को समझ पाते हैं। अधिकांश लोग तो इस अघोरमूर्ति ही की तरह होते हैं। इसी कारण से नट, विट, गायक का वर्ग इतना बदनाम हुआ है।" अय्यास्वामी शास्त्री अपनी बात पर अड़े रहे।

"शास्त्रीजी, कृपा करके यही एक बात मुंह पर न लाइये। संत त्यागराज एक संगीतज्ञ थे। साक्षात् भगवान् नटराज भी एक नट हैं। स्वयं कला की अधिष्ठात्री सरस्वती देवी भी एक गायिका हैं। इन सबसे दूर रहना है तो संगीत से अवश्य किनारा करना चाहिए।" कृष्ण भागवतर ने कहा।

"भागवतरजी, आप जो कहते हैं, ठीक है। पर आखिर आपकी बातों का यह भी अर्थ निकल सकता है कि संगीत की शिक्षा पानेवाला हर कोई नौसिखिया त्यागब्रह्म की तरह ही नाद-ब्रह्म को जाननेवाला है। लेकिन इन गवैयों की ओर जरा देखिये। सुंघनी, तमाखू, जव्वाज जैसे सुगन्धित द्रव्य और गणिका, इन सबसे अपने को मुक्त रखनेवाले संगीत के कलाकार आपको कितने मिलेंगे? इन सबको देखकर यही निष्कर्ष निकालने को मन करता है कि संगीत इन सबका अभिन्न अंग है।"

अय्यास्वामी शास्त्री के इस कथन का उत्तर कृष्ण भागवतर ने नहीं दिया। गणिका की बात कहते समय शास्त्री के दिल में कृष्ण भागवतर का स्मरण ही नहीं आया था। साधारण लोक-रीति की ओर ही उन्होंने इशारा किया था, पर कृष्ण भागवतर को तो ऐसा ही लगा मानो उनपर भी उंगली

उठाई जा रही है। उनके दिल में वे बातें तीर की तरह चुभीं।

कन्दस्वामी भागवतर ने अबतक अपना मुंह नहीं खोला था। इस नाजुक स्थिति से पीछा छुड़ाने के लिए उन्हें लगा, अब अपना मुंह खोलना ही चाहिए। अतः बोले, "यह अघोरमूर्ति आया तो केवल अठन्नी लेकर ही नहीं गया, यहां अनावश्यक वाद-विवाद भी खड़ा कर गया।"

"नहीं, भागवतरजी ! अघोरमूर्ति तो एक उदाहरण मात्र है। उसकी तरह कितने ही लोग हैं। सत्य हरिश्चन्द्र की भूमिका में अभिनय करनेवाला पियक्कड़ होता तो मैं पूछता हूं कि उससे समाज का क्या भला होगा ? उसका अभिनय करने से तो न करना ही कई गुना अच्छा है ! मेरी बात सही है न ?"

कृष्ण भागवतर अपने को संभालकर बोले, "शास्त्रीजी, आपकी बात सही है। संगीत अन्य सारी कलाओं के सर्वोच्च शिखर पर है। वह संगीत नहीं जो मनुष्य के मन में पुनीत पवित्रता न भर दे; स्वच्छता न ला दे। इसी प्रकार संगीत का वह कलाकार सच्चा कलाकार नहीं, जो अपने चरित्र को स्वच्छ व पुनीत न रखे। संगीत सीखकर यदि कोई अपने चरित्र से गिरकर दुराचार करता है तो वह संगीत का ही बुरा करता है। उसका यह अपराध कभी क्षम्य नहीं हो सकता।"

"यह अघोरमूर्ति क्या आया, साथ यह बला भी ले आया !" कहते हुए कन्दस्वामी भागवतर उठे।

इस विचार को वहीं समाप्त कर देने के विचार से अय्यास्वामी शास्त्री भी उठ बैठे।

३१

उस दिन शाम को नित्य की तरह कृष्ण भागवतर बालांबाल् के घर जा रहे थे। रास्ते में अगर-चंदन के एक व्यापारी ने उन्हें देख लिया। वह संगीत के बड़े प्रेमी थे। कृष्ण भागवतर के गीतों पर तो वह जान देते थे। उन्होंने कृष्ण भागकतर को अपनी दूकान में बुलाकर आदर-सत्कार किया। देह पर सुगंधित चन्दन का लेप किया। जव्वाज का तिलक लगाया और नवविवाहित दामाद की तरह साज-सिंगार कर विदा किया।

कृष्ण भागवतर उस दामाद-जैसी वेश-भूषा में बालांबाल् के घर में प्रविष्ट हुए। बालांबाल् को उनकी यह वेशभूषा और साज-सिंगार देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उस समय वह कृष्ण भागवतर के सम्बन्ध में ही सोच रही थी। उसके मन:पटल पर इस समय वह केवल गुरु के रूप में नहीं थे, बल्कि किसी और रूप में भी थे।

'आज जितने अधिकार और सौजन्य के साथ मेरे घर आते हैं, उतने ही अधिकार और सौजन्य के साथ उन्होंने मेरे हृदय में भी स्थान पा लिया है। लेकिन क्या मुझे इनके दिल में, थोड़ा-सा भी स्थान नहीं मिलेगा?' इस बात के लिए भी वह दिल में तरस रही थी।

कृष्ण भागवतर का दिल पत्थर का एक ऐसा किला था, जिसमें कोई भी चीज आसानी से प्रवेश नहीं पा सकती थी। उनके हृदय-दुर्ग में नाद को छोड़ और किसी भी चीज को प्रवेश करने का अधिकार नहीं था।

"मेरी क़ंठ-माधुरी पर तो यह जान देते हैं। मेरे गानामृत का पान कर अपनी सुध-बुध भूल जाते हैं। लेकिन मेरे इस हृदय-गीत को क्यों नहीं सुनते, जो मेरी वेदना का प्रतीक है और दिल की धड़कन का गुंजन है? मेरी यह कंठ-माधुरी और मेरा यह गानामृत—दोनों इसी वेदना की प्रति-

क्रिया ही तो हैं। आखिर इसको क्यों नहीं समझ पाते हैं ? यही सोचकर वह मन में दुखी हो रही थी और इसी मनोवेदना में उलझी कृष्ण भागवतर के आने की राह देख रही थी।

कृष्ण भागवतर आये और अपने आसन पर बैठ गये। उन्हें न तो अपनी वेष-भूषा या साज-सिंगार का ध्यान था और न बालांबाल् के चेहरे पर फूटनेवाले भावों का। हमेशा की तरह आकर बैठते ही उन्होंने कहा, "तानपूरा उठा लाओ !"

बालांबाल् तानपूरा उठा लाई और उनके सामने रख दिया। कृष्ण भागवतर ने तानपूरे की खूंटियां कसीं और अपने सुर से उसका सुर मिलाया। उन्हें इस बात का क्या पता न था कि सामने बैठी हुई बालांबाल् के हृदय में कुछ इच्छा जग उठी है। वह अपने-आपको उन पर न्यौछावर कर चुकी है।

असल में दुनिया की इन सब बातों पर उनका ध्यान ही नहीं गया था। कृष्ण भागवतर के कानों में बालांबाल् का हृदय-स्वर कहां से सुनाई देता जबकि उनका समूचा मन उस अगोचर नाद को, जिन्हें मनुष्य कानों से नहीं सुन पाते हैं, सुनने में दत्तचित्त था। उन्होंने केवल स्वर से स्वर ही नहीं मिलाया था बल्कि अपना मन भी उसमें लगा दिया था। उन्होंने तन्मयावस्था में गाना प्रारम्भ कर दिया। यह संगीत भी कैसी विचित्र चीज है ! आखिर इसमें ऐसी कौनसी शक्ति है, जिससे इसके शब्दजालों द्वारा एक अद्भुत अनुभव प्राप्त होता है ? मनुष्य के हृदय में जो एक अमिट लालसा होती है, उसे अभिव्यक्त करने की भाषा कहीं यह संगीत ही तो नहीं है ? अथवा वियोग से जो वेदना होती है कहीं वह तो संगीत का रूप धारण नहीं कर लेती है। किसीने ठीक ही कहा है—आह से उपजा होगा गान—इसीलिए यह संगीत मन को हर लेता है और प्राण को खींच लेता है। यही नहीं, इस संसार को भुलाकर एक गहरा अनुभव प्रदान करता है।

कृष्ण भागवतर के संगीत में यही महान लालसा विद्यमान थी। और तब क्या बालांबाल् के दिल में यह लालसा नहीं थी ? थी अवश्य, पर उसमें इस महान लालसा का क्षुद्र रूप ही प्रतिध्वनित हुआ था ! इसलिए दोनों

में कितना अन्तर था !

कृष्ण भागवतर ने गाना पूरा किया। बालांबाल् उसमें तल्लीन हो गई थी। उसकी आंखों में हृदय की वेदना झलक उठी। वह झुकी तो दो बूंदें उनके चरणों पर गिर पड़ीं। उनको लगा, जैसे जलते अंगारे उनके चरणों पर पड़ गये हों।

उन्होंने उसे घूरकर देखा, मानो आंखों से उसके हृदय को पढ़ रहे हों। उन्होंने कई बार अपनी आंखों से देखा और हृदय से अनुभव किया था कि संगीत ने हृदयगत भावनाओं को उभाड़कर आंखों के रास्ते स्रोत की तरह बहाया है। पर आज बालांबाल् की आंखों में जो कुछ देखा, वह केवल संगीत के कारण नहीं था, बल्कि और कुछ भी था। उनके अनुभवी नेत्रों ने यह भलीभांति समझ लिया।

"क्या है, बालम् ?" धीमे स्वर में उन्होंने पूछा।

दिल की बात बताने की नहीं, समझने की चीज होती है। यह कोई उनको कैसे समझाये ? कृष्ण भागवतर के उस प्रश्न से उसका दिल और भी अधिक दुःख में डूब गया।

फिर वह बोली, "एक जमाना वह था जब मैं धन की दासी थी। फिर कुछ समय के लिए संगीत की दासी बनी। लेकिन अब हमेशा आपकी दासी बनी रहना चाहती हूं।"

कृष्ण भागवतर का दिल धक्-से रह गया। सोचने लगे, मुझपर यह कैसी बला आ गई और न जाने कहां ले जाकर डुबायेगी। फिर पूछा, "तुम क्या कहना चाहती हो ?"

"कुछ नहीं। अभी आपने जो गाना गाया है, उसने मेरा हृदय द्रवित कर दिया है। मैं अपनी संज्ञा खो बैठी थी। आपने मुझमें संगीत का सागर ही भर दिया है। लेकिन उसमें इतनी कमी रह गई है कि उसमें आपके प्रेम की एक बूंद तक नहीं मिल पाई है। अब वह कमी खटकती है और वह मुझे दुःख के सागर में डुबो देती है।" बालांबाल् ने कहा।

कृष्ण भागवतर को एक क्षण के लिए ऐसा लगा, मानो उनकी श्वास-क्रिया ही बन्द हो गई हो। उनका सिर चकराने लगा।

उनके दिल में यह सन्देह उठा कि यह सच है या सपना ? अथवा

उनका मति-भ्रम है ?

उस दिन सवेरे अय्यास्वामी शास्त्री ने जो कुछ कहा था, वह उनके कानों में गूंजने लगा। उन्होंने कहा था "संगीत भावना-प्रधान विद्या है। इसलिए संगीत-कला के साधक के लिए यह संभव है कि वह भावना के वश में होकर अपना संतुलन खो दे।" बालांबाल् का यह व्यवहार मानो इस कथन का निरूपण कर रहा था।

वह भक्ति का स्रोत बहानेवाला संगीत कहां और पाप का बोझ बढ़ानेवाला यह संगीत कहां ? कहां पवित्रता की श्रीवृद्धि करनेवाला संगीत और कहां परम दुःख में डालनेवाला संगीत ? कितना बड़ा अन्तर है इन दोनों में। वह जो गाना गाते हैं, वह क्या केवल भोग-लिप्सा को उभाड़ने वाला है ? इतने वर्षों से उन्होंने जो इतनी श्रद्धा-भक्ति के साथ संगीत की साधना की, वह क्या इसी हेय कार्य के लिए की थी ? उन्हें लगा, कला की जिस अधिष्ठात्री देवी को आज सिर आंखों पर रखकर पूजना चाहिए था, उसीको आज वह पैरों तले डालकर कुचल रहे हैं।

क्या इस अथक संगीतोपासना का यही फल मिलना चाहिए ? क्या अपनी संगीत-परंपरा पर कलंक लगाने के लिए ही उन्होंने अब तक संगीत की अपार साधना की थी ? 'कला कला के लिए'—इस नीति को अपनाकर संगीत की शिक्षा देने का क्या यही परिणाम मिलना था !—इन सब बातों को सोचते-सोचते वह व्याकुल हो उठे। बालांबाल् की ओर आंख उठाकर देखने तक को उनका जी नहीं हुआ। सिर-नीचा किये धीमे स्वर में बोले, "नाद की उपासना मैंने एक महान योग मानकर की थी। आजतक मेरी धारणा यही थी कि संगीत मन में पवित्र विचारों को ही स्थान देगा। यदि मेरा गान केवल पाशविक वासना को उभाड़नेवाला हो, तो मैं यही कहूंगा कि मेरा संगीत धोखा है और योग्यता भी झूठी है। मैं गाने योग्य नहीं हूं। मेरे लिए एक ही रास्ता रह गया है, मैं अपना गाना आज से बंद कर दूं, क्योंकि अगर मेरा गान पवित्र विचारों को दिल में भरने के बदले अपवित्र विचारों को उभाड़े तो गाने से न गाना बेहतर है, उसको बंद कर देना ही उचित है।"

बालांबाल् भौंचक्की रह गई। ओह, यह क्या ! बड़ा अनर्थ हो गया !

क्या इसीलिए संगीत का अभ्यास करने शिष्या बनकर वह उनके पास आई थी ? उफ ! वह यह क्या कर बैठी जिससे एक महान संगीत योगी का गाना तक बंद हो गया ! जब आज तक वह अपने हृदय-ताप का दबाये रही थी तो अब क्यों उभाड़कर गुरुदेव के संगीत को कलंकित करने का प्रयत्न किया। उसके इस अदूरदर्शी आचरण ने यह क्या कर डाला कि जिससे, संगीत के और कृष्ण भागवतर के नाम पर ऐसी कालिख पुत गई जो धुलाए न धुले। विष की घूंट की तरह अब उन्हें लोकनिंदा का पान करना पड़ेगा।

उसने सोचा, मेरा यह पाप मुझ तक ही सीमित रहना चाहिए। लोकापवाद को फैलाने का कारण नहीं बनना चाहिए। वह तुरन्त उठकर कृष्ण भागवतर के चरणों में जा पड़ी और बोली, "नहीं-नहीं, ऐसा मत कहिए कहीं मुझ पर यह कलंक न लग जाय कि आपसे संगीत सीखकर मैंने आपके संगीत पर ही मैंने कुल्हाड़ी मार दी। संगीत की सेवा मुझसे न हो पाये तो भी कम से कम कोई अपराध तो न हो। मेरी करनी का प्रायश्चित्त आप क्यों करें ? आपकी सेवा महान है ! इसमें किसी प्रकार की कमी नहीं आनी चाहिए। मेरी यह प्रार्थना स्वीकार हो।"

कहते-कहते उसकी आंखों से आंसू की अविरल धारा बहने लगी।

"आजतक तुम विद्या की अभ्यर्थिनी शिष्या रहीं। पर अब भावनाओं के आवेग को दिल में स्थान देनेवाली नारी बन गई हो। अतः अब मेरा यहां कोई काम नहीं हैं। अब मैं जाता हूं। विद्या को बेकार न करो, उन्नति करा और सुख से जियो !"

इतना कहकर कृष्ण भागवतर उठे और प्रत्युत्तर की आशा किये बिना ही वहां से चल पड़े। बालांबाल् की ओर मुड़कर देखा तक नहीं। फिर भी उनके दिल में एक अकथनीय पीड़ा घर कर गई और वह ठीक भी था, जबकि एक आत्मीय जन से हमेशा के लिए बिछुड़ रहे थे। हिचकते पैर और तड़पता दिल लेकर वे धीमी चाल से वहां से निकलकर बाहर चले गये।

बालांबाल् उन्हें अपलक नेत्रों से देखती खड़ी रही। जिस घर में वह बड़ी आत्मीयता से आते-जाते थे, आज उससे मुँह मोड़कर चले गये। पर क्या उसके दिल से बाहर हो गये थे ? नहीं ! उसके दिल में अपनी अमिट याद

छोड़कर, अपनी स्थूल देह मात्र वह लिये जा रहे थे। बालांबाल् उनको जाते हुए देख रही थी। वह अब उसके घर कभी नहीं आयेंगे। उसके साथ उन्होंने जो आत्मीयता बरती थी, सौजन्यता पूर्ण व्यवहार किया था, उतना अब और कौन करेगा ? बीते दिन अब क्या लौटेंगे। सबकुछ एक पुरानी कहानी ही बनकर रह जायगा। बस एक स्वप्नचित्र-शेष रह जायगा।

वह उसके संगीत में अपनी अद्भुत प्रणाली और उसके दिल में अपनी अमिट याद अंकित कर चले गये। अब जुगाली करनेवाली गाय की तरह वह बार-बार उन यादों को दिल में ला सकती है और मन बहला सकती है। इसके सिवा कुछ नहीं कर सकती वह बड़ी देर तक यही सोचती रही।

कृष्ण भागवतर के आंखों से ओझल होने के बाद वह अपने बिस्तर पर आकर गिरी और फफक-फफक कर रोने लग गई। उसका सारा संसार शून्य हो गया था।

३२

कृष्ण भागवतर और वालांबाल् के बीच जो अंतर पड़ गया था, उसके संबंध में जितने मुंह उतनी बातें होने लगीं। लोग तरह-तरह की कल्पनायें करते और उन कल्पनाओं के अनुरूप तरह-तरह के कारण भी निकालकर सुनाते थे। कृष्ण भागवतर को नीचा दिखाने के लिए जो दल कटिबद्ध था, उसके लिए यह अंतर एक अच्छा उपकरण सिद्ध हुआ। कृष्ण भागवतर के पक्ष में जो लोग थे, उन्हें इस बात से एक तरह की सांत्वना मिली और सहानुभूति हुई। सहानुभूति इस बात से कि स्वभाव से निर्दोष कृष्ण भागवतर को कैसे-कैसे अपवादों से गुजरना पड़ रहा है। सांत्वना इस बात से कि कृष्ण भागवतर के चरित्र और जीवन पर धब्बा लगानेवाला संबंध भगवान की कृपा से किसी तरह टूट गया।

उन्होंने यह भी सोचा कि ये सारी बातें तो कुछ दिनों में अपने ही आप दब जायेंगी। कुछ दिनों बाद वह फिर अपनी पहली कीर्ति प्राप्त कर लेंगे और संगीत के संसार में और अधिक चमकने लगेंगे। वह समय बहुत दूर नहीं है, यह सोचकर कर वे प्रसन्न होते थे।

उधर नीलांबाल् के मन में भी बड़ा अंतर्द्वन्द्व मचा हुआ था। उसे इस बात की खुशी हो रही थी कि उसके पति और वेश्या के बीच जो संबंध जुड़ा था वह टूट गया। ऐसी कौन स्त्री होगी, जो अपनी प्रतिस्पर्धिनी से ईर्ष्या न करती हो? वालांबाल् के हृदय में उठनेवाले संकल्पों की तह में पैठकर देखने की शक्ति नीला में थी। उसका विचार था कि पति के जीवन में यह संबंध उचित सिद्ध नहीं होगा। यही कारण है, इस संबंध के टूटने पर उसे बड़ा आनन्द आ रहा था। पर वह इसका अनुमान नहीं लगा पाई कि इस सबका मूल कारण क्या हो सकता है? आखिर इसका कोई कारण

अवश्य होना चाहिए। एक-दूसरे से अविच्छिन्न संबंध रखनेवाले इन दोनों में यह मनमुटाव क्यों और कैसे हो गया? इसका ठीक-ठीक कारण मालूम हो तो कृष्ण भागवतर पर वह ताना मार सकती थी, लेकिन सही बात का पता न लगने से वह बड़ी परेशान थी। बार-बार वह सोचती थी कि इसका कारण मालूम हो जाय तो कितना अच्छा हो?

लेकिन लोगों के मुंह से कृष्ण भागवतर के सम्बन्ध में तरह-तरह की बातें सुनकर अगर किसीको सचमुच विशेष दुःख हुआ तो वह कन्द स्वामी भागवतर थे। वह कृष्ण भागवतर के स्वभाव से भलीभांति परिचित थे। अतः इस बात का अनुमान लगाने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई कि दाल में कुछ काला है। कुछ उल्टा-सीधा होने के कारण ही कृष्ण भागवतर ने वहां से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया है। लोगों के मुंह से उठने-वाली तरह-तरह की बातों का खंडन करने के लिए ही सही, उन्होंने चाहा कि सही बात का पता लगाना चाहिए। लेकिन कृष्ण भागवतर के मुंह से बात निकालना भी कोई आसान काम नहीं था।

'आजकल कृष्ण भागवतर वहां जाते ही नहीं हैं क्या?' जब कोई यह सवाल करता तो कन्दस्वामी भागवतर के दिल को बड़ी ठेस पहुंचती थी। वे ऐसा उत्तर देते, जिससे कृष्ण भागवतर पर आंच न आवे और न कोई उनकी ओर उंगली उठा सके। फिर भी उनको असली बात का पता मालूम नहीं था, जिससे लोगों की बातों का धैर्य से सामना करके ठीक उत्तर दे सकें।

एक बार लोगों के मुंह से ऐसी ही कुछ अनर्गल बातें सुनकर कन्दस्वामी भागवतर से नहीं रहा गया तो सीधे कृष्ण भागवतर के पास आये और बोले, "अजीब बात है, बालांबाल् से जब तुम्हारा सम्बन्ध हुआ, तब लोगों ने बुरा-भला कहा। अब सम्बन्ध-विच्छेद हो गया, तब भी मुंह में जो आता है, सो कहते हैं। तुम तो मुंह खोलकर कुछ बताते ही नहीं। सारी बातें सुनते-सुनते मेरे तो कान पक गये हैं।"

कृष्ण भागवतर थोड़ी देर मौन रहे। फिर कन्दस्वामी भागवतर की ओर मुंह किये बिना ही बोले, "दूसरे लोग जो चाहें, कहते फिरें, मगर आप क्या समझते हैं?"

कन्दस्वामी भागवतर ने ऐसे प्रश्न की आशा नहीं की थी। अतः उनसे कोई उत्तर देते न बना।

कृष्ण भागवतर ने पूछा, "क्या आप यह समझते हैं कि मैं ऐसा कोई नीच कार्य करूंगा जिससे आपके गौरव में बट्टा लगे ?"

"शिव-शिव, ऐसा सन्देह तो मेरे दिल में कभी उठा ही नहीं !" कह-कर कन्दस्वामी भागवतर ने दोनों कानों पर हाथ रख लिया।

"तो छोड़िये उन बातों को ! हर किसीको यह अधिकार है कि जो चाहे सोचे, जो चाहे कहे। मनुष्य जैसा करता है, वैसा भरता है। अपनी-अपनी करनी का फलाफल भोगता है। व्यर्थ की चिन्ता में समय क्यों गंवावें ?" कृष्ण भागवतर ने कहा।

कन्दस्वामी भागवतर ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। उन्होंने इतना भर जान लिया कि जैसा उन्होंने सोचा था, वैसा कृष्ण भागवतर का कोई दोष नहीं है। साथ ही कृष्ण भागवतर के इस गुण पर आश्चर्य-चकित हुए बिना नहीं रह सके कि वे अपने अन्तरंग मित्र को अपनी आन्तरिक बातों से अपरिचित रखने की सामर्थ्य उनमें कहां से आ गई है ! वे समझ गये कि विद्या-विनय सम्पन्न कृष्ण भागवतर गहन-गंभीर व्यक्ति भी हैं !

३३

काल-चक्र घूमता रहा। काल के महाप्रवाह में अकेले व्यक्ति की भावनाएं और घटनाएं कैसे विलग रह पातीं और कैसे अलग अस्तित्व रख सकतीं ? उसका प्रखर बहाव सभी को बहा ले जाता है।

दिन बीतते जा रहे थे और लोग कृष्ण भागवतर और बालांबाल् बीच की मैत्री को भूलते जा रहे थे। धीरे-धीरे यह सब बातें कथा बनकर बहुत पुरानी पड़ गई और कुछेक व्यक्तियों को छोड़, अन्य सबके दिल से उतर गई। कृष्ण भागवतर का यश दिनोंदिन बढ़ता जा रहा था। उनके संगीत में ज्ञान का परिपाक होता जा रहा था। उनके जीवन में शील-संयम बढ़ता जा रहा था। उनके ज्ञान और गुणों पर मुग्ध होकर लोग उनका बहुत आदर करने लगे थे।

एक दिन मठ में बैठे कन्दस्वामी भागवतर के साथ बातें कर रहे थे। सहसा पानी बरसने लगा। थोड़ी देर में कृष्ण भागवतर पर छत से पानी टपकने लगा। वह उठे और कुछ हटकर बैठे। वहां भी पानी चूने लगा।

कन्दस्वामी भागवतर ने यह देखा तो होठों पर मुस्कराहट लाकर बोले, "देखा, वरुण भगवान भी तुम्हारा पीछा कर रहे हैं ! लगता है, तुम कहीं भी जाओ, पीछा नहीं छोड़ेंगे !"

कृष्ण भागवतर हंसे नहीं। बोले, "हां, यह मठ भी तो जीर्ण-शीर्ण हो गया है !"

कन्दस्वामी भागवतर का मन एकदम उदास हो गया। बोले, "क्या करें, लोग तो अपने काम से काम रखते हैं। सामाजिक कामों में अब किसको श्रद्धा रही है ? दान मांगने जाओ तो ऊपर-नीचे देखते हैं और अत्यन्त हेय

समझते हैं। पुराने जमाने में राजा लोग सामाजिक संस्थाओं की देख-भाल किया करते थे। आजकल आम जनता को वह काम करना पड़ता है। लेकिन आम जनता दिल से इस काम में कहां लगती है? इस मठ का संचालन बड़ी मुश्किल से मैं करता आ रहा हूं। लेकिन इसकी मरम्मत करने और कुछ परिवर्तन करने के लिए धन का अभाव है। इस काम के लिए धन से सहायता करनेवाला मुझे कोई नहीं मिलता!"

कन्दस्वामी की ये बातें सुनकर कृष्ण भागवतर बड़े सोच में पड़ गये। उनके दिल मे आया कि कन्दस्वामी भागवतर की तरह संगीत और मठ के लिए अपना जीवन का समर्पण करनेवाले व्यक्ति शायद ही मिलेंगे। यह कितने दुख की बात है कि भागवतर कुछ करना चाहें और लोग उनकी मदद करने से हाथ खींच लें या उनके कामों में उत्साह न दिखायें। उस समय अपनी तुलना कन्दस्वामी भागवतर से की तो उनके दिल ने कहा, "यह सच है, तुमने संगीत कला में दिल लगाकर और निरन्तर साधना करके यश पाया है, लेकिन उससे किसको क्या लाभ हुआ?" और सच भी तो है उनके आत्म-विकास में वह कुछ हद तक उपयोगी सिद्ध हुआ, पर इसके अतिरिक्त और दूसरा क्या लाभ हुआ?

कन्दस्वामी भागवतर ने अपने मठ के द्वारा कितने संगीतज्ञों का मार्ग प्रशस्त किया है। कितने नौसिखिओं को प्रोत्साहित किया है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि संगीत के अनेक कलाकारों की उन्होंने सहायता की है।

जब इन सारी बातों का स्मरण आया तो कृष्ण भागवतर ने कन्दस्वामी भागवतर की ओर देखकर कहा, "मामा, आपने संसार का बहुत भला किया है और एक मैं हूं, जो संसार के लिए भार-स्वरूप बन गया हूं!"

कन्दस्वामी भागवतर की समझ में नहीं आया कि कृष्ण भागवतर ऐसी बातें क्यों कह रहे हैं? बोले, "मैं नहीं जानता कि तुम किस मतलब से ये बातें कह रहे हो। जो हो, इतना निश्चित है कि मुझ जैसे हजारों-लाखों मनुष्य रोज पैदा होते और मरते हैं। पर न मालूम, कितने वर्षों में एक बार सन्त त्यागराज और कृष्ण भागवतर पैदा होते हैं।...नहीं-नहीं, अवतार लेते हैं। मैं जो छोटे-मोटे काम कर रहा हूं, सम्भव है, कल ही भुला दिये जायं। लेकिन संगीत को तुमने जो पद्धति दी है और उसके भरण-

पोषण में जो अथक परिश्रम किया है, वह सब संगीत में ऐसा घुल-मिल गया है कि अलग करके पहचाना नहीं जा सकता। यह सब आनेवाली पीढ़ी के लिए महान् सम्पत्ति के रूप में सुरक्षित है।"

कृष्ण भागवतर को इन बातों में कोई रस नहीं आया, अतः अनसुनी करके बोले, "आप बहुत बढ़ा-चढ़ाकर मेरी प्रशंसा करते हैं। लेकिन फिर भी आपकी स्तुत्य सेवाओं को प्रकट रूप से सब देख और जान सकते हैं। आप इस मठ का पुनरुद्धार शुरू कीजिये। अबतक मैंने आपकी कोई मदद नहीं की है। मैं चाहता हूं कि इस मठ की मरम्मत में मेरा भी कुछ योग रहे। हम कुछ संगीत-सभाएं कर धन-संचय करेंगे। उनसे जो रुपये मिलेंगे, उनसे इस मठ का जीर्णोद्धार करायंगे!"

इस बात से कन्दस्वामी भागवतर बड़े विस्मय में पड़े। कृष्ण भागवतर, जो संगीत और सम्पत्ति को अलग-अलग दो ध्रुवों में रखकर देखते थे, वही जब दोनों को एक जगह मिलाने की बात करने लगे तो किसे आश्चर्य न होता। कृष्ण भागवतर, जो आजतक पैसे की बात मुंह पर नहीं लाते थे, अब संगीत-सभाएं कर धन-संचय करने की बात कह रहे थे! कृष्ण भागवतर के स्वभाव से परिचित कन्दस्वामी भागवतर विस्मय में पड़ गये और यह सर्वथा स्वाभाविक ही था। अपने विस्मय को बातों में दर्शाते हुए उन्होंने कहा, "तुम्हारे मुंह से ऐसी बातें सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा है। आज-तक तुमने संगीत की अधिष्ठात्री देवी को बाजार में लाकर खड़ा नहीं किया था, पर आज तुम्हारा जी ऐसा करने को कैसे तैयार हो गया?"

कृष्ण भागवतर के चेहरे पर कोई परिवर्तन नहीं दिखाई दिया। बोले, "मैंने यह कभी नहीं कहा कि हमें धन से दूर रहना चाहिए। धन बुरा नहीं होता। पर जब मैं धन के पीछे पड़ जाता हूं और अपने निजी उपयोग के लिए कमाने और जमा करने लग जाता हूं तो उसका गुलाम बन जाता हूं। पैसे का गुलाम बनना पाप है। जब धन मेरे अपने उपयोग के लिए न हो, समाज की भलाई के लिए हो तो वह मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। कोई वस्तु अच्छी या बुरी उसके उपयोग करने के ढंग से होती है।"

कन्दस्वामी भागवतर इसका क्या उत्तर देते! बोले, "तुम्हारे हाथों मठ का जीर्णोद्धार होना बदा है तो होने दो।"

३४

मठ के जीर्णोद्धार के लिए धन-संचय करने के हेतु बड़े धूम-धाम से संगीत-समारोह का आयोजन प्रारंभ हुआ। चोटी के कलाकारों के पास कृष्ण भागवतर के हस्ताक्षर से युक्त निमंत्रण-पत्र भेजे गये। कंदस्वामी भागवतर, कृष्ण भागवतर और मठ के चरित्र से परिचित सभी प्रसिद्ध संगीतज्ञों ने अपने सहयोग का वचन ही नहीं दिया, वरन् समारोह को सफल बनाने के काम में दिलोजान से लग गये। सामान्य जनता भी अपनी शक्ति-भर धन से सहायता करने को तैयार हो गई। समारोह के गायन-क्रम में कृष्ण भागवतर को शीर्ष-स्थान दिया गया था। धूम-धाम से उसका प्रबन्ध भी हो रहा था।

कृष्ण भागवतर इन दिनों अधिक गाते नहीं थे और गायनों में भाग भी नहीं लेते थे। अतः लोगों ने बड़ी उत्सुकता के साथ उनके गायन की बाट जोही थी। बहुत दिनों का भूखा स्वादिष्ट भोजन पर जैसे टूट पड़ता है, वैसे ही जनता उनका संगीत सुनने के लिए तरस रही थी।

कृष्ण भागवतर को इस संगीत-समारोह से विशेष आनन्द प्राप्त हो रहा था। अबतक उन्होंने संगीत के कितने ही उत्तम कार्यक्रमों में भाग लिया था, फिर भी इस बात से उन्हें बड़ा आनन्द हो रहा था कि अब अपने संगीत से जनता के भले का काम कर रहे हैं और अपनी संगीत-विद्या को मंगलकारी और उपयोगी सिद्ध कर रहे हैं। इसके अलावा वे चोटी के कलाकारों के साथ एक मंच पर बैठकर गानेवाले थे।

लेकिन अचानक एक बात हो गई। समारोह होने में अभी एक सप्ताह शेष रहा था कि कृष्ण भागवतर को सर्दी लग गई और जुकाम हो गया। जुकाम ने कफ का रूप धारण किया और कफ बुखार का कारण बना।

बुखार बढ़ा तो हमेशा रहनेवाला हृदय-रोग भी उभर आया। दिल के दर्द के साथ-साथ कंठ भी बैठ गया। गले से आवाज ही न निकलती थी।

कृष्ण भागवतर ने जुकाम की कुछ परवा नहीं की थी। इस लापरवाही के कारण रोग बढ़ा और इतनी शिकायतें हो गईं। उस हालत में भी उन्होंने कोई चिन्ता नहीं की। सोचा कि अपने-आप सब ठीक हो जायगा। पर जब समय कम रह गया तो उन्हें चिन्ता हुई कि अगर इस रोग के कारण वह मठ के संगीत-कार्यक्रम में भाग नहीं ले पाये तो क्या होगा? यही चिन्ता उन्हें बहुत परेशान करने लगी। लेकिन कन्दस्वामी भागवतर और अन्य मित्रों को इस बात का पता चल गया कि कृष्ण भागवतर जिस रोग से ग्रस्त हैं, वह साधारण नहीं, असाधारण है। वे मन में प्रार्थना करने लगे कि वह चाहे इस समारोह में भाग लें या न लें, लेकिन इस जानलेवा रोग से मुक्त हो जायं।

लेकिन यह प्रकृति बड़े-बड़े कमाल कर दिखाती है—चिकित्सकों की दवाओं से बढ़कर कृष्ण भागवतर की दृढ़ इच्छा-शक्ति थी। उन्होंने दिल में ठान लिया कि समारोह में भाग लेना ही है। अतः कार्यक्रम के दो दिन पहले ही आश्चर्यजनक रीति से उनके स्वास्थ्य में सुधार होने लगा। उनके गले से आवाज नहीं निकलती थी और निकलती भी थी तो बहुत ही अजीब होती थी। उनके सुधार को देखकर लोगों ने सोचा कि अगर ठीक तरह से देख-रेख की गई तो वे शीघ्र स्वस्थ हो जायंगे।

समारोह का निश्चित दिन आ गया। अभी कृष्ण भागवतर की तबीयत पूरी तरह से ठीक नहीं हुई थी। इसलिए कन्दस्वामी भागवतर ने कहा, "अभी तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है। मैं यह नहीं कहता कि तुम गाना न गाओ। आज के बदले अपना कार्यक्रम आखिरी दिन के लिए स्थगित कर लो तो तुम्हारा स्वास्थ्य और भी कुछ सुधर सकता है। तब गाते हुए तुम्हें थकावट अनुभव नहीं होने पायगी। आज गाकर तुम अपने शरीर की सुधरती हालत को बिगाड़ लोगे।"

"मामा, भगवान् ही कृपा से मेरी तबीयत काफी ठीक हो गई है। सो मैं पूर्व निश्चय के अनुसार आज ही गाऊंगा। सभा में गाने से स्वास्थ्य कैसे गिरेगा?" जब उत्तर में कृष्ण भागवतर ने यह कहा तो कन्दस्वामी भाग-

वतर ने बात बढ़ानी नहीं चाही। भगवान् पर भरोसा रखकर सभा की व्यवस्था में लग गये।

× × ×

संगीत के कार्यक्रम के शुरू होने की वेला आई। मठ के भीतर और बाहर जन-समूह उमड़ रहा था। समारोह के अन्य दिनों के कार्यक्रमों में जिन-जिन प्रसिद्ध कलाकारों का आयोजन हुआ था, वे सब आये थे और पहली पंक्ति में बैठे थे। उस दिन वहां इकट्ठे हुए रसिक-शिरोमणियों का जमघट देखकर ऐसा लगता था, मानो तमिलनाड के संगीत-प्रतिनिधियों का कोई बृहत् अधिवेशन हो रहा हो। लोगों के दिल में इस बात का संदेह था कि शारीरिक अस्वस्थता के कारण कृष्ण भागवतर शायद उसमें भाग न ले सकें। पर जब उन्हें पता चला कि कृष्ण भागवतर गानेवाले हैं तो उन्हें बड़ी शान्ति प्राप्त हुई। लोग बड़ी उत्सुकता से देखने लगे कि विद्वत् मंडली में वह कैसा गाते हैं। पार्श्ववादक भी साधारण न थे। अपने-अपने वाद्य में चोटी के कलाकार थे। अतः लोगों में उत्साह का सागर हिलोरें मार रहा था। इस उत्साह पर समय की परिस्थिति से देखते हुए आश्चर्य करने की कोई बात ही नहीं थी।

कृष्ण भागवतर मंच पर आये। इतनी बड़ी सभा में गाना उनके लिए कोई नई बात नहीं थी। अपने जीवन में न जाने कितनी बार कैसे-कैसे वातावरण में, विभिन्न रुचि रखनेवाले लोगों के बीच, भिन्न-भिन्न पार्श्व-वादकों के साथ वह गा चुके थे। लेकिन आज पहली बार उनके मन में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि आज का उनका गायन सर्वश्रेष्ठ होना चाहिए। इसके पहले जब कभी सभा के सामने बैठकर गाते थे तो ऐसी कोई भावना नहीं रहती थी कि वह भरी सभा में बैठकर गा रहे हैं। उनके गाने भी एक-से-एक बढ़कर मधुर सिद्ध हुए थे। लेकिन आज पहली बार उनके दिल में कुछ भय-सा था। न जाने क्यों? संगीत-सागर में गोता लगाकर वह अनूठे मोती लाये थे और उन्हें उन्होंने लोगों में बांटा था, फिर भी उनके मन में आज कोई अज्ञात आशंका खटक रही थी। दिल के कोने में बैठा मानो कोई कह रहा था, यश की श्रेणी में शायद तुम अधिक देर तक नहीं टिकोगे।

ऐसा विचार उनके दिल में बिना कारण के नहीं आया था। ज्वर के

समय कण्ठ-ध्वनि जो बिगड़ी थी, वह फिर से नहीं बन पाई थी। ज्वर घटा, सीने का दर्द कम हुआ, कफ दूर हुआ, पर स्वर ठीक नहीं हो पाया। वे इधर दो-तीन दिनों से अपनी जानी-पहचानी चिकित्साएं करते थे, जो कण्ठ के लिए गुणकारक थीं, पर उनका कोई खास असर नहीं हुआ।

उस दिन सवेरे उन्होंने तानपूरे के सुर-से-सुर मिलाकर गाने का उपक्रम किया था और अपनी आवाज सुनकर उनका दिल धड़क उठा था। 'यह मेरी आवाज है ?' स्वयं उनको सन्देह हुआ। तानपूरा वहीं रखकर वह उठ बैठे। इस अवस्था में वह कह सकते थे कि मेरा कार्यक्रम किसी दूसरे दिन के लिए स्थगित कर दिया जाय। वन्दस्वामी भागवतर ने जब वैसा करने का आग्रह किया था तब तो कर ही सकते थे, पर उन्होंने अपना स्वाभाविक हठ नहीं छोड़ा।

सभा में बैठे जन-समुदाय की ओर देखकर उन्होंने हाथ जोड़कर प्रणाम किया, फिर आंखें मूंदकर नियमानुसार गुरु का ध्यान किया। 'सकल-कला-वल्ली-अम्बिका' की स्तुति में मन-ही-मन स्तोत्र गुनगुनाये। इन कामों को करने में अपनी आदत से अधिक समय लिया और तन्मयावस्था में कुछ क्षण बिताये।

पीछे से तानपूरा बजने लगा। उसका मधुर स्वर सारे सभा-मण्डप में प्रतिध्वनित होने लगा। उन्होंने उसके सुर में अपने कान, मन और हृदय लगाकर उसके सुर-से-सुर मिलाते हुए गाना आरम्भ किया। स्वर-समन्वय के हेतु मुंह खोलकर कोई तान छेड़ी तो आवाज की जगह उनके कण्ठ से मात्र हवा ही निकली।

पलभर के लिए वह सिर से पैर तक कांप उठे और ऐसे निश्चल बैठ गये, मानों उनकी धमनियां जवाब दे गई हों। उनके चेहरे और शरीर से पसीना बहने लगा। मिश्री और मिर्च का चूर्ण मुंह में डाला और भगवान शंकर का नाम लेकर दुबारा सुर-से-सुर मिलाकर गाने का प्रयास किया। इस बार भी वही हवा मिली ध्वनि आई। यह क्या उनकी कण्ठ-ध्वनि थी ? उनकी वह सुरीली आवाज कहां चली गई ? तानपूरे के सुर से मिलकर जिस दिव्य कण्ठ-स्वर को गम्भीरता से गूंजना चाहिए था, वह आज कहां गायब हो गया था !

सचमुच वह गायब हो गया था, न जाने कैसे चला गया था ! हजारों-लाखों लोगों को आनंद देनेवाला वह मधुर स्वर, जो गानामृत बहाया करता था, उनका साथ छोड़ गया था ! उन्हें लगा, वह उनसे अन्तिम विदा ले गया है। अपना स्वरूप जड़मूल से नष्ट करके उड़ गया है। बस, इस विचार का मन में आना था कि उनका सिर चकराने लगा। लगा, वह बेहोश होकर मंच पर गिर पड़ेंगे।

तब वह उठे, मानो नींद से जग पड़े हों। फिर बड़ी तेजी से मंच पर से उतरे और मठ के पिछवाड़े की ओर बढ़ गये। सभा में बैठे लोग कुछ न समझ पाये और भौंचक्के से बैठे रहे। कोई भी वास्तविक स्थिति से परिचित न था। कृष्ण भागवतर वहां से चलकर, मठ के पीछे, चबूतरे पर जाकर बैठ गये।

उनके पीछे-पीछे कन्दस्वामी भागवतर आये और बोले, "क्यों, क्या बात है ? तबीयत ठीक नहीं है क्या ?"

कृष्ण भागवतर ने सिर उठाकर कन्दस्वामी भागवतर की ओर देखा। उनकी आंखें अदम्य वेदना से इतनी लाल हो गई थीं, मानो खून के आंसू बहा रही हों। भर्राये हुए स्वर में बोले, "मामा, मेरा कण्ठ-स्वर चला गया। बस, शरीर ही शेष रह गया है। काश, मेरी इस कण्ठ-ध्वनि के बदले भगवान ने मेरे प्राण ले लिये होते ! ..."

"दुःखी मत होओ। तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। इसीलिए यह शिकायत हो गई है। स्वास्थ्य के सुधरने पर गला ठीक हो जायगा।" कन्दस्वामी भागवतर ने दिलासा देते हुए कहा।

उस दिन कृष्ण भागवतर के बदले किसी दूसरे प्रसिद्ध गायक का कार्यक्रम रक्खा गया। समारोह निर्विघ्न सम्पन्न हुआ। उधर कृष्ण भागवतर अपने घर में बिस्तर पर पड़े मन-ही-मन तड़प रहे थे। विधि की यह कैसी विडम्बना थी !

३५

कृष्ण भागवतर की चिकित्सा बड़ी तत्परता से हुई। चिकित्सकों ने अपने-अपने ढंग से उनके रोग को दूर करने का पूरा प्रयत्न किया, लेकिन कुछ दिनों बाद सबको निश्चय हो गया कि अब वह अपने खोये हुए स्वर को वापस नहीं पा सकते। लेकिन उन सबसे पहले स्वयं कृष्ण भागवतर ने यह जान लिया था।

यद्यपि बड़े-से-बड़े सुख-दुखों का सामना करने की क्षमता कृष्ण भागवतर में विद्यमान थी, फिर भी इससे उनके दिल को बहुत चोट लगी। वह समझ गए थे कि अब वह किसी भी सभा में नहीं गा सकेंगे। सभाएं तो दूर, घर में बैठकर 'स्वांतः सुखाय' भी नहीं गा सकेंगे।

हृदय में झर-झरकर झरनेवाले संगीत के प्रवाह को अब कोई ध्वनि-रूप नहीं दे सकते थे। अबतक उन्होंने जो नाद की उपासना की थी, वह आगे नहीं हो सकती थी। उनके लिए मधुर कंठ-ध्वनि से रिक्त शरीर प्राणहीन शरीर था। दुनिया के लिए उनका जीना और न जीना दोनों बराबर था। सच पूछा जाय तो उनका जीवन अब मृत शरीर जैसा भारस्वरूप हो गया था।

आखिर उन्हें भगवान इतनी बड़ी सजा क्यों दे रहे हैं ? क्या इसलिए कि उन्होंने अपने नियमों का उलंघन करके धन-संचय के लिए गाना स्वीकार किया था, या इसलिए कि उनसे कोई अक्षम्य अपराध हो गया था, जो हो, अब जीवन में उनके लिए कोई सहारा नहीं रहा था। स्वभाव से ही कृष्ण भागवतर जीवन के प्रति अधिक आसक्ति नहीं रखते थे। इस घटना ने तो उनकी विरक्ति और भी बढ़ा दी। फिर भी उनके दिल को जो झटका लगा था, उससे वे तिलमिला गये थे। उन्होंने सोचा कि इस वेदना से छुटकारा

पाने का कोई मार्ग दिखाई दे तो अच्छा हो। इसके सिवा आजतक अपने जीवन में किसी और चीज की उन्होंने इच्छा नहीं की थी।

उनकी धारणा थी कि किसी महान् लक्ष्य-साधना के लिए ही वह यह जीवन धारण कर रहे हैं। पर जब उसी लक्ष्य की जड़ पर कुठाराघात हो गया तो उनका दिल टूट गया। वह वेदना से तड़प उठे।

अब हर समय भ्रान्त व्यक्ति की तरह चुपचाप मौन बैठे रहते थे। किसीसे भी उनका जी बोलने को नहीं करता था। उन्हें अपने से घृणा हो गई थी, जीवन से घृणा हो गई थी, जन्म से घृणा हो गई थी और सामान्य जनता से घृणा हो गई थी, यहां तक कि भगवान से भी घृणा हो गई थी। इस समय उनके मन में घृणा-ही-घृणा थी।

उनके व्यवहार और विचार में भी बड़ा परिवर्तन हो गया था। नियम-संयम से भरे उनके जीवन में बड़ी उथल-पुथल मच गई थी। उनका जीवन टूटे बांध जैसा हो गया था। द्वार के चबूतरे पर घुटनों पर दोनों हाथ बांधकर न जाने कितनी देर बैठे रहते। जब नीला खाने या सोने को बुलाती तो उसपर भी ध्यान नहीं देते थे। बड़ी देर तक वह उसी हालत में बैठे रहते थे। कोई नही जानता था कि वह क्या सोच रहे हैं। प्रातःकाल होता, फिर दोपहर हो जाता, धीरे-धीरे दोपहरी ढल जाती और शाम हो जाती। देश, काल की सीमाओं में परिवर्तन होते रहते, मगर वह जैसे-के-तैसे बैठे रहते। इन सब बातों पर कुछ भी ध्यान नहीं देते थे।

सोचते-सोचते वह सहसा उठते और दालान में आते। इस कोने से उस कोने तक घूमते। कभी-कभी पिछवाड़े की ओर चले जाते। समय-असमय का विचार न करते। कुएं पर जाकर चार बाल्टी पानी लेकर स्नान करते। विभूति-भस्म धारण कर सीधे वृहदीश्वर के मन्दिर जाते। वहां भगवान सुब्रह्मण्य के मंडप में घंटों बैठे रहते।

इनकी ऐसी गति-विधि देखकर सब यही समझते थे कि उनपर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा है, जिससे उनका दिल टूक-टूक हो गया है। सच तो यह था कि उन्हें इतनी बड़ी चोट उनके जीवन में कभी नहीं लगी थी। हालांकि उन्होंने गरीबी को स्वयं अपनाकर अपने घर में ठहराया था, गरीबी उन पर कभी हुकुमत नहीं करती थी।

उनके दिल में किसी भी चीज के प्रति मोह-ममता नहीं थी ; लेकिन जिस चीज पर उन्होंने अपना तन, मन, धन सबकुछ अर्पण किया था, उसी चीज की नींव हिल जाने से वह बेचैन हो उठे थे।

शाम का सुहावना समय था। नीलांबाल् नित्य के नियमानुसार पूजा-गृह में दिया जलाकर आई। कृष्ण भागवतर भी पूजा आदि से निवृत्त होकर बैठे थे। पास के मन्दिर से वाद्य-ध्वनि आई। नादस्वर-वादक पूरी-कल्याणी राग का आलाप कर रहा था। मधुर स्वर लहरों की तरह थिरकता हुआ उनके कानों में अमृतवर्षा कर रहा था। शाम का धूमिल प्रकाश, उस पर मधुर-स्वर नाद। कृष्ण भागवतर तन्मय हो गये। सामने ही तानपूरा था। उसे उठाकर स्वर भरना शुरू किया। तानपूरे से मधु-मिश्रित स्वर निकलने लगा। उस स्वर का अनुभव कर वह आनन्दित हो उठे। उनकी आंखों में आंसू छलछला आये। तानपूरे को शोक-संतप्त नेत्रों से देखा। "हे, देवि, तुमने तो मुझे ठुकरा ही दिया !" मंद स्वर में कहते हुए वह उठे और तानपूरा एक तरफ रखकर वहां से तेज कदमों से बाहर जाने लगे।

अभ्यस्त पैर उन्हें जाने-अनजाने ही मठ की ओर ले गये। कृष्ण भागवतर को आते हुए देखा तो कन्दस्वामी भागवतर उनका स्वागत करने बढ़े।

कृष्ण भागवतर सहसा रुक गये। मठ के सामने ही एक लोहारखाना था। लोहार लोहे की एक छड़ को तपाकर हथौड़े की चोट मारकर लंबा करने के प्रयास में लगा था। कृष्ण भागवतर एकटक आश्चर्य-चकित होकर कुछ क्षण उस दृश्य को देखते रहे।

इस बीच कन्दस्वामी भागवतर सामने आ खड़े हुए। उन्हें देखते ही बोले, "मामा, वह देखिये, उस लाल-लाल लोहे की छड़ को अगर मैं अपने गले में घुसेड़ लूं तो क्या मेरा कंठ नहीं सुधर जायगा ?"

कन्दस्वामी भागवतर ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उन्हें संतोष था कि कृष्ण भागवतर सवाल करके ही रुक गया। अपने विचार को कार्यान्वित नहीं कर डाला। बोले, "जैसे लोहे को ठीक करने के लिए विशेष प्रकार के तापमान की जरूरत होती है, उसी प्रकार मनुष्य के मन के परिपाक के लिए भी एक विशेष प्रकार के तापमान की आवश्यकता होती है। अच्छा चलो, चलें !" इतना कहकर कृष्ण भागवतर को साथ लेकर वह बाहर चल पड़े।

३६

दोनों वहां से चुपचाप वृहदीश्वर के मन्दिर की ओर गये। रात के उस अंधकार में वृहदीश्वर के मन्दिर का गोपुर ऐसा खड़ा था, मानो मनुष्य के अज्ञानांधकार के बीच आत्म-शक्ति शोभायमान हो। वे दोनों बिना कुछ कहे रास्ता तय कर रहे थे। मार्ग में जैसा अंधकार छाया था, वैसा ही कृष्ण भागवतर के मन में भी था।

मन्दिर के फाटक पर पहुंचते ही कृष्ण भागवतर ने कहा, "मामा, यह अंधकार हमें जैसे निगलता है, वैसे ही काल भी निगलता है। मैं भगवान से यही प्रार्थना करनेवाला हूं कि आज मुझे भी यह कालदेव निगल जाय!"

कन्दस्वामी भागवतर ने कुछ उत्तर नहीं दिया। मन-ही-मन हंसे। कहां अकेला व्यक्ति और कहां काल का महा-प्रवाह। फिर भी कृष्ण भागवतर की आंतरिक मनोवेदना का आभास करके वह चुप रहे। आखिर क्या कहकर वह उनको समझाते! अतः दोनों चुपचाप मन्दिर के अन्दर प्रविष्ट हुए।

तंजाऊर के मन्दिर की नन्दिकेश्वर की प्रतिमा भी आकार में बहुत बड़ी है। उसे देखकर ऐसा लगता है, जैसे कोई छोटा-मोटा पर्वत नन्दी के रूप में बैठा हो। कन्दस्वामी भागवतर ने कृष्ण भागवतर की ओर दृष्टि फेरी और गला साफ करते हुए कहा, "जानते हो, इस नन्दी का क्या अर्थ है? यह धर्म का स्वरूप है। भगवान ने इसे अपना वाहन इसलिए बनाया है कि वे धर्म पर स्थित हैं। धर्म की तुला पर विराजमान हैं।"

बिना ध्यान दिये कृष्ण भागवतर ये बातें सुन रहे थे। ऐसी तत्त्व की बातें उस स्थिति में उन्हें कैसे रुचिकर लगतीं? वह तो उस समय दूसरे ही लोक में थे। कन्दस्वामी भागवतर को उनकी इस बेरुखी का पता था।

दोनों भगवान के पास पहुंचे। वृहदीश्वर समस्त ब्रह्माण्ड को अपने में समेटे हुए बैठे थे। वृहदाकार ईश्वर की महिमा भी वृहत् थी। कन्दस्वामी भागवतर ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। कृष्ण भागवतर ने भी मन्त्रवत् हाथ जोड़े।

वे दोनों मंडप के इस सिरे पर थे। कन्दस्वामी भागवतर ने पूछा, "कुछ वर्ष पहले तुमने ऐसा ही दुख भोगा था न?"

कृष्ण भागवतर ने कुछ उत्तर नहीं दिया। लेकिन यह जान लिया कि कौटुंबिक जीवन में दाम्पत्य-कलह होने पर उन्होंने जो वेदना अनुभव की थी, उसीकी ओर वह इशारा कर रहे हैं।

कन्दस्वामी भागवतर ने कुछ रुककर कहा, "इस बात का पता है कि दुःख का मूल कारण क्या है? वह अज्ञान है। अज्ञान का लाड़ला बेटा दुःख है। अज्ञान के वश होकर हम कुछ चीजों के प्रति अपनत्व का मोह पालते हैं और कुछ चीजों के प्रति परायेपन का विचार रखते हैं। इस तरह के भेद-भाव के कारण ही मनुष्य को विभिन्न कष्ट भोगने पड़ते हैं। यह भेदभाव कहां तक सच्चा है? मैं एक बात कहूं? तुमने अपना प्यारा कंठस्वर खो दिया और उस वेदना में तड़पते हो। जो करते हो, सो ठीक करते हो। वेदना होना स्वाभाविक है। पर मैं पूछता हूं कि उसके खराब हो जाने से तुम्हारा क्या बिगड़ गया? क्या कुल का नाश हो गया या संसार में सूर्य का उगना या डूबना रुक गया? बताओ, अब कौन-सा प्रलय हो गया, जिसके लिए तुम दुःखी हो?"

कृष्ण भागवतर के दिल में इससे चोट लगी। उन्होंने इस बात की आशा नहीं की थी कि कन्दस्वामी भागवतर इतने कठोर शब्द मुंह से निकालेंगे। फिरभी उनकी बातों में सच्चाई थी, उसने उनके दिल को झकझोर दिया।

"मामा, मैं मानता हूं कि आपका कहना बिल्कुल सच है। मैं सांसारिक बातों के लिए दुःखी नहीं होता। उसकी परवा भी नहीं करता। पर मेरे लिए तो यह एक बड़ी हानि है न? यही कारण है कि मेरा मन अकथनीय वेदना से तड़प उठता है।" कृष्ण भागवतर ने कहा।

"तुम्हें दुःख होगा ही, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। लेकिन एक

बात की तुम्हें गांठ बांध लेनी चाहिए। यह दुःख भी एक साया है। हर बार जब पलक झपकते हैं तो मुंदी आंखें खुलती ही हैं। हम जिसे दुःख कहते हैं, उसकी भी यही हालत है। दुःख हमारे अन्तःचक्षुओं पर पलक की तरह परदा डालता है। मुंदी पलकें जिस प्रकार खुलती हैं, उसी प्रकार दुःख के परदे को भी खुलना चाहिए। यह प्रकृति का नियम है। इसे कोई टाल नहीं सकता। जो समझदार हैं वे दुःख को अपने विकास के काम में लगा लेते हैं।" कन्दस्वामी भागवतर ने एक बड़ा तथ्य प्रस्तुत किया।

कृष्ण भागवतर खड़े सुनते रहे। इसके बाद दोनों धीरे-धीरे गर्भगृह की ओर चले। वहां वृहदाकार लिंग था जो शांत, निश्चल प्रतिष्ठित था। उसकी ओर इशारा करके कन्दस्वामी भागवतर ने कहा, "हम भगवान की वन्दना लिंग रूप में क्यों करते हैं, इसका तुम्हें पता है?"

कृष्ण भागवतर ने सिर हिलाया।

"यह व्यक्त और अव्यक्त परब्रह्म का प्रतीक है। 'लिंग' शब्द का अर्थ ही यह होता है कि वह आत्माओं और लोकों के लय और उत्पत्ति की मुख्य भूमि है। लेकिन अंड-ब्रह्माण्डों को अपने उदर में रखनेवाला परब्रह्म कहीं इस लिंग रूप में समा सकता है? मैं अब जो कहता हूं, वह तो गूढ़तत्व है। उसे छोड़ो। अब हम तुम्हारी ही बात पर आयें।" कन्दस्वामी भागवतर ने कहा।

कृष्ण भागवतर बड़ी श्रद्धा से सुनने लगे।

"अच्छा, यह बताओ कि तुमने नाद की इतनी उपासना क्यों की?" कन्दस्वामी भागवतर ने पूछा।

"इसलिए कि शिवलिंग की तरह वह भी परमात्मा का स्वरूप है।" कृष्ण भागवतर ने उत्तर दिया।

"यह सच्ची बात है। लेकिन तुम उस नाद-ब्रह्म का अनुभव अपने कानों द्वारा ही कर पाये न?" कन्दस्वामी भागवतर ने दूसरा प्रश्न किया।

"हां!" कहकर कृष्ण भागवतर ने सिर हिलाया और इस बात की उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे कि वह आगे क्या कहनेवाले हैं।

"अच्छा, तुम्हारे कानों में जो समाया है, केवल वही नाद है या उससे भी परे कोई नाद है?" कन्दस्वामी भागवतर ने कृष्ण भागवतर की ओर

देखते हुए पूछा।

कृष्ण भागवतर आश्चर्यचकित होकर कन्दस्वामी भागवतर को देखने लगे। फिर धीरे से बोले, "आप तो कोई पहेली-सी बूझ रहे हैं। जरा समझाकर कहें तो अच्छा हो!"

कन्दस्वामी भागवतर ने कहा. "आदि-अंत से हीन, सर्वव्यापी परब्रह्म का यह शिवलिंग जिस प्रकार प्रतीक है, उसी प्रकार आकाश और अंतरिक्ष में, अणु और परमाणु में, नाद ब्रह्म की जो सत्ता है, उसका क्षुद्र-से-क्षुद्र अंश ही तुम्हारे कान ग्रहण करते हैं। नाद का प्रवाह अपार है, जिसमें अधिकांश कर्ण-गोचर ही नहीं हो पाता। अबतक तुम नाद के प्रवाह में संलग्न थे, जो तुम्हारे कानों को सुनाई देता था। अब यह हालत इसलिए हुई है कि श्रोत्रेन्द्रिय से परे नाद को भी तुम सुन सको। तुम कर्णमधुर-गान में अबतक लगे थे और अब कर्ण से परे परम गीत में लगनेवाले हो। अबतक तुम्हारे कान बाहर सुनाई देनेवाले गान में लगे थे. यानी बहिर्मुखी थे, उन्हें अब अंतर्मुखी करो। सब ओर जो परम-ध्वनि व्याप्त है, उसे अपने दिल में सुनो। परम योगियों की तरह अनहद-नाद सुनने का सौभाग्य तुम्हें प्राप्त होगा और तुम सदा-सर्वदा उस नित्यानन्द में ही लीन रहोगे।"

कृष्ण भागवतर स्तंभित खड़े रहे। उनका सारा शरीर पुलक से भर गया। उन्हें रोमांच हो आया। भगवान का विश्व-रूप दर्शन कर, पार्थ जैसे भावों में खो गया था, वैसे ही कृष्ण भागवतर भी उनकी बातों में खो गए। उनकी आंखों से आंसू की धारा बहने लगी। गद्‌गद् कंठ से बोले, 'पहले एक बार आपने मेरा एक नेत्र खोला था। आज मेरा दूसरा नेत्र भी आपने खोल दिया!"

इतना कहकर उनके पैरों पर झुककर कृष्ण भागवतर ने साष्टांग प्रमाण किया।

कन्दस्वामी भागवतर ने बड़े प्रेम से उन्हें उठाया और हृदय से लगाते हुए कहा, "तुमने नाद का पार पा लिया है। उसकी दूसरी पौड़ी में जो कुछ है, वह मौन है। तुम वहां तक पहुंच गये हो।"

"अब मुझे आगे क्या करना है?" कृष्ण भागवतर ने पूछा।

"ध्यान।" कन्दस्वामी भागवतर ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया।

थोड़ी देर कृष्ण भागवतर चुपचाप कुछ सोचते रहे। फिर बोले, "आप सच कहते हैं। अबतक मैं भगवान को आवाज देकर बुलाता था, अब मैं उसे अपने हृदय की आवाज से बुलाऊंगा !"

ठीक इसी समय मन्दिर में पूजा की घंटी बज उठी। यह सबके हृदय में भगवान की याद भरनेवाली घंटी थी। सबके मन पर चोट करके भगवान का स्मरण कराना उसका काम था। इस समय घंटी की जो ध्वनि हुई वह कृष्ण भागवतर के केवल कानों में ही नहीं पड़ी, उनके दिल की गहराई में पहुंच गई।

उन्होंने भगवान एकलिंग को देखा। उस समय उनके नेत्रों ने नहीं, प्रत्युत् हृदय ने उनके दर्शन किये।

उनकी आंखों में एक नवीन ज्योति फैल गई और उनके हृदय में एक नवीन संगीत प्रवाहित हो उठा।

चंचलता चली गई, शांति आ गई।

भगवान के दर्शन के बाद वह कन्दस्वामी भागवतर के साथ घर लौटे। बाहर अंधेरा छाया हुआ था, पर अब कृष्ण भागवतर के दिल में अंधेरा नहीं था।

वह अपने हृदय के अनहद नाद को सुन रहे थे और नित्यानन्द लूटने में मग्न थे।



50